''किशनगढ़ चित्रशैली में भावाभिव्यंजना के मूलाधार''

चित्रकला विषय में डी0 फिल्0 उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
डॉ0 राम कुमार विश्वकर्मा
एम0 ए0, डी0 फिल्.
विभागाध्यक्ष

शोध छात्रा
कु0 वाजदा खान
एम0 ए0 (चित्रकला)

1999
दृश्य कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद-211002 (भारत)

आभार

मैं अपने परमश्रद्धेय गुरु डा0 राम कुमार विश्वकर्मा, विभागाध्यक्ष, दृश्यकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के प्रति अपनी कृतज्ञता शब्दों में व्यक्त करने में समर्थ नहीं हूँ। उनके मार्गदर्शन, प्रोत्साहन, आशीर्वाद और सफल निर्देशन से ही मैं इस कार्य निष्पादन में सफल हो सकी। वे सदैव मेरे प्रेरणा स्रोत रहे और उनका वरदहस्त सदैव मुझपर रहा। मैं सदैव आपकी हृदय से आभारी रहूँगी।

मैं उन सभी संग्रहालयों व पुस्तकालयों से संलग्न महानुभावों की हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे सहयोग प्रदान कर पुस्तकों का अध्ययन करने की अनुमति प्रदान की तथा विषय-सामग्री एकत्रित करने में सहायता प्रदान की। मैं उन सभी लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ जिनकी पुस्तकों में प्रकाशित लेखों ने समय-समय पर मुझे इस शोध-प्रबन्ध को तैयार करने में सहायता प्रदान की।

मैं अपनी बड़ी बहन डा0 अफरोज़ द्वारा दिए गए भावनात्मक प्रोत्साहन, प्रेरणा एवं आर्थिक सम्बल को सदैव याद रखूँगी जो सदैव मेरे आत्मबल और दृढ़निश्चय को आगे बढ़ाते रहे। मैं अपने सभी स्नेहिल मित्रों की आभारी हूँ जिन्होंने इस शोध-प्रबन्ध को तैयार करवाने तथा टाइप करवाने में मेरी अथक सहायता की तथा समय-समय पर अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

अन्त में, मैं उन सभी लोगों की आभारी हूँ व हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे इस कार्य में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सहायता प्रदान की है।

वाजदा खान

कु0 वाजदा खान

अनुक्रम

RAJASTHAN

BHAWALPUR
BIKANER
PUNJAB
UNITED PROVINCE
ALWAR
BHARAT PUR
JAISALMER
NAGAUR
JAIPUR
KISHAN GARH
AJMER
JODHPUR
SIND
BUNDI
UDAIPUR
KOTAH
SIROHI
GUJRAT
JHALA WAR
DUNGAR PUR
BANS WARA
CENTRAL INDIA

KISHANGARH
AJMER
A J M E R
BEAWAR
SARWAR
KEKRI

प्रस्तावना

मानव में सौन्दर्यबोध की वृत्ति जन्मजात होती है। उसकी सौन्दर्यमयी दृष्टि और सौन्दर्यानुभूति जब सृजन में सौन्दर्य की उद्भावना करने को तत्पर होती है और भाव का मक्खन प्रतिभा के स्पर्श से मुखरित हो उठता है, तब कला का जन्म होता है। कला के माध्यम से मानव अपनी अनुभूतियों तथा भावों का चित्रण करता है। उसकी कृतियां उसकी भावनाओं का प्रतीक बन जाती हैं और उसमें सभ्यता व संस्कृति के दर्शन होने लगते हैं। इस प्रकार कला एवं कलाकार गहराई से एक दूसरे से जुड़े होते हैं, क्योंकि कलाकार कला का सर्जन करता है और वह कलाकार की अभिव्यक्ति को साकार रूप प्रदान करती है। कला एक शरीर होती है जो चक्षुओं से दिखायी देती है जिसमें कलाकार का अस्तित्व छिपा होता है। एक का अस्तित्व बाहर का होता है दूसरे का

अन्दर का, दोनों को मिलाकर ही कला उपजती है। इसमें न कुछ नया है न कुछ पुराना। केवल एक मन होता है कलाकार का और एक छवि है कलावन्त के अनूठे सौन्दर्य की। कला में कल भी यही था आज भी यही है और कल भी यही रहेगा। यही कला की चिरसम्पदा है जो उसे शाश्वत और मृत्युंजय बनाये हुये है। वास्तव में जब हम विश्व संस्कृति के कलात्मक इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं जो उसमें मानवज्ञान का अभ्युदय ऐसे सूचनात्मक अविरल प्रवाह पाषाणी चट्टानों, प्राचीरों, शिल्पों में दृष्टिगोचर होता है जो अनेकानेक युगों से प्राकृतिक, राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक झंझावातों को सहते हुये आज भी उतनी ही जीवन्त व अखण्ड हैं, जितनी कि कल थी और उसमें सौन्दर्यानुभूति का स्पन्दन सर्वोपरि है।

चित्रण करने की प्रवृति मानव में उस अनादि काल से है जब वह वनौकस था। उसने भाषा के पर्याप्त रूप से विकसित न होने के कारण आड़ी-तिरछी रेखाओं के माध्यम से अपनी भावाभिव्यक्ति करनी प्रारम्भ की होगी। प्रारम्भ से ही मानव मन की अनुभूतियां, राग-विराग, सुख-दुख संयोग-वियोग आदि जीवन के समस्त भावों की अभिव्यंजना रंगों व रेखाओं के रूप में कोई न कोई आकार ग्रहण करती रही हैं और वही रूप संस्कृति का आवरण धारण करता रहा। आज मानव जीवन का उद्भव इसी आवरण द्वारा समझा जा सकता है। फलतः समस्त अन्तराल की विभाजक रेखा गौण होती चली गयी और इतिहास के पृष्ठ अनवरत ही भरते चले गये।

कला केवल दुखों से ही मुक्ति प्रदान करने वाली नहीं होती वरन् यही जीवनी शक्ति भी देती है। उच्छृंखलता के बदले आत्मसंयमपूर्वक दबी भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने का सम्बल बनती है। कला परमात्मा का भावपूर्ण तथा आनन्ददायक आत्मप्रदर्शन करने का माध्यम भी है। वास्तव में प्रत्येक कला का सामाजिक जीवन से अभीष्ट सम्बन्ध होता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र नामक अध्याय मे चित्रकला को कलाओं में सबसे उत्तम माना गया है। चित्रकला की साधना से अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार कला केवल कला के लिये ही नहीं वरन् सम्पूर्ण जीवन के लिये प्रेरणास्वरूप मानी गयी है। घरों में चित्र लिखने के समान कुछ मंगलदायक नहीं है इसलिये यह कल्याणकारी है और मांगल्य भावना से ओतप्रोत है·

''कलानां प्रवरं चित्र धर्मकामार्थ मोक्षदम्
मागल्यं प्रथम ह्येतद् गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्।''

-चित्रसूत्र।

कला का उद्भव अनुभूतियों को ऐसे रूपाकार में ढाल देने पर होता है जो सम्प्रेषणीय हो। कला में सम्प्रेषणीयता का केन्द्रीय स्थान होता है अन्यथा भावातिरेक में निकाला हर चीत्कार संगीत बन जाता है और किसी भी सतह पर खरोंची गयी लकीर चित्र। सम्प्रेषण का माध्यम चाहे भाव भंगिमा हो, नाद हो, शब्द हो, रंग हो या ठोस पदार्थों पर उकेरा गया आकार हो, सम्प्रेषणशीलता के अभाव में कला का अस्तित्व सम्भव नहीं है।

चित्रकार किसी स्वानुभूत सत्य को सुन्दर ढंग से चित्रों में अभिव्यक्त करता है। कोई भी चित्रकार हो, उसकी कलाभिव्यक्ति रूचिकर, आकर्षक,

मोहक और उत्प्रेरक ही नहीं होती वरन् मंगलकारिणी भी होती है और उसमें शिवत्व भी विद्यमान होता है। ऐसी कला सत्यमेव परमदायिनी होती है। यथा -

''विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला परा।

लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला।।''

सभी कलाकृतियों में कलाकार की आत्मा निवास करती है। उसकी रुचि, प्रकृति, भावनायें एवं अनुभूतियां कलाकृति में प्रतिबिम्बित होती है। भारतीय कला की अपनी विशेषतायें हैं, जिसमें भावनाओं की अभिव्यक्ति को सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जड़ वस्तुओं को भी भारतीय कला में मुखर बना दिया गया। कलाकार का ध्यान अवाक् को सवाक् बनाने की ओर रहा है। भारतीय कला में केवल निर्माता की ही आत्मा नहीं वरन् जन समुदाय की आत्मा भी अनुप्राणित हुयी है। कलाकारों ने अपने व्यक्तित्व में साधारण जन समुदाय के व्यक्तित्व को इस प्रकार आत्मसात कर लिया कि उनकी भावनाओं को अपनी प्रेरणा बनाकर भावनाओं के रूप में अभिव्यक्ति का माध्यम बना लिया। इन कलाकारों की आत्मा पर धर्म के प्रति आस्था की पूर्ण छाप दिखायी पड़ती है। यही कारण है कि इन निर्माताओं ने कलाकृति के सृजन में अपनी भावनाओं का प्रकाशन धार्मिक आस्था तथा विश्वास को माध्यम बनाकर किया है। यद्यपि भारतीय कला के मूल में धार्मिक भावना अवश्य है परन्तु कलाकारों ने सभी धर्मों के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण अपना कर कला पर उनके विभिन्न प्रभावों को आत्मसात् किया है। भारतीय कला में आध्यात्मिकता के प्रति झुकाव स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। जिस प्रकार भारतीय दर्शन और साहित्य जीवन के यथार्थ को अधिक महत्वपूर्ण न मानकर जीवन के आदर्श को अधिक महत्ता प्रदान की है, उसी प्रकार चित्रकला में प्राणी, प्राकृतिक दृश्यों तथा मानव आकारों के यथार्थ चित्रण के स्थान पर चित्रकार अपनी कल्पना से भावानुकूल चित्रांकन करने में अधिक विश्वास करता था।

चित्रकार अपना 'स्व' भूलकर अपनी रचना में खो जाता है। अन्ततोगत्वा उसकी रचना ही उसके 'स्व' का कारण बन जाती है। कलाकार अपनी इसी स्वान्तः सुखाय रचना में तल्लीन होकर अपने कौशल को नया सार्थक अर्थ प्रदान करता है। चित्र रचना कलाकार के मन की छवि या उसकी वैयक्तिक अनुभूति होती है जिसको प्रकट करने के लिये वह रंगों व तूलिका का आश्रय लेता है। कलाकार जितना सामाजिक होगा उसकी वैयक्तिक अनुभूति उतनी ही समाजपरक होगी। कला में केवल मानवाकृति के अंकन को ही महत्व नहीं प्रदान किया गया है वरन् यहां व्यक्ति विशेष के चित्रण में उसकी मनः स्थिति, चारित्रिक विशिष्टता, वातावरण, परिवेश और उसकी आवश्यकता के अनुकूल चित्र बनाना भी महत्वपूर्ण माना गया। इसलिये भारतीय चित्रकला में किसी व्यक्ति विशेष की ही अनुकृति नहीं परिलक्षित होती है, वरन् उसमें ऐसी आकृतियों का बिम्ब भी परिलक्षित होता है, जो चित्रकार की अनवरत कला साधना का परिणाम होती है। भारतीय चित्रकार प्रकृति, परिवेश तथा वातावरण के अंकन के लिये केवल यथार्थवादी दृष्टिकोण नहीं रखता है। उसका आध्यात्मिक दृष्टाभव उसमें एक ऐसे सौन्दर्य का दर्शन करता

है जो चिर शाश्वत है। उसकी सौन्दर्यानुभूति रूपचेतना बहुआयामी और कालजयी होती है। इसलिये वह ऐसी सृष्टि करता है, जो काल, देश व देह की परिधि के आयामों से परे की एक दिव्य कल्पना: सर्जना होती है।

युग बदल जाते हैं, समाज एवं व्यक्ति भी बदल जाते हैं परन्तु कला अन्तरात्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता है, वह सदैव एक सी रहती है। वह शाश्वत है, कालातीत है। यही कारण है सहस्रों वर्ष पूर्व निर्मित कलाकृतियां आज भी हमें आल्हादित करती हैं, आनन्द प्रदान करती हैं। कला के वाह्यस्वरूप में अन्तर होने पर भी कला की अन्तरात्मा में एकता का समावेश होता है।

हमारी कला परम्परा प्राचीन भित्तिचित्रों से प्रारम्भ होकर निरन्तर विकास-पथ की ओर उन्मुख रही है। प्राचीन लक्षणग्रन्थों, शास्त्रों तथा साहित्य में चित्रकला का किसी न किसी रूप में उल्लेख अवश्य मिलता है। कला के चतुर्दिक विकास के साक्ष्य वैदिक काल से ही प्राप्त होने लगते हैं। चित्रसूत्र, चित्रलक्षण, विश्वकर्मा प्रकाश, समरांगण सूत्रधार, रामायण, महाभारत, इतिहास, पुराण, बौद्ध साहित्य इत्यादि ग्रन्थों से भारतीय चित्रलेखन की प्राचीन परम्परा तथा लोकप्रियता का पता चलता है। कालिदास के उत्तरमेघ ग्रन्थ में यक्ष कहता है-

> ''त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायां
> मात्मानं ते चरण पतितं भाव दिच्छामि कर्तुम
> अस्रैस्तावन्मुहुरुप चितैर्दष्टि रालुप्यते मे
> क्ररस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः।''

अर्थात् जब मैं पत्थर की शिला पर गेरू से तुम्हारी रूठी छवि का चित्र खींच कर यह दिखाना चाहता हूँ कि तुम्हें मनाने के लिये मैं तुम्हारे चरणों पर पड़ा हूँ, उस समय आँसू नेत्रों में ऐसे उमड़ पड़ते हैं कि तुम्हें देखने भी नहीं देते हैं। निर्दयी भाग्य को चित्र में हमारा मिलना नहीं सुहाता है। भारतीय चित्रकला की प्रौढ़ परम्परा को प्रदर्शित करने वाला ग्रन्थ विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला की अभिव्यंजना इस प्रकार मिलती है-

> ''यथा सुमेरु प्रवरो नागानाग यथाण्डगान गुरु प्रधानः
> यथा नाराणाम प्रवरः क्षितेशस्तथाकला न मिहिचित्रकल्पः।''
> चित्रसूत्र।/33/43/39

मानव की प्रवृत्ति रचनात्मक होती है। वह अपनी अनुभूति, रुचि और भावनाओं के अनुसार रचना में प्रवृत्त होता है। रचना में सौन्दर्य की अनुभूति हमें प्रसन्न और आल्हादित करती है। कलाकार अपनी कृति के माध्यम से उस सौन्दर्यबोध को अभिव्यक्त करना चाहता है जो सभी मनुष्यों के लिये सुन्दर हो, लाभकारी हो। यह सौन्दर्यबोध ही दूसरे शब्दों में सत्य की अभिव्यक्ति है। कभी-कभी सत्य व सुन्दर से आनन्द की अनुभूति होने पर सत्य व सुन्दर के साथ कल्याण (शिव) को भी महत्व दिया जाता है, इसीलिये

कला में सत्यम्, शिवम् व सुन्दरम् गुणो का लालित्यपूर्ण समावेश देखने को मिलता है जिससे चित्रकला की सार्वभौमिकता दिखायी जाती है। ऐसी रचना समस्त मानव-जाति के लिये कल्याणकारी सिद्ध होती है और वह रचना व्यक्ति, देश-काल की सीमा से निकल विश्व-प्रसिद्ध हो जाती है। चाहे वह अजन्ता की कला हो या अवनीन्द्र जी की कलाकृति हो, चाहे पिकासो का चित्र हो या रूबेन्स का। सभी में इन गुणों की झलक अवश्य दिखायी पड़ती है। जिस कला में सार्वभौमिकता के साथ एकता व चिरन्तरता विद्यमान होगी वही कला सत्य का साक्षात्कार कराने में समर्थ होगी और ब्रह्मा से निकटता स्थापित कर सकेगी।

प्रत्येक कला का उद्देश्य समान होता है और वह है आनन्द की सृष्टि कलाकार अपनी कला के सहारे विभिन्न रूपाकारों, रंगों, रेखाओं के माध्यम से इसी आनन्द को प्राप्त करने का प्रयास करता है-

''कलाति ददातीति कला''

अर्थात् सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के द्वारा सुख प्रदान करने वाली वस्तु का नाम कला है।

आनन्द ब्रह्म का ही पर्याय माना जाता है-

''आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात।
आनन्दात ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
आनन्देन जातानि जीवन्ति।
आनन्द प्रयन्त्यभिविशन्तीति।''

-तैत्तिरीय उपनिषद

अर्थात् आनन्द ब्रह्म है, आनन्द से ही सभी जीवन उत्पन्न होते हैं, आनन्द से ही उत्पन्न होकर जीते हैं तथा मृत्यु के उपरान्त आनन्द में ही प्रवेश करते हैं।

आनन्द की अनुभूति को प्राप्त करने में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति एक जीवन्त गुण है। सौन्दर्य आनन्द का ही साकार बिंब और व्यक्तिकरण है। इस आनन्द का उत्स रस है, रस ब्रह्म है-

''रसो वै सः।
रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।
को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्।
यदेष आकाश आनन्दो न स्यात एष ह्येवानन्दयति।''

सौन्दर्य के आध्यात्मिक रूप का निरूपण अत्यन्त प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। कलाकार की अन्तः चेतना ब्रह्माण्ड के विभिन्न प्रकार के स्थूल व सूक्ष्म तत्वों से मानस साक्षात्कार करती रहती है और उनमें समाहित आन्तरिक सौन्दर्य व गुणों से प्रभावित और स्पन्दित होती रहती है। जब कलाकार अपनी सौन्दर्य की अनुभूति को कलाकृति के माध्यम से प्रकट करता है तो उस कलाकृति में सम्पूर्ण विश्व के रूप व गुणो के दर्शन स्वतः ही हो जाते हैं और एक श्रेष्ठ कलाकृति की अनुभूति हमारी अन्तः चेतना को एक साथ कई स्तर पर झंकृत कर देती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में ''हमारी अन्तः सत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है।''

प्लेटो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति सुन्दर वस्तु को अपना प्रेमास्पद चुनता है। अतः कला में सौन्दर्य अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होंने कला के सत्य की अनुकृति माना है।

अरस्तू कला को अनुकरण कहते हैं जबकि हीगेल का मानना है कि कला आदि भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम है।

टालस्टाय मानते हैं कि कलाकार रंग, रेखा, क्रिया, ध्वनि, शब्द आदि के माध्यम से जिन भावों की अभिव्यक्ति करता है उन्हीं भावों को श्रोता, दर्शक और पाठक के मन में जागृत करने में सफल हो जाये वही कला है।

फ्रायड ने कला को दमित वासनाओं का उभार माना है।

जयशंकर प्रसाद मानते हैं कि ईश्वर की कर्तव्य शक्ति का मानव द्वारा शारीरिक तथा मानसिक कौशलपूर्ण निर्माण ही कला है।

गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने भी प्रकृति की सचेष्ट अनुभूति को कला कहा है। वास्तव मे समूची प्रकृति का व्यवहारिक ज्ञान ही कला है। यह दृष्टि आनन्द है तथा चित्र के परिष्कृत उन्मेष की परिणति है। चित्र सौन्दर्य सर्जना की विधा है। उसके द्वारा आनन्द को प्रकट किया जा सकता है। चित्र से चारूत्व की सम्प्राप्ति होती है। रस सौन्दर्य और आनन्द का सापेक्ष्य है। सौन्दर्यबोध की वृत्ति द्वारा प्राण दर्शनमयी हो जाता है।

सौन्दर्य केवल मानव के या विश्व के वाह्य रूपों में ही नहीं विद्यमान रहता और न केवल आकृतिगत ही है बल्कि वह प्रकृतिजन्य भी है। कलाकार की कृति में वस्तु सौन्दर्य और आत्मानुभूति, व्यष्टिबोध और समाजबोध, वाह्य और आभ्यंतर आदि सौन्दर्य तत्वों का संयोग रहता है। विश्व में सौन्दर्य की अनुभूतियां अनन्त हैं। जिन कलाकृतियों में इन गुणों का जितना अधिक समावेश होगा, उसका सौन्दर्य बोध उतना विकसित माना जायेगा। इसमें आत्मानुभूति का सौन्दर्य, वाह्य अभिव्यक्ति का सौन्दर्य, सामाजिक व्यवहार का सौन्दर्य, मानवीय भाव एवं प्रयत्न का सौन्दर्य सभी एक उन्नत और व्यापक रूप में एकात्म भाव में आबद्ध रहते हैं।

आचार्य शुक्ल का कहना है कि ''जिस प्रकार वाह्य प्रकृति के बीच पर्वत, वन, नदी निर्झर की रूप विभूति से हम सौन्दर्यमग्न होते हैं, उसी प्रकार अन्तः प्रकृति की दया, श्रद्धा, भक्ति आदि वृत्तियों की स्निग्धता, शीतलता में सौन्दर्य लहराता हुआ पाते हैं। यदि कहीं वाह्य और आभ्यंतर दोनों में सौन्दर्य का योग दिखाई पड़े तो फिर क्या कहना है।

अतः प्रकृति का सौन्दर्य जीवन की सुखमय और दुखमय दोनों ही स्थितियों में प्रस्फुटित होता है। इसकी सौन्दर्यमयी व रूचिर आभा निरन्तरपूर्ण परिस्थितियों में अधिक निखरती है। अतः कला के क्षेत्र में काल मान पात्र, स्थान और काल के अनुरूप करूणा, भय, क्रोध आदि की प्रवर्तक जीवन स्थितियां भी सौन्दर्य बोध के रूप में महत्वपूर्ण बन जाती है।

आदिकाल से ही मानव मन पर वाह्य आवरण का प्रभाव पड़ता रहा है। जिसमें उसकी अन्तः वृत्तियाँ स्वतः ही स्पन्दित होती रही हैं। इन स्पन्दनों

को वह अपनी चेष्टाओं, भंगिमाओं, शब्दोच्चारण द्वारा मूर्तरूप प्रदान करने की चेष्टा करता रहा है। इसी क्रम में उसने अपनी जिन भावनाओं को चित्र रूप में रेखाओं द्वारा उकेरा वह आज भी सुरक्षित है और रंगों, रेखाओं द्वारा हम आदिम गुहागृही मानव के उदयबेला का इतिहास जानने में समर्थ हुये। कला भाषा से प्राचीन मानवीय उत्पत्ति है, अतः एक दृष्टि से उसे हम मानव की सार्वकालिक, सर्वसम्मानित, गहन अनुभूतियों की भावाभिव्यक्ति का साधन कह सकते हैं। कला का महत्व इसी तथ्य से ही सिद्ध हो जाता है कि मानव ने अपने विकास के प्रारम्भिक चरणों में इसे अपनाया था। भारतवर्ष में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व मे विभिन्न प्रागैतिहासिक चित्रों की खोज हो जाने पर ही यह स्वतः ही सिद्ध हो जाता है कि मनुष्य में कला की प्रवृत्ति शाश्वत है।

भारतीय चित्रकला की परम्परा हमें गुहाभित्ति चित्रों में दिखायी पड़ती है, जिसमें आदिम मानव ने अपनी विजय का इतिहास व्यक्त करने के लिये तथा अपने चारों ओर के वातावरण की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिये इन चित्राकृतियों का निर्माण किया।

प्रागैतिहासिक शिला लेखों के पश्चात् मानव जीवन का प्रामाणिक व तिथिबद्ध कलात्मक दर्शन सरगुजा रियासत में स्थित जोगीमारा गुफाओं में उपलब्ध भित्ति चित्र से प्रारम्भ होता है जो इन गुफाओं से होता हुआ अजन्ता के शास्त्रीय युग तक प्राप्त होता है। इस समय बौद्ध धर्म का प्रचलन होने के कारण तत्कालीन शासकों ने महात्मा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित अनेक कथा-कहानियों को चित्ररूप मे अंकित करवाया। सौन्दर्य की जागरूकता के कारण प्रचलित शैलियों की आत्म तात्विकता के सशक्त प्रयोग भी हुये जो अजन्ता के चित्रों में स्पष्ट रूप से मुखरित हो उठे हैं, वे भारतीय चित्रकला के लिए शास्त्रीय आधार सिद्ध हुये। बौद्ध धर्म से प्रभावित बाघ, सित्तनवासल, बादामी आदि गुफाओं के चित्रों पर अजन्ता परम्परा का ही प्रभाव दिखाई पड़ता है। यह परम्परा निर्बाध रूप से सातवीं शती तक चलती रही। इसके पश्चात् भारतीय भित्तिचित्र परम्परा में कुछ अन्तराल सा दिखायी पड़ता है।

भारत में पूर्वमध्यकाल की चित्रकला के बहुत कम उदाहरण मिलते है। इस समय अनेक साहित्यिक रचनाओं में चित्रकला का उल्लेख प्राप्त होता है। नवीं शताब्दी से ग्यारवीं शताब्दी के मध्य बने कुछ भित्तिचित्रों के उदाहरण एलोरा के कैलाश मन्दिर या बेरूल की गुफाओं से प्राप्त होते हैं। उत्तर मध्यकाल में रचित साहित्यों में चित्रकला का पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है। ग्रन्थों में उल्लिखित वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय समाज में चित्रकला का अत्यधिक प्रचलन था। भवनों, राजप्रासादों, महलों इत्यादि में चित्रों का अंकन किया जाता था। हेमचन्द्र कृत अभिलाषितार्थ चिन्तामणि तथा त्रिषष्टिश्लाकापुरुषचरित ग्रन्थों से विदित होता है कि उस समय राज दरबारों में अनेक चित्रकार होते थे, उनकी एक विशेष सभा होती थी जो भित्तिचित्रों से सुसज्जित होती थी।

मध्यकालीन भारत में पन्द्रहवीं शताब्दी का काल सांस्कृतिक पुनरूत्थान का युग था। इस समय सामाजिक, साहित्यिक व धार्मिक जागृति के कारण यह परम्परावादी कला अपने कुछ मूल परिवर्तन के साथ विकसित हुयी। ईरानी

कलाकारो से प्रेरणा प्राप्त करके भारतीय कलाकारो ने अपनी कला को और अधिक परिष्कृत और परिमार्जित रूप प्रदान किया। अपभ्रंश की परम्परा में भी समयानुकूल परिवर्तन हुये और इन परिवर्तनो के फलस्वरूप एक नयी शैली विकसित हुयी जो राजस्थानी शैली के नाम से जानी गयी।

राजस्थान जैसाकि नाम से ही उसका वैभव दिखायी पड़ता है। यहां की भूमि अपनी वीरता, निर्भयता, बलिदान से सदैव इतिहास के पृष्ठों को भरती रही। यही पराक्रम चित्रकला में अपना महत्वपूर्ण वैभव लेकर उतरा। इतिहास का अध्ययन करने के पश्चात् हम पाते हैं कि राजस्थान की कला विभिन्न पहलुओं से होकर गुजरती रही है। राजनैतिक घटनाओं द्वारा हुयी उथल-पुथल तथा नाना प्रकार की सभ्यताओं के आदान-प्रदान से चित्रशैली में भी समय-समय पर महान परिवर्तन दिखायी पड़ते रहे हैं। इसी राज्य में अनेक मानवजातियाँ अपनी संस्कृति और कलात्मक विरासत को लेकर आयीं और देश में विलीन हो गयीं।

विभिन्न मानवविज्ञान वेत्ताओं एवं पुरातत्वशास्त्रियों की खोज से ऐसे तथ्य प्रकाश में आये हैं, जिनके द्वारा राजस्थान में प्रस्तर काल से लेकर सिन्धु सभ्यता तथा उसके बाद की सभ्यता, संस्कृति व कला के अवशेष प्राप्त होते हैं। वास्तव में राजस्थान में चित्रकला की परम्परा प्रस्तर काल से ही चली आ रही है। अनेक स्थानों पर हुयी खुदायी से प्राप्त चट्टानों पर बने कई प्रकार के चित्र मिले हैं। कलाकारो ने अपनी अनुभूतियों को सार्थकता के साथ चित्रों में व्यक्त किया है। ये चित्रावशेष शिकार, युद्ध और देवी-पूजा इत्यादि से सम्बन्धित थे।

राजस्थान में आहाड़ माध्यमिक, नागौर, गिलुंज, माध्यमिका आदि स्थानों के उत्खनन कार्य में प्रागैतिहासिक सभ्यता की सांस्कृतिक व कलात्मक सामग्री के अवशेष मिलते हैं। इसके अतिरिक्त डा० सत्यप्रकाश जी ने चम्बल, मोरी, केदारगढ़, सिंहलगढ़, छिबूलाला तथा सीताखोड़ी स्थानों पर पूर्व प्रस्तर युगीन अवशेषों को ढूंढ निकाला।

आहाड़ की खुदाई में 1800 ई. पू. के चित्रों के अवशेष प्राप्त होते हैं जिसमें मृत्तिका पात्रों पर सरलता से रेखांकन किया गया है। जिसमें कोणों तथा वृत्तों से बने अलंकरणों की अधिकता है। इसके अलावा जानवरों की आकृतियों का विशेष प्रचलन था। मिट्टी पर स्लेटी रंग की पृष्ठभूमि पर काले व लाल रंग के जानवरों का अंकन करते थे। इन पात्रों पर बने रेखांकन व चित्रकारी से स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान के सामान्य जन-जीवन में सुन्दर चित्रकारी व रेखांकन की प्रवृत्ति आदिकाल से ही चली आ रही है।

प्रसिद्ध इतिहासकार तारानाथ ने राजस्थान की भूमि मारवाड़ क्षेत्र के श्रृंगधर नामक चित्रकार का उल्लेख किया है। राजा शिलादित्य के समय श्रृंगधर एक महान कलाकार व कलागुरु रहे। उस समय भिन्नमाल कला का प्रमुख केन्द्र था। इस केन्द्र का उल्लेख विक्रम संवत 703 के शिलालेख में मिलता है। शिलादित्य के पश्चात् भी अनेक शासकों ने विषम राजनैतिक परिस्थितियों का सामना करते हुये भी कला को संरक्षण प्रदान किया। अनेक जैन ग्रन्थों की रचना की गयी, जिसमे 1317 ई० में लिखित श्रावगपदिक्रमण सुत्तचूर्णी नामक

ताड़पत्रीय सचित्र ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का महत्वपूर्ण स्थान है। 1450 ई0 के लगभग एक प्रति गीतगोविन्द की और दो प्रति बाल-गोपाल स्तुति की चित्रित की गयी जो कृष्ण सम्बन्धी प्रथम उपलब्ध चित्रण माना जाता है, जिसमें राजस्थानी चित्रकला के प्रथम बीज दृष्टिगोचर होते हैं।

1222 ई0 की वाचस्पतिमित्रकृत न्यायतात्पर्य टीका की सचित्र पुस्तक राजस्थानी चित्रकला की विकसित परम्परा का द्योतक है। इसी समय से ही साहित्य के आधार पर चित्रण परम्परा को विशेष प्रोत्साहन किया।

विशुद्ध रूप से राजस्थानी चित्रकला का प्रारम्भ पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध और सोलहवीं शती के पूर्वार्द्ध के बीच माना जा सकता है उसकी उत्पत्ति का केन्द्र (मेदपाट) मेवाड़ ही रहा। इस प्रकार गुजरात और मेवाड़ में जिस समृद्धिशाली राजस्थानी शैली के उदय के कारण भारतीय चित्रकला की प्रसुप्त चेतना का उदय हुआ, उसमें कोई नया तथ्य नहीं था। वास्तव में वह केवल प्राचीन अपभ्रंश का नया उत्थान मात्र था। प्रारम्भिक राजस्थानी शैली के चित्रों में अपभ्रंश शैली के प्रभाव के कारण चटक लाल व पीले रंगों को मुख्य रूप से चित्रित किया है जिसमें नुकीली नाक, तथा आँखें शीशे की तरह चिपकायी गयी चित्रित हुयी हैं। वहीं आकृतियों के अंग-प्रत्यंगों का रेखांकन भी स्वाभाविक रूप से नहीं हुआ है। यद्यपि भाव तथा आलेखन की दृष्टि से राजपूत शैली ने एक नवीन परिवेश को चुना था परन्तु विषयवस्तु के अंकन में उसने अपभ्रंश शैली का ही आश्रय लिया। रागमाला, श्रृंगार, ऋतुवर्णन, कृष्णलीला आदि से सम्बन्धित जो उत्कृष्ट कलात्मक चित्र राजपूत शैली की देन है उसका स्रोत अपभ्रंश शैली ही थी।

राजस्थान के चित्रों एवं भित्तिचित्रों में राधा और कृष्ण के भक्तिमय प्रेम की परम्परा की शुरुआत वैष्णववाद के उदय के बाद प्रारम्भ हुयी, जिसमें कृष्ण भक्ति को ही मोक्ष का साधन बताया। 1659 ई0 में महाकवि केशवदास के ग्रन्थ कविप्रिया तथा 1653 ई0 में रसिकप्रिया के दोहों के आधार पर चित्रांकन कार्य हुआ। केशव ने काव्य में दो परिपाटियों को जन्म दिया। उन्होंने स्त्री अलंकरण के सोलह प्रसाधनों का वर्णन किया जिसे चित्रकार ने रंग और रेखाओं द्वारा चित्रित किया है। दूसरी ओर बारहमासा ऋतुओं का वर्णन किया है, जिसके आधार पर चित्रकारों ने रंग के मनोवैज्ञानिक प्रभाव के स्वरूप ऋतुओं को अपना चित्रण विषय बनाया। इस शैली में राग-रागनियों से सम्बन्धित चित्रों का सृजन हुआ है जिसमें सांगीतिक रूपों की अभिव्यक्ति की गई है।

कालान्तर में राजस्थान की विभिन्न उपशैलियों में समयानुसार विभिन्न परिस्थितियों में लघुचित्र परम्परा में कुछ प्रमुख आयाम के कारण रहते हुये उन पर मुगल व फारसी प्रभाव पड़ने के संकेत मिलते हैं। यद्यपि इसकी आत्मा विशुद्ध रूप से भारतीय थी। राजस्थान क्षेत्र की सभी शैलियां सत्रहवीं व अठारहवीं शताब्दी में शासकों के संरक्षण में पर्याप्त पुष्पित एवं पल्लवित हुयीं और पूर्णता को प्राप्त किया, जो भारतीय चित्रकला में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। अनेक चित्रकारों ने राजाओं व सामन्तों के कला प्रेम व संरक्षण में अपना जीवन समर्पित करते हुये विभिन्न शैलियों का मोहक संसार रचा जो बीकानेर,

कोटा, बूंदी, जयपुर, किशनगढ़, जैसलमेर, नाथद्वारा, अजमेर, मेवाड़, अलवर आदि नामों से प्रसिद्ध हुयीं। राजस्थान की लघु शैलियों में किशनगढ़ एक ऐसी चित्रशैली है जो कलात्मक दृष्टि से इतनी समर्थ व प्रभावी है कि यह अनायास ही दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। अपनी आकर्षक मनोहारी रंगयोजना, गतिमान लयात्मक रेखायें, सौन्दर्य तथा लावण्य संयोजन वैशिष्ट्य के कारण किशनगढ़ शैली के चित्र न केवल भारत में वरन् संसार भर में प्रसिद्ध हैं। किशनगढ़ शैली में काव्य तथा कला का जो कमनीय संगम मिलता है वह अपने आप में अनूठा है। अंकित विषय के प्रतिपादन, विश्वासपूर्ण आलेखन तथा तूलिका की गतिशीलता के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि किशनगढ़ शैली के लघुचित्र तत्कालीन कलाकारों की साधना एवं भावना के ज्वलन्त प्रमाण हैं। किशनगढ़ शैली पर मुगल कला का प्रभाव दिखायी पड़ता है फिर भी उसने एक मौलिक चित्र शैली को जन्म दिया। इस राज्य का सैन्य प्रदर्शन में कोई विशेष महत्व नहीं था परन्तु चित्रकला के क्षेत्र में किशनगढ़ राज्य मील का पत्थर साबित हुआ। इस नगर को बसाने वाले राठौड़ राजा जोधपुर के वंशज थे, किन्तु कला के क्षेत्र में किशनगढ़ मारवाड़ के अधीन ही नहीं रहा, अपितु राजस्थान के अन्य राज्यों से भी आगे निकल गया था। कला व सौन्दर्य की दृष्टि से यहां के चित्र बड़े आकर्षक एवं प्रभावशाली हैं।

प्रथम अध्याय

(a) किशनगढ़ का भौगोलिक या प्राकृतिक स्वरूप
(b) ऐतिहासिक स्वरूप
(c) सांस्कृतिक स्वरूप

प्रथम अध्याय

किशनगढ़ का भौगोलिक या प्राकृतिक स्वरूप

समय का अजस्रप्रवाह अपने में अनेक कालदर्शी संवेदनायें संजोये हुये है। इसी प्रवाह ने कहीं दुर्गम घाटियों को पार किया तो कहीं सपाट मैदानों का सिंचन किया। कहीं यह काल की बाढ़ में लुप्त हुआ तो कहीं धरती का गर्भ चीरकर सामने आ खड़ा हुआ। इसी क्रम में राजपूत काल तमाम उपलब्धियों को स्वयं में समेटे कथा यात्रा का एक बेजोड़ अध्याय है।[1]

सांस्कृतिक व ऐतिहासिक विशेषताओं की तरह राजस्थान की भौगोलिक स्थिति भी अनेक विशिष्टताओं से पूर्ण है। किसी भी देश की भौगोलिक स्थिति वहां की संस्कृति व कला को प्रभावित करती है।[2] जब एक देश में

---

1 शचीरानी गुर्टु-- भारतीय कला की रूपरेखा, पृ0 99

2 Dr. Gopinath Sharma - Social Science in Medieval Rajasthan, P.6.

अलग-अलग देशों के लोग भिन्न-भिन्न भागों से आते हैं तब वे अपनी कला व संस्कृति के साथ उस देश की कला व संस्कृति को आत्मसात करके एक नवीन दिशा प्रदान करते हैं। इसी कारण प्रत्येक देश की कला का उत्थान व पतन होता रहता है। राजस्थान की चित्रकला में प्राकृतिक वातावरण की पृष्ठभूमि के अंकन में यहां की भौगोलिक संरचना का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। वैसे भी कलाकार जिस स्थान पर रहता है, वह उस स्थान की समस्त विशेषताओं को अपनी कृतियों में आत्मसात कर लेता है। चाहे वह वहां का प्राकृतिक वातावरण हो, चाहे वहां के लोगों का पहनावा हो, चाहे रहन-सहन हो या विचार साहित्य इत्यादि हो।

समुद्र तट से मीलों दूर स्थित यहां के अनेक क्षेत्रों में मिलने वाले सीपी, शंख, कौड़ी आदि समुद्री पदार्थों के जीवाश्म के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहां कभी किसी समय समुद्री क्षेत्र था।[1] परन्तु आज यह विचित्र सत्य है कि उस समय जो क्षेत्र जल से आप्लावित था आज उसी क्षेत्र ने मरुस्थल का रूप धारण कर लिया।[2]

राजस्थान की भौगोलिक स्थिति देखने से ज्ञात होता है कि इसके एक तरफ तो अरावली पर्वत श्रेणी स्थित है तो दूसरी ओर मरुस्थलीय भाग आवेष्ठित है। एक ओर जहां यह शौर्य और वीरता की भूमि है, वहीं दूसरी ओर अलंकारिता, कलात्मकता व श्रृंगारिक तत्वों से परिपूर्ण है।[3] ऐसा विरोधाभास इसी मरुभूमि पर देखने को मिलता है। राजस्थान का आकार एक विषम कोणीय चतुर्भुज के रूप में है जिसका क्षेत्रफल लगभग 1,32,147 वर्गमील है।[4] इसके उत्तरी, पश्चिमी, दक्षिणी तथा पूर्वी भागों में क्रमशः बीकानेर, जैसलमेर, बाँसवाड़ा तथा धौलपुर की सीमायें है। इसके पश्चिम उत्तर में पाकिस्तान, उत्तर पूर्व में पंजाब, पूर्व में मध्य प्रदेश तथा दक्षिणी सीमा पर गुजरात स्थित है।[5] भारत का यह पश्चिमी राज्य जो 1947 मे अस्तित्व में आया, ब्रिटिश काल में यह क्षेत्र राजपूताना के नाम से जाना जाता था। स्वतन्त्रता के पश्चात इसे राजस्थान कहा जाने लगा। स्वतन्त्रता से पूर्व राजस्थान छोटी-छोटी रियासतों में बंटा था जैसे जोधपुर, बूंदी, कोटा इत्यादि। बाद में इन्हीं रियासतों को मिलाकर वृहद राजस्थान राज्य का निर्माण हुआ।[6] ये सभी भू-भाग पहाड़ की घाटियों में या नदियों के किनारे स्थित हैं। इन मैदानों में उपजाऊ मैदान व जंगल दोनों ही क्षेत्र प्राकृतिक छटा का अनुपम व निराला सौन्दर्य प्रस्तुत करते हैं। विशेष रूप से किशनगढ़ में प्राकृतिक दृश्यों की अद्भुत छटा देखने को मिलती है, जो पूर्णतया झीलो, पहाड़ों, उपवनों और विभिन्न पशु-पक्षियों से युक्त है। यहां का प्राकृतिक परिवेश कलाकारों के लिये प्रेरणा व अंकन का विषय रहा है।[7]

अजमेर जिले के प्रशासन के उपविभाग का मुख्यालय किशनगढ़ एक कस्बा है।[8] यह राज्य 2222 वर्ग मी० क्षेत्र के विस्तृत भू-भाग पर फैला है। जिसे

---

1. डा० वी०एस० भार्गव-*राजस्थान का इतिहास*, पृ० 1.
2. उर्मिला शर्मा-*राजस्थान स्वतन्त्रता के पहले और स्वतन्त्रता के बाद*, पृ० 40.
3. डा० सुमहेन्द्र-*राजस्थानी रागमाला चित्रपरम्परा*, पृ० 8.
4. कर्नल टाड-*राजस्थान का इतिहास*, पृ० 10.
5. M.S. Randhawa-*Kishangarh Painting*, P.1.
6. वी० एम० पानगड़िया-*राजस्थान का इतिहास*, पृ० 73.
7. सुरेन्द्र सिंह चौहान-*राजस्थान चित्रकला*, पृ० 96.
8. Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme in Rajasthani Miniature*.

दो लम्बी संकरी पट्टियों के रूप में देखा जा सकता है जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। किशनगढ़ राजस्थान के मध्य 25° व 49' व 26° 59' उत्तरी अक्षांश तथा 70° व 40' व 75° 11' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।[1] किशनगढ़ के उत्तर पश्चिम में जोधपुर, पूर्व में जयपुर, पश्चिम में अजमेर तथा दक्षिण में शाहपुर स्थित है। दिल्ली अहमदाबाद मुख्य रेलमार्ग पर स्थित किशनगढ़ दिल्ली से लगभग 515 कि0मी0 तथा अजमेर से 29 कि0मी0 दूरी पर स्थित है।[2] यह बस तथा रेल दोनों यातायात से अच्छी तरह जुड़ा हुआ है। यहाँ का मुख्य बस स्टेशन मदनगंज है। किशनगढ़ मदनगंज से 10 कि0मी0 पूर्व में स्थित है।

किशनगढ़ का उत्तरी भाग तीन छोटी पहाड़ियों से घिरा हुआ है तथा दक्षिणी भाग पठार के रूप में है।[3] यह एक खूबसूरत गुण्डोलाव झील के किनारे पर स्थित है। मदनगंज से किशनगढ़ की ओर चलने पर यह झील रास्ते में पड़ती है। इस झील के किनारे-किनारे सामन्तों व शासकों के अनेक महल व गढ़ियाँ बनी हुयी हैं जो मध्य युग की झांकी सी प्रस्तुत करती हैं। झील के एक किनारे पर फूलमहल स्थित है। झील के मध्य एक सुन्दर जल-महल है जो कि मोखमविलास के नाम से जाना जाता है। यहां पर फूलमहल से केवल नाव द्वारा ही पहुंचा जा सकता है।[4] इसका पूर्वी भाग सड़क मार्ग से जुड़ा है जो बरसात में झील के भर जाने पर डूब जाता है। कुछ चित्रकारों ने इसे अपने चित्रों में चित्रित किया है।

दूर-दूर तक विस्तृत झील के सुखद जल में क्रीड़ा करते हुये हंसों, बत्तखों, जलमुर्गाबी, सारस, बक तथा तैरती नौकायें यहाँ के प्राकृतिक परिवेश में एक मधुरता सी भर देते हैं। कलरव करते पक्षियों की मधुर ध्वनि मन की आन्तरिक भावनाओं को रस मुग्ध कर देती हैं। यहाँ के वातावरण के अनुकूल ही चित्रों में प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में हुआ है।[5] प्रकृति के विस्तृत परिवेश को चित्रित करने का श्रेय किशनगढ़ शैली को ही है।[6]

किशनगढ़ का मुख्य नगर रूपनगढ़ है। किशनगढ़ की प्रसिद्ध झील गुण्डोलाव के मध्य स्थित मोखमविलास वर्तमान समय में पुलिस सेन्टर के रूप में विख्यात है। कलाकार ने चित्रों में इस स्थान का भी चित्रण किया है। अनेकानेक चित्र ऐसे हैं जिनकी पृष्ठभूमि में किशनगढ़ नगर की अभिव्यक्ति गुण्डोलाव झील के तट पर कलाकारों द्वारा अभिव्यंजित हुई।[7] चित्रों में यहां के प्राकृतिक परिवेश, झील, हरे-भरे वृक्ष तथा विभिन्न पक्षियों का मनोहर अंकन हुआ है।[8] तैरती नौकायें, नौकाओं में प्रेमालाप करते राधा-कृष्ण का अंकन अनोखा है। ऊँची अट्टालिकाओं, राजभवनों कुंजों से झांकती मुण्डेरें, केले के वृक्षों तथा कमलदलों से ढके जलाशय आदि भौगोलिक रचनाओं का अंकन

---

1 सुरेन्द्र सिंह चौहान-*राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 96.
2 Sita Sharma-*Krishan Leela Theme in Rajasthani Miniature*, P.72.
3 M.S. Randhawa-*Kishangarh Painting*, P.1.
4 Anjana Chakrawarti-*Indian Miniautre Painting*, P. 64.
5 डा जयसिंह-*राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 45.
6 वहीं, पृ0 45.
7 Andrew Topsfield-*Painting from Rajasthan in the National Gallery*, P. 25.
8 डा0 आर0 ए0 अग्रवाल-*कला विकास*, पृ0 112.

किशनगढ़ शैली में बखूबी हुआ है। इस प्रकार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष दोनों ही रूपों में कलाकार किशनगढ़ के भौगोलिक आयामों से पूर्णतया प्रभावित हुआ है।

किशनगढ़ के राजकीय प्रतीक चिन्ह के रूप में एक उड़ती हुयी पतंग को प्रदर्शित किया गया है, जिसके मध्य में दो घोड़ों को चित्रित किया गया है। पतंग में नीचे की ओर अंकित दो शब्द रीति-नीति किशनगढ़ की राज्य नीति व परम्परा को दर्शाते हैं। किशनगढ़ के ध्वज में तीन रंग है - सबसे ऊपरी पट्टी काले रंग की है, मध्य की सफेद है तथा सबसे नीचे की पट्टी लाल रंग की है।[1] इसी कारण झण्डे को श्याम सुन्दर लाल के नाम से भी जाना जाता है। झण्डे का काला रंग तमोगुण अंधकार का प्रतीक है। सफेद रंग सतोगुण का प्रतीक है, जो मनुष्य को कल्याण की ओर ले जाती है। रक्त वर्ण जो रजोगुण का प्रतीक माना जाता है, प्रेम व आनन्द की भावनाओं को दर्शाता है।

किशनगढ़ के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण स्थान हैं जो महल, किले, मण्डप उद्यान के रूप में चित्रों में चित्रित किये गये हैं जो इस प्रकार हैः -

किला-

किशनगढ़ का यह किला 1668 में राजा किशनसिंह के द्वारा बनवाया गया था। इस किले का निर्माण लम्बी ऊंची दीवारों से किया गया था तथा दीवार के बाहर बनी नहरों में पानी भरा रहता था, जिसका वर्णन ढूंढार के कवि ने इस प्रकार किया है[2]

> ''ऐसे सुदृढ़ गढ़ हों तो सुरराज के तो
> मेघनाथ इन्द्रजीत पदवी न पावतो।
> रावण के लंकागढ़ ऐसो दृढ़ हो षातो तो
> अन्दर किला में रीछ बन्दर न आवतो।
> हिंगल हो तो गृहराज के जो ऐसो गढ़
> राहु की न परवाह चिट्ठा लावतो।
> कृष्णागढ़ जे सो गढ़ हो तो कृष्णा के तो
> छोड़ रण को कदापि रण छोड़ न कहावतो।।''

इस किले का कृष्ण मंदिर वल्लभ सम्प्रदाय के श्रीनाथजी के नाम से जाना जाता है। इस मन्दिर में पुष्टिमार्ग के प्रणेता महाप्रभु बल्लभाचार्य का एक चित्र उपलब्ध है।

<u>पंचमुखी हनुमान</u>

राजस्थान में हनुमानजी के मंदिर बड़ी संख्या में शहर व गाँव में मिलते हैं परंतु किशनगढ़ में इनकी अधिकता थी। हनुमान की मूर्ति में पांच सिर

[1] Dr. Sumhendra-*Splendid Style of Kishangarh Painting*, P.3.
[2] वही, पृ0 4.

इसकी विशिष्टता थी। मूर्ति के बीच के हिस्से का आकार घोड़े की शक्ल जैसा था तथा हाथों में माला, त्रिशूल, डमरू, किताब व कमण्डल इत्यादि से मूर्ति सजी दिखती है। यह सफेद पत्थर की मूर्ति आस-पास के क्षेत्रों में काफी प्रसिद्ध है।

भैरोघाट बालाजी

यह गुण्डोलाव झील के पश्चिम में स्थित है। यह पर्यटन स्थल के रूप में जाना जाता है।

रेडी माता मंदिर

यह मन्दिर भैरवघाट बाला जी के उत्तर में स्थित है। वास्तव में यह दुर्गामन्दिर है जो पहाड़ पर बना हुआ है। वास्तुकला की दृष्टि से यह मन्दिर अभी भी काफी अच्छी दशा में है। मन्दिर की दीवारें भित्ति चित्रों से अलंकृत की गयी थी परन्तु वे अब मिट से गये हैं।

नवगढ़ का मन्दिर

यह नगर का एक मुख्य ऐतिहासिक मन्दिर है जो सुखसागर के समीप एक पहाड़ी पर स्थित है। इस मन्दिर में विशेष अलंकरण नहीं हुआ है तथा यह छतरीनुमा बना हुआ है। वर्तमान समय में भक्तगण इस मन्दिर में गेहूं के आटे से बने दिये जलाते हैं।

शनि का मन्दिर

यह शनि ग्रह का मन्दिर है जो नौ ग्रहों में से सातवां ग्रह है। डाकोट परिवार के लोग इसकी देख-रेख करते थे तथा पूरे उत्तरदायित्व के साथ यहां पूजा करवाते थे। यहां स्थित मूर्ति काले रंग की है। इस देवता के 12 मुख हैं और इस मूर्ति को सूरज को खाने की मुद्रा में बनाया गया है।

गणेशजी का मन्दिर

भगवान गणेशजी की पूजा देशभर में की जाती है। यह मन्दिर सवारी दरवाजा के सामने स्थित है। भगवान गणेश की कई तरह की मूर्तियां होती थी।

पीताम्बर की गल

यह स्थल किशनगढ़ से लगभग 8 कि0मी0 दूर है। यहां प्राकृतिक दृश्यों से ढकी सुन्दर पहाड़ी तथा झरने के बीच एक दरार सी है जो बारिश के मौसम में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। यहाँ पर एक विश्रामगृह है जहां पर लोग पिकनिक मनाने या ठहरने आते हैं। यहीं पास में कदम्ब के दो वृक्ष लगे हैं। इन वृक्षों की धार्मिक भावना से पूजा की जाती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह पेड़ वहीं पर उत्पन्न होता है जहां पर श्री कृष्णजी गये हों।

गुण्डोलाव झील

यह झील एक प्रसिद्ध झील है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह विशेष महत्व रखती है। किशनगढ़ के चित्रकारों ने लघु चित्रों में इसे बड़ी ही खूबसूरती से चित्रित किया है। यहाँ पर एक प्रस्तर अभिलेख निर्मित है जो श्वेत संगमरमर के शिलाफलक पर उत्कीर्ण किया गया है। इस लेख के अनुसार रघुनाथ सिंह के पुत्र भरत सिंह के निरीक्षण में इसमें मरम्मत का कार्य किया गया। इसकी मरम्मत में लगभग 32 हजार रूपये का खर्च आया। इस झील में बाँस की बनी नावों को अवसर देखा जा सकता है। यह झील पश्चिमी किनारे पर सड़क ,मार्ग द्वारा गोखमविलास से जुड़ी है परन्तु बरसात के मौसम में झील में पानी भरने के कारण सड़क पानी में डूब जाती है। कृष्ण के एक चित्र में जिसमें वे राधा को फूल उपहार में दे रहे हैं, में यह सड़क चित्रित की गयी है।

ऐतिहासिक स्वरूप

किशनगढ़ के ऐतिहासिक स्वरूप की जानकारी हमें विभिन्न शासकों के राज्यकाल तथा चित्रों के माध्यम से मिलती है। चित्रकला का इतिहास मानव इतिहास से ही जुड़ा है। मानव विज्ञान-वेत्ताओं और पुरातत्व इतिहासकारों ने अपनी खोज के आधार पर यह प्रमाणित कर दिया है कि मानव हृदय में चित्र रचना की भावना प्राचीन काल से ही चली आ रही है। राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़ और कुशलगढ़ क्षेत्र की उत्पत्ति का एक जैसा ही आधार माना जाता है। यहाँ के शासक हरिश्चन्द्रवरदायी के वंशज माने जाते हैं। वरदायीसेन के दो पुत्र थे संतराम और सीहा, जिन्होंने राजपूताना क्षेत्र में आकर 1211 ई० -1273 ई० में मारवाड़ क्षेत्र की स्थापना की।[1] यहाँ के राठौर नरेश अयोध्या के मर्यादा पुरूषोत्तम रामचन्द्र के पुत्र कुश के कुल के माने जाते हैं। रामायण व भागवत आदि ग्रन्थों से पता चलता है कि 4000 वर्ष पूर्व मारवाड़ का दक्षिणी-पूर्वी भाग आबाद था। इस राज्य पर अनेक राजवंशों मौर्य, शुंग, कण्व, कुषाण, शक, नाग, गुप्त, वर्धन इत्यादि ने राज्य किया। नागवंशियों के यहां राज्य करने का अनुमान यहां नागादरी, नागत तालाब, नागाणागॉव, नागौर नगर (भौगीशैल), नागपर्वत आदि नामों के कारण किया जाता है। नागवंश के पश्चात् यहां गुप्त वंश का शासन मिलता है।[2] गुप्तकालीन अनेक सिक्के मारवाड़ के विभिन्न स्थानों से प्राप्त होते हैं। गुप्तकाल के दो तोरणद्वार माण्डोर के प्राचीन दुर्ग के ध्वंसावशेष से मिले है। गुप्तों के पश्चात यहां हूणों का प्रभाव रहा। इनके कई सिक्के नागौर, पाली, जालौर, बाड़मेर आदि परगनों

---

[1] Dr. Sumhendra-*Splendid Style of Kishangarh Painting*, P. 2.

[2] हीराशंकर ओझा-*राजस्थान का इतिहास,* 18.

से मिले हैं। हूणों को पराजित करके यशोधर्मन ने मारवाड़ पर अधिकार कर लिया। बाद में यहां प्रतिहारों और चौहानों का राज्य रहा। दक्षिण पश्चिमी भाग में चावण्डो तथा चालुक्यों ने भी राज्य किया।[1]

जोधपुर से प्राप्त बाउक का वि. सं. 894 का अभिलेख, नागभट्ट का बचकुला का वि. सं. 872 का अभिलेख, भोज का दौलतपुरा का वि. सं. 900 का दानपात्र तथा कुक्कुट का घटियाला वि. सं. 918 आदि अभिलेखों से यहां पर प्रतिहार वंश के शासकों का काफी विस्तृत क्षेत्र में राज्य करने का साक्ष्य मिलता है। मारवाड़ के पूर्वी व दक्षिणी भाग में चौहानों का राज्य रहा।[2] प्रारम्भ में चौहानों का राज्य नागौर में तथा बाद में सांभर मे रहा। जालौर व सांचोर आदि स्थानों पर भी चौहानों की एक शाखा के आधिपत्य का उल्लेख मिलता है।[3] मालानी क्षेत्र में परमारों का राज्य दसवीं शताब्दी में था। दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्र के चौहान गुजरात के चालुक्यों के अधीन कुछ समय तक रहे थे। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने नाडोल व जालोर के चौहान राज्यों को समाप्त कर दिया। परमार शासक धरणीवराह को एक शक्तिशाली शासक माना गया है।[4] मारवाड़ व आबू में परमारों की सत्ता की समाप्ति चौहानों द्वारा ग्यारहवी शताब्दी में कर दी गयी थी। वि. सं. 1368 में अलाउद्दीन खिलजी ने जालौर के चौहान राज्य को भी नष्ट कर दिया।[5] वि. सं. 1351 में मण्डोर पर फिरोजशाह द्वितीय ने अधिकार कर लिया था। इसके अलावा मुस्लिम शासकों द्वारा मारवाड़ पर छोटे-मोटे आक्रमण होते रहे हैं।[6] इस प्रकार वि. सं. 1300 तक मारवाड़ पर किसी राजवंश का अधिकार स्थाई रूप से नहीं रहा।

मारवाड़ राज्य की स्थापना कन्नौज के शासक जयचन्द्र के वंशज राठौड़ रावसीहा द्वारा की गई थी। रावसीहा को मारवाड़ के राठौड़ वंश का मूलपुरुष माना जाता है।[7] मुहम्मद गोरी के आक्रमण से सन् 1194 ई0 में कन्नौज भी नष्ट हो गया। अपना राजनैतिक भविष्य अच्छा न देखकर तथा तुर्कों की बढ़ती हुयी शक्ति देखकर उसने तीर्थयात्रा पर द्वारिका जाने का निश्चय किया। वहां उसने यात्रियों की भलाई के अनेक कार्य किये। वहां से लौटते समय वह पाली पहुंचा। उस समय वहां के समृद्ध ब्राह्मण खेड़ागाँव के गुहिल्ला वंश के लोगों के अत्याचार से पीड़ित थे।[8] जसोधर जो पालीवाल ब्राह्मणों का मुखिया था ने अपनी जाति के लोगों के साथ जाकर सीहाजी से सहायता मांगी। सीहाजी ने खेड़ागाँव पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया और पालीवाल जसोधर को वहां का शासक नियुक्त किया।[9] परन्तु बाद में अवसर पाकर उसने पाली तथा आसपास के प्रदेश पर अधिकार कर लिया और यहीं से मारवाड़ राज्य का बीजारोपण हुआ। मुसलमान शासकों से युद्ध करते हुए 1273 ई0 में इसकी मृत्यु

---

[1] जगदीश सिंह गहलौत-*मारवाड़ राज्य का इतिहास*, पृ0 1.

[2] विश्वेश्वर नाथ रेउ-*मारवाड़ राज्य का इतिहास*, भाग -1, पृ0 25.

[3] गोविन्द सिंह राठौर-*मारवाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि*, पृ0 5.

[4] जगदीश सिंह गहलौत-*मारवाड़ राज्य का इतिहास*, पृ0 59.

[5] विश्वेश्वर नाथ रेउ-*मारवाड़ राज्य का इतिहास*, पृ0 31.

[6] वहीं, पृ0 32.

[7] गोविन्द सिंह राठौर-*मारवाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि*, पृ0 3.

[8] Krishan Chaitanya-*A History of Indian Painting, Rajasthan Tradition*, P. 119.

[9] Dr. Sumhendra, *The Splendid Style of Kishangarh Painting*, P. 6.

बीजारोपण हुआ। मुसलमान शासकों से युद्ध करते हुए 1273 ई0 में इसकी मृत्यु हो गयी। सीहाजी के पश्चात 1273 ई0 से 1383 ई0 तक उसके वंशज आस्थान, कान्हपाल - रायपाल, जालणसी, कान्हड़देव, त्रिभुवनसी, सलखा, मल्लिनाथ, तथा वीरम आदि शासक के रूप में राज्य करते रहे। वीरम तथा मल्लिनाथ, 1212 से 1383 ई0 तक का समय मारवाड़ के लिये उथल-पुथल की घटनाओं का संघर्षपूर्ण काल रहा है।[1] 1383 ई0 में वीरम का देहान्त हो जाने के पश्चात् रावचूड़ा के शासक बनने से राज्य में एक नवीन युग का प्रारम्भ हुआ। माण्डोर के दुर्ग पर कब्जा करके रावचूड़ा ने उसे अपनी राजधानी बनाया और अपने राज्य के डीडवाना, नागौर, सांभर, अजमेर, बांगलूप्रदेश (वर्तमान बीकानेर) तथा फलौदी तक विस्तृत किया। चूड़ा के पश्चात उसके पुत्र कान्हा, सत्ता और रणमल राज्य के उत्तराधिकारी हुये।[2]

राजस्थान के राष्ट्रकूट वंश के समान बागड़ी, जोधपुर, बीकानेर तथा थनोप के हस्तिकुण्डी राठौर भी प्रसिद्ध हैं। हस्तिकुण्डी गोड़वाड का शासक था। इस वंश के शासक विदर्भराज ने 916 ई0 में हस्तिकुण्ड में एक स्मारक बनवाया तथा धवल नामक व्यक्ति की सहायता से मेवाड़ शासक मुंज को पराजित किया। उसने आबू के धरणिवराह परमार को शरण प्रदान की। हस्तिकुण्डी राठौर की एक पुत्री का विवाह मेवाड़ के शासक भारतीभट्ट से हुआ। 1006 ई0 के एक अभिलेख में धनवुआ राठौरों का भी उल्लेख मिलता है[3] जो थनोपी वंश से ही सम्बन्धित थे। इस परिवार में दन्तिवर्मा, बुद्धराज और गोविन्द आदि प्रसिद्ध शासक हुये। 1305 ई0 के नोगामा अभिलेख में रानका तथा वीरम राठौरों के समान बागड़ी राठौरों का सन्दर्भ प्राप्त होता है।[4]

रावबीका सीहाजी के सोलहवें वंशज थे तथा जोधपुर के संस्थापक रावजोधा के पांचवे पुत्र थे। इन्होंने वि. सं. 1522 में बीकानेर राज्य की स्थापना की थी। रावदूदा भी इन्हीं के पुत्र थे जिसने मेड़ता राज्य की स्थापना की थी। मरूधरा की मन्दाकिनी अमर कवयित्री मीरा इन्हीं की पौत्री थी।[5] राव मालदेव सीहा के बाइसवें वंशज थे। इनके बीस पुत्र थे। उनके पांचवें पुत्र राजा उदय सिंह थे जिनका जन्म वि. सं. 1594 माघ सुदी 12 (1538 ई0) को हुआ था। 1583 ई0 में ये जोधपुर की गद्दी पर बैठे। इन्होंने सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी तथा ये प्रथम शासक थे जिन्हें मुगल मनसबदारी मिली थी। सम्राट ने उन्हें राजा की उपाधि प्रदान की। स्थूलकाय होने के कारण मुगल दरबार में वे ''मोटा राजा'' के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके सोलह पुत्र थे। किशनसिंह उनका पन्द्रहवां बेटा था जो किशनगढ़ के इतिहास में किशनगढ़ राज्य के उदय का जिम्मेदार बना।[6]

मोटा राजा की एक बेटी का विवाह अकबर के बेटे सलीम के साथ हुआ था। उसका पुत्र खुर्रम जो बाद में शाहजहां बना। अतः किशनसिंह शाहजहां का मामा तथा जहांगीर का साला था। इस वैवाहिक सम्बन्ध के कारण मुगलों

---

[1] बी0 एम0 दिवाकर-*राजस्थान का इतिहास*, पृ0 361.

[2] वहीं, पृ0 362.

[3] Krishan Chaitanya-*A History of Indian Painting] Rajasthan Tradition*, P. 119.

[4] Dr. Sumhendra-*The Splendid Style of Kishangarh Painting*, P. 6.

[5] विश्वेश्वर नाथ रेणु-*मारवाड़ राज्य का इतिहास*, भाग-1, पृ0 31-41.

[6] M.S. Randawa-*Kishangarh Painting*, P. 8.

और राठौरों के आपसी सम्बन्ध और भी दृढ़ हो गये।[1] जोधपुर का शासक सूरसिंह किशनसिंह का भाई था और मुगल दरबार में उसे अच्छा सम्मान प्राप्त था परन्तु अपने भाई के साथ इसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। किशनगढ़ राज्य की स्थापना से लेकर स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में इसका विलीनीकरण कर देने तक इस राज्य में लगभग सत्रह शासकों ने शासन किया।

महाराजा किशनसिंह

महाराजा किशनसिंह का जन्म वि. सं. 1632 कार्तिक सुदी. 8 (1575 ई0) में जोधपुर राज्य में हुआ था। किशनसिंह से बड़ा एक भाई सूरसिंह था जिसके कारण उस समय के नियमानुसार वह मारवाड़ राज्य का उत्तराधिकारी नहीं बन सकता था। अतः वह वहां से अपने कतिपय साथियों के साथ अजमेर चला गया, वहां से उसने मुगल बादशाह अकबर से सम्पर्क स्थापित किया। तब अकबर ने उसे हिन्डौन के किले का उत्तरदायित्व सौंपा परन्तु 1605 ई0 में अकबर की मृत्यु होने के कारण उसे हिन्डौन की जागीरदारी का त्याग करना पड़ा। तत्पश्चात इसने सेठोलाव नामक स्थान को जीतकर उसे अपनी जागीरदारी का सदर मुकाम बनाया।[2] वर्तमान समय में यह किशनगढ़ के समीप ही स्थित है। किशनसिंह ने 1611 ई0 में नवीन नगर की स्थापना की जो बाद में इसके नाम पर किशनगढ़ राज्य के रूप में प्रसिद्ध हुआ।[3] किशनगढ़ में इसने 1615 ई0 तक शासन किया। मुगल सम्राट जहांगीर ने उसे किशनगढ़ का राजा स्वीकार करके उसे महाराजा की उपाधि प्रदान की। जहांगीर ने इसे 1000 पैदल व 500 घुड़सवारों का मनसब भी प्रदान किया।[4]

मोटा राजा उदयसिंह की मृत्यु 1595 ई0 में लाहौर में हो गयी। अकबर ने उसके पुत्र सूरसिंह को मारवाड़ राज्य का उत्तराधिकारी बनाया। सूरसिंह के दीवान गोविन्ददास ने किशनसिंह के एक भतीजे की हत्या करवा दी। किशनसिंह इस बात से बहुत क्रोधित हुआ। दोनों भाई जहांगीर के मेवाड़ के सफल अभियान के पश्चात 1615 ई0 में अजमेर में मिले और अपने भतीजे को मारने के अपराध में गोविन्ददास को समुचित दण्ड देने की प्रार्थना की, पर सूरसिंह ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। एक दिन किशनसिंह के सैनिकों ने गोविन्ददास के तम्बू में घुसकर उसकी हत्या कर डाली।[5] तब सूरसिंह के पुत्र गजसिंह ने अपने पिता की आज्ञा लेकर किशनगढ़ पर आक्रमण कर दिया तथा

---

[1] Dr. Sumhendra - *Splendid Style of Kishangarh Painting*, P.6.

[2] विश्वेश्वर नाथ रेणु-*मारवाड़ राज्य का इतिहास*, भाग-1, पृ0 31-41.

[3] M.S. Randawa-*Kishangarh Painting*, P. 8.

[4] प्रेमशंकर द्विवेदी-*राजस्थानी लघुचित्रों में गीतगोविन्द*, पृ0 73.

[5] बी0 एन0 पानगड़िया-*राजस्थान का इतिहास*, पृ0 154.

उसे मार डाला।[1] उस समय किशनसिंह की आयु चालीस वर्ष थी। इस घटना के बाद जहांगीर ने किशनसिंह के बेटे को किशनगढ़ राज्य की पुर्नस्थापना करके सम्मान प्रदान किया।

इस राजकीय घराने का वल्लभ सम्प्रदाय के प्रति रूझान राजा किशनसिंह के ही समय से देखा जा सकता था।[2] राजा स्वयं नृत्य गोपाल (कृष्ण) की आराधना किया करते थे। वैष्णव धर्म ने दैवीय विश्वास को और अधिक बढ़ावा दिया। इस प्रकार की दैवीय भक्ति के प्रति श्रद्धा ने तत्कालीन कला, संगीत, साहित्य तथा लोगों के रहन-सहन को बहुत अधिक प्रभावित किया।

महाराजा साहसमल

किशनसिंह के चार पुत्र साहसमल, जगमल, भारमल तथा हरिसिंह थे।[3] किशनसिंह के उपरान्त साहसमल सत्रह वर्ष की आयु में वि. सं. 1672 ई0 असोज सुदी 3 को सिंहासन पर बैठा। यह जहांगीर की सेवा में 1628 ई0 में दक्षिण भारत में जाफराबाद की ओर गया, जहां अस्वस्थ होने के कारण इसकी मृत्यु हो गयी। इसकी मृत्यु का समाचार सुनकर उसकी रानियां सिसोदिनी तथा हाडी सती हो गयी। राजा साहसमल का एक सुन्दर चित्र (चित्र फलक 39) प्राप्य है।[4] परन्तु यह चित्र साहसमल के समय का बना नहीं प्रतीत होता है सम्भवतः यह चित्र उस समय के बने किसी चित्र पर ही आधारित है। महाराजा किशनसिंह तथा इसका एक रेखांकन किया हुआ व्यक्ति चित्र भी प्राप्त है। चित्र फलक 108.

महाराजा जगमल

साहसमल के कोई सन्तान नहीं थी। अतः उनके छोटे भाई जगमल ने 1628 ई0 में किशनगढ़ का सिंहासन ग्रहण किया।[5] यह भी अपने भाई भारमल के साथ जाफराबाद गया। वहां पर नवाब महावत के कुछ सैनिकों ने महाराजा जगमल की शरण ले ली परन्तु जब नवाब महावत खान ने उन्हें वापस मांगा तब राजपूत की परम्परा के अनुरूप उसने उन्हें देने से इन्कार कर दिया। फलतः दोनों में युद्ध प्रारम्भ हो गया। जगमल तथा भारमल दोनों ही इसमें घायल होकर मृत्यु को प्राप्त हो गये। इस प्रकार एक ही वर्ष में राठौर वंश के

---

[1] जगदीश सिंह गहलौत - *मारवाड़ राज्य का इतिहास*, पृ0 127.

[2] राजस्थान वैभव श्रीरामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2, पृ0 5.

[3] Dr. Sumhendra, *Splendid Style of Kishangarh*, P. 9.

[4] Eric Dickinson-*Splendid Style of Kishangarh*, P.9.

[5] Rooplekha Vol.-XXV Part-II, P. Banerjee, *Historical Portrait of Kishangarh*, P. 10.

तीन भाई एक ही स्थान पर स्वर्गवासी हो गये।[1] इस से पूर्व दोनों भाईयों ने शहजादे खुर्रम व परवेज के मध्य हुये युद्ध में शहजादे खुर्रम की तरफ से टोस नदी के किनारे युद्ध में भाग लिया। कवि वृन्दा ने इस घटना का वर्णन अपनी कविताओं में किया है। चित्र फलक 111.

महाराजा हरिसिंह

इनका जन्म वि. सं. 1663 वैसाख सुदी 9 को हुआ था। महाराजा जगमल के कोई सन्तान न होने के कारण उसके छोटे भाई हरिसिंह को किशनगढ़ का शासक घोषित किया गया। शाहजहां ने इन्हें मनसब प्रदान किया। इसने सोलह वर्ष तक किशनगढ़ पर राज्य किया। वि. सं. 1709 वैसाख शुक्ल 8 को इसकी मृत्यु हो गयी। चित्र फलक 109 एवं 110.

महाराजा रूपसिंह

महाराजा हरिसिंह की निःसन्तान मृत्यु होने के कारण उनके भाई भारमल का पुत्र रूपसिंह वि.सं. 1709 ज्येष्ठ शुक्ल 5 को गद्दी पर बैठा। इसने रूपनगढ़ की स्थापना की तथा अपने नाम पर उसका नाम रखा। पहले यह स्थान बवेरा नाम से जाना जाता था।[2] रूपनगढ़ के प्रसिद्ध ऐतिहासिक किले का निर्माण रूपसिंह ने ही करवाया था जो किशनगढ़ राज्य से 34 कि.मी. दूर पश्चिम में मारवाड़ तथा जयपुर की सीमा में बहती रूपन नदी के तट पर स्थित है। यह लगभग एक कि.मी. के क्षेत्र में बना था और चारों ओर खाई से घिरा हुआ था, जो कि अब लगभग खण्डहर में परिवर्तित हो चुका है।[3] रूपसिंह किशनगढ़ के पास खेड़ा नामक स्थान पर एक नवीन किले का निर्माण कराना चाहता था परन्तु राजनैतिक एवं सुरक्षात्मक दृष्टि से यह अजमेर के लिये उचित नहीं प्रतीत हो रहा था। अतः शाहजहां ने उसे ऐसा करने से रोक दिया तथा उसे प्रसन्न करने के लिये पुरामण्डल क्षेत्र उसे प्रदान कर दिया।

मुगल बादशाह शाहजहां ने उसे 1000 जात तथा 700 सवार का मनसब प्रदान किया था तथा उसे चांदी के आभूषणों से सजा एक घोड़ा जो किशनगढ़ के राजचिन्ह से अंकित था, भेंट किया। रूपसिंह मुगलों की ओर से

---

1 बी० एम० दिवाकर, *राजस्थान का इतिहास*, पृ० 362.

2 Rooplekha, Vo. XXV, Part II, P. Banerjee, *Historical Portrait of Kishangarh*, P. 10.

3 M.S. Randhawa, *Kishangarh Painting*, P. 8.

पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में बदख्शाँ के बादशाह के विरूद्ध युद्ध में सम्मिलित हुआ।[1] इस युद्ध में उसने अपनी वीरता का प्रदर्शन किया। उसने पठानों से उनका झण्डा छीनकर अपने राज्य का झण्डा बना लिया। शाहजहां इस घटना से बहुत प्रभावित हुआ। उसने अपने शासन के 21 वर्ष पूरे होने पर एक समारोह का आयोजन किया और समारोह में उसने रूपसिंह को 1500 मनसब तथा 1000 सैनिक और प्रदान किये। पुनः छब्बीसवीं वर्षगाँठ के अवसर पर रूपसिंह को दिये गये मनसब 4000 के करीब तथा सैनिकों की संख्या 3000 के करीब थी। मण्डलगढ़ की जागीर जिसका मूल्य 80,000,00 रूपये था, शाहजहां ने रूपसिंह को भेंट कर दी।[2] 1658 ई0 में मुगल साम्राज्य के उत्तराधिकार युद्ध में उसने दाराशिकोह का साथ दिया। यह शत्रुव्यूह की रचना को चीरता हुआ जब औरंगजेब के समक्ष पहुंचा तो औरंगजेब उसकी वीरता से बहुत अधिक प्रभावित हुआ तथा बन्दी बने रूपसिंह को न मारने का आदेश दिया परन्तु वि. सं. 1715 को औरंगजेब के सैनिकों ने उसकी हत्या करवा दी।[3] रूपसिंह किशनगढ़ के राठौर वंश का सबसे छोटा परन्तु प्रभावशाली शासक था।[4]

राजा रूपसिंह भगवान कृष्ण का महान भक्त था। रूपसिंह ने ही किशनगढ़ के राजाओं के पारिवारिक इष्टदेव के रूप में कल्याणराय की प्रतिमा की स्थापना की थी।[5] यह वैष्णव आचार्य गोपीनाथ का शिष्य था जो विट्ठलनाथ के पौत्र थे। रूपसिंह काव्य कला तथा भक्ति में विशेष श्रद्धा रखते थे। रूपसिंह का बल्लभ सम्प्रदाय के प्रति अधिक झुकाव था। इसका उदाहरण बल्लभाचार्य का वह व्यक्तिचित्र है जिसे शाहजहां ने उसे भेंट दिया था। चित्र फलक 111.

राजा मानसिंह

राजा रूपसिंह की मृत्यु के पश्चात उसका तीन वर्षीय पुत्र मानसिंह गद्दी पर बैठा। यद्यपि औरंगजेब रूपसिंह के द्वारा दाराशिकोह का साथ देने के कारण नाराज था[6] परन्तु उसने मानसिंह के साथ अच्छा व्यवहार किया। मानसिंह के

---

1. Indian Miniature Painting, P. 97.
2. Indian Painting, *Mughal & Rajpur Saltanati Manuscript*, P. 45.
3. गोपीनाथ शर्मा-*राजस्थान का इतिहास*, पृ0 100.
4. आर0 ए0 अग्रवाल-*भारतीय चित्रकला का विवेचन*, पृ0 110.
5. राजस्थान वैभव श्री रामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ0 95.
6. बी0 एम0 दिवाकर-*राजस्थान का इतिहास*, पृ0 362.

वयस्क होने पर 1670 ई0 में उसे बारह परगनें प्रदान किये[1] तथा शहजादे मुअज्जम के साथ बंगाल भेजा। वह पंजाब, काबुल तथा औरंगाबाद के मुगल अभियानों में सम्मिलित हुआ। 1710 ई0 में इसकी मृत्यु हो गयी। चित्र फलक 111.

मानसिंह कला एवं काव्य प्रेमी था। इसने वृन्द नामक विख्यात कवि को अपना गुरु बनाया तथा कविता करनी सीखी। वैष्णव सम्प्रदाय के भक्त होने के कारण इसने अनेक भक्तिमार्गीय कविताओं की रचना की।

महाराजा राजसिंह

यह महाराजा मानसिंह का पुत्र तथा रूपसिंह का पौत्र था इसका जन्म वि. सं. 1731 कार्तिक सुदी 12 में हुआ था। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्रों में राज्य पर अधिकार करने के लिये परस्पर संघर्ष छिड़ गया। राजसिंह ने उसके पुत्र मुअज्जम का साथ दिया।[2] इस संघर्ष में विजय का श्रेय राजसिंह को दिया गया। यद्यपि इस लड़ाई में वह बुरी तरह घायल हो गया। इस युद्ध के समय के पहने हुये रक्तरंजित वस्त्र आज भी किशनगढ़ शाही परिवार कोष में सुरक्षित हैं। इस विजय के पश्चात राजसिंह को एक शक्तिशाली राजा समझा जाने लगा।

शहजादा मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा। उसने समय-समय पर राजसिंह को बहुत सम्मानित किया। उसे 7 हजारी जात का मनसब प्रदान किया तथा सरवाड़ और मालपुरा परगनों को जागीर के रूप में प्रदान किया।[3] इसे महाराजाधिराज बहादुर की उपाधि प्रदान की गयी। 1748 ई0 में इसकी मृत्यु हो गयी। बहादुर सिंह राजसिंह की वीरता का सम्मान करता था। इसी कारण उसने एक छोटी सी रियासत के स्वामी को वह इज्जत दी जो भारत के बड़े-बड़े राजाओं को दी जाती है। चित्र फलक 112.

राजसिंह परमवीर, धर्मपरायण तथा कला रसिक शासक था। वह स्वयं चित्रकार था।[4] इसने 33 ग्रन्थों की रचना की थी जिसका प्रभाव अन्य समकालीन कलाओं पर भी पड़ा।[5] इसने प्रसिद्ध चित्रकार सूर्यध्वज निहाल सिंह को अपनी चित्रशाला का प्रबन्धक बनाया।[6]

---

[1] Marge, Vol. III, Part IV, E. Dickinson, *The Way Pleasure of Kishangarh Painting*, P. 24.

[2] Rooplekha, Vol. XXV, Part II, P. Banerjee, *Historical Portrait of Kishangarh*, P. 10.

[3] बी0 ए0 पानगड़िया-*राजस्थान का इतिहास*, पृ0 155.

[4] डा0 जयसिंह नीरज-*राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 20.

[5] Dr. Jai Singh Niraj-*Splendour of Rajasthan*, P. 28.

[6] डा0 फैयाज अली खान-*भक्तवर नागरीदास*, पृ0 28.

राजसिंह की दो रानियां थीं--चतुरकुंवरी, ब्रजकुंवरी तथा पांच पुत्र थे वीर सुखसिंह, फतेहसिंह, बहादुरसिंह और वीरसिंह। दो बड़े पुत्र राजसिंह के समय ही मृत्यु को प्राप्त हो गये।

राजा सावन्तसिंह

सावन्तसिंह का जन्म वि. सं. 1756 पौष सुदी 12 को हुआ था। पिता राजसिंह के समय से कुँवर पद पर आसीन सावन्त सिंह पर अपने पिता का पूर्ण प्रभाव पड़ा। उनकी शिक्षा-दीक्षा पिता की रुचि के कारण अत्यन्त कलात्मक वातावरण में हुयी थी। उन्हें स्वयं कला, संगीत, साहित्य में विशेष रुचि थी और इसके लिये सावन्त सिंह ने विधिवत शिक्षा ग्रहण की। सावन्त सिंह ने 75 ग्रन्थों की रचना की जो हिन्दी साहित्य में नागरसमुच्चय के नाम से प्रसिद्ध है। मनोरथमंजरी, रसिकरत्नावली तथा बिहारी चन्द्रिका इसकी मुख्य रचनायें थीं। इसके ग्रन्थ पूर्णतया कृष्णभक्ति पर आधारित थे।[1]

सावन्तसिंह के बड़े भाई ने राजपाट त्यागकर भिक्षुक जीवन धारण कर लिया था। छप्पनभोग चन्द्रिका में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है[2] --

> ''राजसिंह के पांच सुत, इनमें सुखसिंह जेष्ठ
>
> मान लागे जोगी बने, तजी संसार सुख श्रेष्ठ।''

सावन्त सिंह का विवाह भानगढ़ के राजा यशवन्त की कन्या के साथ सम्पन्न हुआ था। उसके चार सन्तानें हुयीं। सावन्त सिंह को राजकाज के प्रति विशेष रुचि नहीं थी। पासवान बणीठणी के प्रेम तथा कृष्ण भक्त होने के कारण अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति का था।[3] बल्लभी परम्परा के गुसांई गोपीनाथ के प्रपौत्र रणछोड़जी इसके गुरु थे। किशनगढ़ के सभी शासकों में सावन्तसिंह का नाम इस राज्य की शैली के विकास में सबसे अधिक प्रसिद्ध है।[4] इसके समय में किशनगढ़ शैली की श्रेष्ठ कृतियों की रचना हुयी। सावन्तसिंह की प्रेरणा से तथा बणीठणी के प्रेम से इस शैली के चित्रों का साहित्यिक आधार अत्यन्त ठोस एवं सशक्त बना।[5]

सावन्तसिंह कला, संगीत, साहित्य प्रेमी होने के साथ-साथ एक वीर शासक भी थे। इसने बाल्यावस्था में अनेक वीरतापूर्ण कार्य किये। दस वर्ष की अवस्था में इसने बड़ी बहादुरी के साथ एक जंगली हाथी को अपने वश में कर

---

1 Eric Dickinson-*Kishangarh Painting*, P. 7.
2 Dr. Sumhendra-*The Splendid Style of Kishangarh*, P. 17.
3 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थान चित्रकला*, पृ0 4.
4 प्रभुदयाल मित्तल-*ब्रज की कलाओं का इतिहास*, पृ0 436.
5 डा0 जयसिंह नीरज-*राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी काव्य*, पृ0 42.

लिया। तेरह वर्ष की आयु में वह बूंदी शासक हाड़ा सेतसिंह की हत्या कर किले को अपने अधिकार में लेने में सफल हो गया। सावन्तसिंह ने मराठा शासक मल्हार होल्करराव द्वारा लगाये गये चौथ कर को देने से इन्कार कर दिया। सावन्तसिंह इस इन्कार के लिये प्रसिद्ध हुआ। इस कहानी को किशनगढ़ के मन्दराग में इस प्रकार गाया जाता है[1] --

''बाजीराव मल्हार सन कहा तो गयो कथा

और रावसब राव है सावन्त बात आतह''

सावन्तसिंह का मुगल शासकों से अच्छा सम्पर्क था। तेरह वर्ष की आयु में उसने एक युद्ध में फर्रूखसियर का साथ दिया था। सावन्तसिंह तथा उसकी दरबारी संस्कृति पर मुगल कला व संस्कृति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। यद्यपि सावन्तसिंह में आदर्श शासक के समस्त गुण विद्यमान थे परन्तु उनके हृदय की अन्तरतम अनुभूतियों में यह सभी राजसी भोग-विलास त्यागकर श्री कृष्ण भक्ति में डूबकर जीवनयापन करने की अदम्य व अतृप्त कामना थी। यद्यपि वह स्वयं को राजकाज में काफी व्यस्त रखता था परन्तु उसका कृष्ण भक्त हृदय उसे वृन्दावन में जा उनकी आराधना करने को प्रेरित करता। सावन्तसिंह में रूप सौन्दर्य के प्रति अपूर्व जिज्ञासा के साथ भावुक हृदय की भक्ति भावना भी थी।

1748 ई0 में अकस्मात् पिता की मृत्यु तथा किशनगढ़ में सावन्तसिंह की अनुपस्थिति के कारण इसका छोटा भाई बहादुर सिंह किशनगढ़ का शासक बन बैठा।[2] यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण बात थी कि ऐसे कलाप्रेमी एवं सौन्दर्यप्रेमी शासक को राज्य प्राप्त करने के लिये भाई से युद्ध करना पड़ा। दिल्ली के शासक अहमदशाह द्वारा मान्यता दिये जाने पर इसे पराजय स्वीकार करनी पड़ी। वह अत्यन्त निराश होकर बृजभूमि आ गया। संभवतः वह बृजभूमि इसलिए भी आया हो क्योंकि बृजवासी गोपालक कृष्ण की विभिन्न क्रिया-कलापों तथा लीलाओं से उसे गहरा जुड़ाव था।[3] 1751 ई0 में उसने युद्ध में मराठों की सहायता की। इसके बाद उसने अपने पुत्र सरदारसिंह को मराठों के साथ अपने राज्य पर पुनः अधिकार करने के उद्देश्य से भेजा। अन्ततः 1756 में दोनों भाईयों के मध्य समझौता हुआ जिसके अनुसार किशनगढ़ को दो भागों में बाँट दिया गया। रूपनगढ़ का क्षेत्र सरदारसिंह को दिया गया, किशनगढ़ के राज्य का शेष भाग बहादुर सिंह के ही अधिकार में रहा।[4] इस तरह के राजनैतिक संघर्षों से सावन्तसिंह का हृदय अत्यन्त दुखित हो गया तथा

---

[1] Dr.Sumhendra-*Splendid Style of Kishangarh*, P. 17.

[2] अविनाश बहादुर वर्मा-*भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 204.

[3] रामगोपाल विजयवर्गीय-*राजस्थानी चित्रकला का इतिहास*, पृ0 3.

[4] बी0 एन0 पानगड़िया-*राजस्थान का इतिहास*, पृ0 156.

उसने अपना राजकाज सरदारसिंह को सौंप कर पासवान बणीठणी के साथ वृन्दावन में जाकर रहने का निश्चय किया। यह पासवान बणीठणी तथा उसका प्रेम ही किशनगढ़ की चित्रकला का मुख्य आधार बना।[1]

सावन्तसिंह अन्तिम बार 1759 ई0 में किशनगढ़ गया परन्तु वहां की दुर्दशा को देखकर अत्यन्त निराश हुआ। जिसका वर्णन उसने अपनी कविता में इस प्रकार किया है[2] --

> ''ज्यों ज्यों इहत देखियात मूरख विमुख लोग
> त्यों ब्रजवासी मा भाई है,
> खारे जल छिलार दुखारे अन्धा कूप छितेई,
> कालिन्दी काल-काज मा ललचाव हैई
> जेति इहे वीतात सो कहत न बने बैन,
> नागर न चैन पड़े प्राण अकुलाव हैई,
> तुहार पलाश देखि के बाबुल बुरे,
> हाय! हरे-हरे रं कदम्ब सुधा आवे हैई''

सावन्तसिंह नागरीदास के उपनाम से कविता भी करते थे। उन्हें हिन्दी के महान कवि के रूप में गिना जाता है।[3] राजस्थान में आज भी इनके पद गाये जाते हैं। वि. सं. 1821 भादो सुदी 5 में वृन्दावन में ये मृत्यु को प्राप्त हुये। एक वर्ष पश्चात सावन्तसिंह की पासवान बणीठणी का भी स्वर्गवास हो गया।[4] (चित्र फलक 112)। दोनों की समाधियां बल्लभजी के समीप किशनगढ़ कुंज में बनी हैं। बाद में यह स्थान नागर कुंज के नाम से प्रसिद्ध हो गया। सावन्तसिंह की समाधि पर यह कविता उत्कीर्ण है[5] --

> ''श्री राधा गोवर्धनधारी, वृन्दावन यमुना तात छारी,
> ललितादिक बल्लभी विशालस मोहन कारों कृपा आवस,
> सुत के दे युवराजा आप वृन्दावन आये
> रूप नागरपाति भक्तिवृन्दा लाई लड़ाई,
> सुरि गम्भीर रसिक रिहावारी अगाधि,
> सन्त चरणमृत नेमा उदाधि लोन गवन बनि,
> नागरीदास विदित सन किरिपा कर नागर डारिये,
> सावन्तसिंह नृप काली विसे सत त्रेता विध आचारिये।''

---

1. Eric Dickinson-*Kishangarh Painting*, P. 11.
2. Dr. Sumhendra-*Splendid Style of Kishangarh*, P. 19.
3. प्रभुदयाल मित्तल-*ब्रज की कलाओं का इतिहास*, पृ0 436.
4. Anjana Chakrawarti-*Indian Miniature Painting*, P. 69.
5. Dr. Sita Sharma-*Krishan Leela Theme in Rajasthani Miniature Painting*, P. 19.

महाराजा बहादुर सिंह

यह राजसिंह का चौथा पुत्र तथा सावन्तसिंह का छोटा भाई था। इसने 1748 ई0 से लेकर 1781 ई0 तक किशनगढ़ पर राज्य किया। इसने अपने शासनकाल में सुधार के अनेक महत्वपूर्ण कार्य करवाये। राज्य की सुरक्षा के लिये इसने किले के चारों ओर विशाल परकोटे का निर्माण करवाया तथा नहर का निर्माण भी करवाया। इसने सरवार के किले की पुनः मरम्मत करवायी। बहादुर सिंह ने जोधपुर, जयपुर और मेवाड़ के शासकों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित किये।[1] 1767 ई0 में रूपनगढ़ के शासक सरदारसिंह के मरने पर इसने अपने पुत्र बिड़दसिंह को रूपनगढ़ की गद्दी पर बैठाया। इसकी मृत्यु वि. सं. 1838 सुदी 3 में हुयी। चित्र फलक 114.

राजा बिड़दसिंह

बिड़दसिंह का जन्म वि.सं. 1794 सुदी 13 को हुआ। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् यह रूपनगढ़ का स्वामी होने के साथ-साथ किशनगढ़ का भी शासक बना। इस प्रकार 1781 ई0 में रूपनगढ़ पुनः किशनगढ़ राज्य का अंग बन गया। बिड़दसिंह भी सावन्तसिंह की भांति कृष्ण भक्त था। अतः इसने अपना अधिकांश समय वृन्दावन में व्यतीत किया। उसकी अनुपस्थिति में उसका पुत्र प्रतापसिंह शासन-प्रबन्ध की देखरेख करता रहा।[2]

बिड़दसिंह अरबी तथा फारसी भाषा का अच्छा ज्ञाता था। साथ ही यह संस्कृत भाषा का प्रकाण्ड पण्डित था। वृन्दावन के पास बनी नागरीदास की छत्री पर इसका एक शिलालेख अंकित है। बिड़दसिंह की मृत्यु वि.सं. 1845 कार्तिक कृष्णा 10 को हुयी।[3] चित्र फलक 113.

महाराजा प्रतापसिंह

महाराजा प्रतापसिंह का जन्म वि.सं. 1819 भादों सुदी 11 में हुआ। प्रतापसिंह को अपने पिता बिड़दसिंह तथा दादा बहादुरसिंह दोनों के समय किशनगढ़ राज्य का मुखिया बनाया गया। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात 1738 ई0 में यह सिंहासनारूढ़ हुआ।[4] कावरेती का शासक किशनगढ़ पर अपना अधिकार करना चाहता था। प्रतापसिंह ने मराठों से सहायता माँगी परन्तु फिर भी जोधपुर को नहीं जीत सका। जोधपुर की सेना ने रूपनगढ़ को घेर लिया तथा सात माह तक युद्ध करती रही। अन्ततः प्रतापसिंह ने अपनी

---

1 डा0 सुमहेन्द्र-राजस्थानी रागमाला चित्र परम्परा, पृ0 52.

2 सुरेन्द्र सिंह चौहान-राजस्थानी चित्रकला, पृ0 97.

3 Dr. Sumhendra-*Splendid Style of Kishangarh Painting*, P. 12.

4 अविनाश बहादुर शर्मा-भारतीय चित्रकला का इतिहास,पृ0 205.

पराजय स्वीकार कर ली और समझौते के तहत जोधपुर को युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिये तीन लाख रुपये प्रदान किये, परन्तु कुछ समय पश्चात् जोधपुर की शासन सत्ता के निर्बल होने पर प्रतापसिंह ने रूपनगढ़ को वापस अपने अधिकार में ले लिया। चित्र नं. 114

महाराजा कल्याणसिंह

महाराजा कल्याण सिंह का जन्म वि.सं. 1851 कार्तिक कृष्णा 12 को हुआ। पिता की मृत्यु के समय इसकी आयु तीन वर्ष की थी। अतः इसे बाल्यावस्था में ही सिंहासन पर बैठना पड़ा। किशनगढ़ के स्वामिभक्त जागीरदारों की देखरेख में यह राजकाज का प्रबन्ध करता रहा।[1]

इस समय तक मुगल साम्राज्य की स्थिति अत्यन्त कमजोर हो गयी थी। फिर भी कल्याणसिंह दिल्ली के निर्बल शासक बादशाह अकबर द्वितीय के दरबार में ही रहता था। उसकी अनुपस्थिति में रानी कछवाही किशनगढ़ के शासन प्रबन्ध की देखरेख करती थी। परन्तु कुछ समय पश्चात ही जागीरदारों ने विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया। कल्याणसिंह ने मुगल साम्राज्य का अवसान होते देखकर तथा जागीरदारों के विद्रोह से चिन्तित होकर 1817 ई0 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी से एक समझौता कर लिया।[2] उसने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली और दिल्ली छोड़कर अजमेर आ गया। परन्तु जागीरदारों ने विद्रोह करके इसके पुत्र मोखमसिंह को किशनगढ़ का शासक घोषित कर दिया। कल्याणसिंह ने इस विद्रोह को दबाने के लिये कम्पनी की सहायता ली परन्तु इसमें उसे सफलता हाथ नहीं लगी। अन्ततः इसने मोखमसिंह को किशनगढ़ का शासक स्वीकार कर लिया तथा वह स्वयं दिल्ली दरबार में चला गया जहां वि.सं. 1395 ज्येष्ठ सुदी 10 में इसकी मृत्यु हो गयी। चित्रफलक 114.

राजा मोखमसिंह

मोखमसिंह ने 16 वर्ष की आयु में 1832 ई0 में किशनगढ़ के शासन का कार्यभार ग्रहण किया था। राजा मोखमसिंह अपने सम्पूर्ण शासन काल के दौरान जागीदारों के विद्रोह को दबाने का प्रयत्न करता रहा परन्तु इसमें उसे पूर्ण सफलता नहीं मिली। वि.सं. 1896 ज्येष्ठ सुदी 12 को यह निःसन्तान ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।[3] मोखमसिंह की मृत्यु के बाद महारानी ने पोलिटिकल एजेंट की स्वीकृति से भीमसिंह के छोटे बेटे पृथ्वीसिंह को दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण किया। भीमसिंह फतेहगढ़ के बाघसिंह का तीसरा पुत्र था जो कचोलिया ठिकाना का जागीरदार था। चित्र फलक 114.

---

[1] गोपीनाथ शर्मा-*राजस्थान का इतिहास*, पृ0 503.

[2] बी0 ए0 पानगड़िया-*राजस्थान का इतिहास, पृ0 156.*

[3] Dr. Sita Sharma-*Krishan Leela Theme in Rajasthani Mainiature Painting*, P. 75.

महाराजा पृथ्वीसिंह

महाराजा पृथ्वीसिंह का जन्म वि.सं. 1894 में बैसाख सुदी 5 में हुआ था। मोखमसिंह की मृत्यु के दूसरे दिन यह किशनगढ़ की गद्दी पर आरूढ़ हुआ परन्तु राज्य का शासन प्रबन्ध उसकी राजमाता के नियन्त्रण में ही था। 1849 ई0 में इसका विवाह शाहपुरा क्षेत्र की राजकुमारी के साथ सम्पन्न हुआ। इसने अपने राज्य में अनेक निर्माण कार्य करवाये और राज्य में शक्ति व्यवस्था कायम की। किशनगढ़ में इसने तीस झीलों का निर्माण करवाया। 1868 ई0 में रेलवे लाइन बिछाकर रेलवे सेवा का शुभारम्भ किया। 1870 ई0 में इसने टेलीग्राफ की सेवा की शुरूआत करवायी तथा इसने अपराधी तथा सिविल न्यायालय को प्रारम्भ करवाया। पृथ्वीसिंह की मृत्यु 1879 ई0 में हो गयी। इसने मोखमसिंह की स्मृति में गुण्डालोव झील के मध्य बगीचे से घिरा मोखमविलास का निर्माण करवाया था।[1] इसके तीन पुत्र शार्दूलसिंह, जवानसिंह, रघुनाथसिंह थे तथा चार पुत्रियाँ थीं।

महाराजा शार्दूलसिंह

पृथ्वीसिंह की मृत्यु के पश्चात इसका पुत्र 1879 ई0 में किशनगढ़ के सिंहासन पर बैठा। इसका जन्म वि.सं. 1914 पौष सुदी 9 को हुआ था। इसने अपने राज्य में अनेक सुधार तथा निर्माण कार्य करवाये। उसके शासन काल में अनेक कल-कारखानों का निर्माण हुआ। अपने पुत्र मदनसिंह के नाम पर इसने एक मण्डी की स्थापना की जो किशनगढ़ रेलवे स्टेशन के पास ही स्थित थी। कुछ समय पश्चात् वह रेलवे स्टेशन किशनगढ़ मदनगंज के नाम से जाना जाने लगा।[2] उसने अपने राज्य में अनेक पाठशालायें खुलवायीं तथा एक मिडिल स्कूल को इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध करने की योजना बनायीं। खूबसूरत गुण्डालोव झील के चारों ओर सड़क का निर्माण करवाया।[3] 1899 ई0 में इसके शासनकाल के समय राज्य में भयंकर सूखा पड़ा। इस अकाल में शार्दूलसिंह ने सस्ते अनाज की दुकानें खुलवायीं तथा गरीबों के लिये मुफ्त खाने की व्यवस्था करवायी। 1900 ई0 में इसकी मृत्यु हो गयी। ब्रिटिश सरकार ने इसे जी0 सी0 आई0 की उपाधि से सम्मानित किया।

महाराजा मदनसिंह

मदनसिंह ने 16 वर्ष की आयु में सिंहासन ग्रहण किया था। इसका जन्म वि.सं. 1941 कार्तिक शुक्ल 14 को हुआ था। जब तक यह वयस्क नहीं

---

[1] कर्नल टाड-राजस्थान का इतिहास, पृ0 125.
[2] प्रेमचन्द गोस्वामी-राजस्थानी चित्रकला, पृ0 97.
[3] M.S. Randhawa-*Indian Miniature Painting*,P. 40.

हुआ था तब तक इसने ब्रिटिश रेजीमेन्ट की देखरेख में अपना शासनकार्य सम्भाला।

इसने हाईस्कूल की परीक्षा पास की थी। यह पोलो का अच्छा खिलाड़ी था। इसे जानवरों से बेहद प्रेम था। राज्य में घोड़ों को प्रशिक्षण देने का केन्द्र तथा विशाल अस्तबल का निर्माण करवाया जिससे उसे वार्षिक आय तीन लाख रूपये के करीब होती थी। मदनसिंह जंगली जानवरों प्रशिक्षित करने मे निपुण था। उसने एक तेन्दुये को पालतू बनाया था जो सदैव इसके साथ रहता था।

1924 ई0 में यहां पर विद्युतशक्ति केन्द्र खोला गया तथा किशनगढ़ राज्य मे इसी के समय दूरसंचार की सेवा प्रारम्भ हुयी।[1] इसने अपने नाम पर 'मदन निवास महल' नामक राजभवन का निर्माण करवाया जो वर्तमान समय में एक अस्पताल के रूप में परिवर्तित हो गया जो यज्ञनारायण अस्पताल के नाम से जाना जाता है।[2]

कहा जाता है उसके कोट के बटन सोने के हुआ करते थे। जिसे वह प्रतिदिन जरूरतमंद लोगो में बांट दिया करता था। मदनसिंह ने बहुत सी कवितायें रची जो राग सोरठा के रूप में संकलित है।

महाराजा यज्ञनारायण सिंह

मदनसिंह के कोई पुत्र नहीं था इसलिये इसने अपने चाचा के पुत्र यज्ञनारायण सिंह को दत्तक पुत्र के रूप मे ग्रहण किया था।[3] यज्ञनारायण के पिता एक धार्मिक व्यक्ति थे। उसने एक विशाल सोमयज्ञ का आयोजन करवाया जिसमें विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनवाये तथा मूर्तियों को भेंट स्वरूप दान में दिया। सोमयज्ञ की नौ माह की पूर्ति के पश्चात वि.सं. 1952 माघ शुक्ल 12 में यज्ञनारायण सिंह का जन्म हुआ। यह इक्तीस वर्ष की आयु में किशनगढ़ का शासक बना।[4]

यज्ञनारायण का विवाह मसूदगढ़ की कन्या से हुआ जिसके तीन पुत्र उत्पन्न हुये परन्तु वे जीवित न रहे। पुत्र की लालसा में इसने अपनी पत्नी की भतीजी से दूसरा विवाह किया किन्तु उसके दो पुत्रियां ही उत्पन्न हुयी। कल्याण कुंवर तथा गोवर्धन कुंवर। यज्ञनारायण को संगीत व ज्योतिष विज्ञान की अच्छी जानकारी थी। वह स्वयं गायक एवं कवि था उसके गीत राग सोरण तथा सारंगानाम से प्रसिद्ध हैं। अपने पिता जवानसिंह की स्मृति में इसने एक सुन्दर

---

[1] गोपीनाथ शर्मा-राजस्थान का इतिहास, पृ0 502.
[2] Dr. Sumhendra-*Splendid Style of Kishangarh Painting*, P. 14.
[3] डा0 गौरीशंकर ओझा-राजपूताना का इतिहास, पृ0 20.
[4] Dr. Sumhendra-*Splendid Style of Kishangarh*, P. 16.

स्मारक ककरेड़ी में निर्मित और करवाया तथा ककरेड़ी के किले का निर्माण भी करवाया।[1]

यज्ञनारायण ने अधिकांश सामाजिक रीति-रिवाजों पर रोक लगायी। उसने मृत्ता भोजन की सामाजिक परम्परा पर रोक लगायी जो किसी व्यक्ति के मरने के बाद बारह दिन तक दिया जाता था। इसीलिये उसकी मृत्यु के पश्चात इस तरह की किसी भी परम्परा का निर्वाहन नहीं किया गया तथा इसकी इच्छा के अनुसार मृत्यु के पश्चात जहां सोमयज्ञ हुआ था वहीं उसकी समाधि बनवा दी गयी। पुत्र न होने के कारण महारानी ने अपने पति की इच्छानुसार जोरावरपुर के सुमेरसिंह को गोद ले लिया।[2]

महाराजा सुमेरसिंह

यह जोरावरपुरा के बुधसिंह का पुत्र था। इसका जन्म वि.सं. 1985 माघसुदी 2 को हुआ था। महाराजा यज्ञनारायण की मृत्यु के पश्चात् वायसराय और सम्राट द्वारा स्वीकृति देने पर सुमेरसिंह को 4 अप्रैल 1939 ई0 को विधिवत किशनगढ़ का शासक घोषित कर दिया गया।[3] उस समय उसकी आयु केवल 10 वर्ष थी। अतः राज्य का शासन जयपुर के राजनैतिक एजेण्ट को सौंप दिया गया। सुमेरसिंह की प्रारम्भिक शिक्षा गोठियाना व अकोडिया के छोटे-छोटे स्कूलों में हुयी। कुछ समय किशनगढ़ में अध्ययन करने के पश्चात यज्ञनारायण की इच्छा पर उसने अजमेर के मेयो कालेज में प्रवेश लिया। सुमेरसिंह का विवाह 30 जनवरी, 1948 में पालिटाना की राजकुमारी से सौराष्ट्र में सम्पन्न हुआ था। इनके दो पुत्र उत्पन्न हुये, बृजराज सिंह तथा पृथ्वीराज सिंह तथा दो कन्यायें हुयीं, श्रीकुंवर तथा नन्दिनी।

सुमेरसिंह को 5 जून 1947 ई0 को राज्य के नियम तथा अधिकार सौंप दिये गये। इस समय तक देश की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हो चुका था। ब्रिटिश सरकार ने 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतन्त्र करने की घोषणा कर दी। देशी रियासतों को यह अवसर दिया गया कि अपनी-अपनी सुविधानुसार भारत अथवा पाकिस्तान में सम्मिलित हो जायें। महाराजा सुमेरसिंह ने 15 अगस्त 1947 से पूर्व ही सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करके किशनगढ़ राज्य को भारत का अंग बना दिया।[4] किशनगढ़ का क्षेत्रफल 2222 वर्ग मी0 था तथा इसकी वार्षिक आय 18 लाख रुपये के करीब थी।[5] परन्तु केन्द्रीय सरकार की बनायी गयी नीति के अनुसार इस प्रकार की छोटी-छोटी रियासतें अपना

---

[1] कु. संग्राम सिंह-राजस्थान की लघु चित्रशैलियां, पृ0 20.
[2] बी0 एम0 पानगड़िया-राजस्थान का इतिहास, पृ0 157.
[3] वहीं, पृ0 157.
[4] बी0 एम0 पानगड़िया-राजस्थान का इतिहास, पृ0 157.
[5] वही, पृ0 157.

स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रख सकती थी। अतः भारत सरकार ने किशनगढ़ को पड़ोसी राज्य अजमेर प्रान्त में मिलाने का निश्चय किया।[1] महाराजा सुमेरसिंह ने इस निर्णय को स्वीकार कर विलयपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। परन्तु किशनगढ़ की जनता अजमेर में विलय होने की अपेक्षा नये संघ में मिलने के लिये अधिक उत्सुक थी। अतः भारत सरकार ने अजमेर विलयपत्र को रद्द कर किशनगढ़ को राजस्थान के अन्य छोटे-छोटे राज्यों के साथ इस नव निर्मित राज्य में मिल जाने का निर्णय कर लिया। 15 अप्रैल 1948 को महाराजा सुमेरसिंह ने इस नये विलयपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। 30 मार्च 1949 को बृहद राजस्थान राज्य का उद्घाटन हुआ। तब किशनगढ़ राज्य स्वतः ही इसका अंग बन गया।[2] 1967 में सुमेरसिंह ने राज्य सभा का चुनाव लड़ा जिसमें इन्हें विजय हासिल हुयी। वे स्वतन्त्र पार्टी के सदस्य थे।[3] 16 फरवरी 1971 में जब वे जयपुर से अजमेर जा रहे थे तब उन्हीं की गाड़ी में बैठे एक व्यक्ति ने गोली मारकर उनकी हत्या कर दी। परम्परा के अनुसार उनके बड़े पुत्र को 28 फरवरी 1971 को उनका उत्तराधिकारी घोषित किया गया। इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री प्राप्त की। इन्हें किशनगढ़ परम्परा का प्रतीक माना जाता है।

इस प्रकार किशनगढ़ एक छोटी सी रियासत थी जिसने अपने साहस व लगन के कारण मेवाड़, जोधपुर तथा जयपुर जैसे बड़े राज्यों के मध्य स्थित होते हुये भी 340 वर्ष तक अपने अस्तित्व को बनाये रखा।

किशनगढ़ के राजाओं का वंशवृक्ष तथा कालक्रम निम्न तालिका से भी स्पष्ट है[4] --

1	किशनसिंह	1611	1615 ई0
2	सहसमल	1615	1628 ई0
3	जगमल	1628	1628 ई0
4	हरिसिंह	1628	1644 ई0
5	रूपसिंह	1644	1658 ई0
6	मानसिंह	1658	1710 ई0
7	राजसिंह	1710	1748 ई0
8	सावन्तसिंह	1748 ई0	1748 ई0
9	बहादुरसिंह	1748	1781 ई0

---

1 गौरीशंकर ओझा-राजस्थान का इतिहास, पृ0 20.
2 Dr. Sumhendra-*Splendid Style of Kishangarh*, P. 17.
3 वहीं, पृ0 17.
4 सुरेन्द्र सिंह चोंडावत-राजस्थान चित्रकला, पृ0 212.

10	विड़दसिंह	1781	1788 ई0
11	प्रतापसिंह	1788	1797 ई0
12	कल्याणसिंह	1797	1832 ई0
13	मोखमसिंह	1832	1841 ई0
14	पृथ्वीसिंह	1841	1879 ई0
15	शार्दूलसिंह	1879	1900 ई0
16	मदनसिंह	1900	1926 ई0
17	यज्ञनारायणसिंह	1926	1939 ई0
18	सुमेरसिंह	1939	1948 ई0

किशनगढ़ का सांस्कृतिक स्वरूप

संस्कृति किसी भी देश व जाति के जनजीवन के व्यापक रूप को प्रस्तुत करती है। संस्कृति जीवन के विकास क्रम का प्रथम सोपान है। इसमें व्यक्ति की निष्ठा, विश्वास की परम्परा, आचरण रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, आमोद-प्रमोद, धार्मिक आस्था, जीवन में कर्मठता आदि का समवेत प्रतिबिम्ब झलकता है। संस्कृति का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसे पृथक नहीं किया जा सकता है। यही देश और समाज की सामूहिक चेतना का प्रतिबिम्ब है। जीवन में सांस्कृतिक चेतना का सरित-प्रवाह असंख्य अवरोधों को पार करके निरन्तर गतिशील रहता है।[1] इसमें अनेक मोड़ आते हैं तथा समय-समय पर विविध परिवर्तन भी होते रहते है। अतः किसी भी देश की संस्कृति उसकी आत्मा होती है जो उसके सम्पूर्ण मानसिक निधि का दिग्दर्शन कराती है। कला संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है जो मानव मन को परिष्कृत व अलंकृत करती है।[2] भारतीय दर्शन, साहित्य और धार्मिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति कला में देखी और अनुभव की जा सकती है।

भारतीय संस्कृति समग्र रूप से एक ही है।[3] पर किशनगढ़ के स्वरूप की जो विशेषतायें हमें देखने को मिलती हैं, वह स्वतः ही हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं जो नाना रूपों, रंगों व रागों से समृद्ध रहा है। सदियों से कला, साहित्य व संस्कृति की सहस्त्रधारायें इस भूमि को सींचती रही हैं जिसे योद्धाओं की जननी होने का गौरव प्राप्त है, उसे ही श्रृंगार का अनुपम धन भी मिला है, ऐसा सौभाग्य अन्यत्र दुर्लभ है। इसे कलात्मकता का रूप देने वाले भी इसी के सपूत हुये हैं। वास्तविकता तो यह है कि अपने प्राकृतिक

---

[1] राजकिशोर सिंह एवं उषा यादव-*प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति,* पृ0 4.

[2] बी0 एन0 लूनिया-*प्राचीन भारतीय संस्कृति,* पृ0 8.

[3] V.N. Dutta-*Indian Art In Relation to Culture,* P. 8.

और मनमोहक वातावरण के कारण तथा काव्य और कला की उद्भावनाओं के लिये यहां की भूमि सदैव ही लालायित रही है।[1] किशनगढ़ के तीज-त्योहार, धर्म, साहित्य यहाँ के जन-जीवन को आत्मसात किये हुये हैं। धर्म, दर्शन, साहित्य, कला आदि सांस्कृतिक चिन्तन,-मनन, सृजन और रचना के आयाम हैं और तीज-त्योहार मेले आदि सामाजिक संयम तथा उल्लास की अभिव्यक्ति हैं।[2]

यहाँ की कला मध्यकालीन साहित्य का प्रतिबिम्ब है जो तत्कालीन धर्म, समाज व कला के क्षेत्र में व्याप्त प्रवृत्तियों का रेखा और रंगों के माध्यम से परिचय कराती है। इस पर मुगल प्रभाव तथा अन्य राजपूती शैलियों के प्रभाव पड़ने के बाद भी यहां के लोगों ने अपनी संस्कृति व कला के निजस्व को बनाये रखा।[3] धार्मिक परम्पराओं के साथ चित्रांकन का सरित्-प्रवाह तीन शताब्दियों तक असंख्य चित्रकारों के जूझने के पश्चात वर्तमान निखरे रूप में हमारे सामने उपस्थित है। किशनगढ़ की सांस्कृतिक परम्परा अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी आज के चित्रकला के इतिहास में उसे वह मान्यता नहीं मिल सकी जो उसे प्राप्त होनी चाहिये थी। यहां के कलात्मक अवशेष इधर-उधर बिखर गये से प्रतीत होते हैं। परन्तु शोध के लिये जब मैंने इन अवशेषों को समेटने का प्रयास किया तो किशनगढ़ की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व चित्रात्मक परम्परा बड़ी आकर्षक व रुचिपूर्ण प्रतीत हुयी।

स्वयं राजस्थान राज्य जो सांस्कृतिक एकता का सूचक है। भारत का यह राज्य संस्कृति की दृष्टि से राष्ट्र का हृदय तथा वीरता की दृष्टि से देश की एक शक्तिशाली भुजा के रूप में दिखायी पड़ती है।[4] राजस्थान का प्रत्येक प्रान्त आन-बान-शान तथा गौरव से आलोकित है। राजस्थान अपने राज्य की ऐसी कलात्मक व सांस्कृतिक झांकी प्रस्तुत करता है कि जिसमें पूरी भारतीय संस्कृति की झांकी का दर्शन किया जा सकता है। प्राचीन काल से ही यह क्षेत्र भारत देश की समृद्ध ईकाइयों का अंग था[5] जिसमें अन्तर्वेद, सौवीर, मरूकान्तार, लाट, गुर्जर आदि भू-भाग की सीमायें सम्मिलित थीं।[6] अंग्रेज शासकों ने अपनी सुविधा व राजनीतिक स्वार्थ को देखते हुये इस भू-भाग की सीमाओं को मरूस्थलीय क्षेत्र में सम्मिलित कर राजपूत राज्यों के भाग के रूप में मान्यता देकर इसका नाम राजपूताना रख दिया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात विलय प्रक्रिया के अन्तर्गत इसका नामकरण राजस्थान कर दिया गया।[7] राजस्थान की अलग-अलग रियासतों में भिन्न-भिन्न शैलियां पनपकर पूर्णता को पहुंची और उसी रियासत के नाम से

---

1. पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2, पृ0 3.
2. मोतीलाल मेनारिया - राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ0 6.
3. सुरेन्द सिंह चौहान-राजस्थान की चित्रकला, पृ0 181.
4. डी0 आर0 वशिष्ठ-मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, पृ0 83.
5. Dr. Mukherjee-*The Social Function of Art*, P. 17.
6. बी0 एम0 दिवाकर-राजस्थान का इतिहास, पृ0 356.
7. बी0 एल0 पानगड़िया-राजस्थान का इतिहास, पृ0 158.

प्रचलित हो गयी।[1] किशनगढ़, जोधपुर, उदयपुर, कोटा, बूंदी, नाथद्वारा, अलवर और बीकानेर राज्यों की चित्र-शैलियां आज भी अपने रियासत के नामों से ही प्रचलित एवं विख्यात हैं। इन लघुचित्र शैलियों का महत्व भारतीय कला जगत ही नहीं वरन सम्पूर्ण विश्व कला-संसार भी स्वीकार करता है।

किशनगढ़ के कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, भौतिक व लौकिक जीवन के शाश्वत और अविरल स्वरूप को युग-युगान्तर से प्रतिपादित परम्पराओं के माध्यम से आज भी देखा व जाना जा सकता है। किशनगढ़ के सांस्कृतिक स्वरूप का सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है कि उसमें अभिहित सौन्दर्य, दर्शन व कल्याण के तत्व इतने प्रबल हैं कि लम्बे कालक्रम के उतार-चढ़ाव की यात्रा के बाद भी उनमें नैतिक गुणों तथा संस्कारों को नयी प्रेरणा देने की क्षमता आज भी विद्यमान है।[2] किशनगढ़ के मानवीय सांस्कृतिक जीवन से यहां के इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यहाँ का इतिहास केवल तिथि-क्रम से ही जुड़ा नहीं है वरन् उसका सम्बन्ध उन पौर्वापर्य विचारों के इतिहास से है, जिसमें सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाओं के संस्कारों का दर्शन है।[3] ऐसी स्थिति में वह मुख्यतः उस इतिहास बन जाता है, जिसमें समाज की रचनात्मक शक्ति, आदर्श, आचार-विचार, दार्शनिक व आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक जीवन का युग-युगान्तर तक प्राणवान लेखा-जोखा रहता है।

किशनगढ़ की धार्मिक परम्परा यहाँ के जनजीवन में देखने को मिलती है। यह सदैव ही भौतिकता के धरातल से आध्यात्मिकता की ऊंचाइयों तक पहुंचने का मधुर सन्देश देने वाले सन्त साधकों की धरती रही है। किशनगढ़ में सभी शासक वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे। वल्लभकुल सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण के युगल रूप की आराधना तथा भक्ति पर विशेष बल दिया गया है। कृष्ण की लीलाओं के श्रवण, कीर्तन व दर्शन को सहज मोक्ष पाने का रास्ता बताया गया। अतः कलाकारों ने राधा-कृष्ण की प्रेम व भक्ति के रस से ओत-प्रोत समाज तथा स्वान्तः सुखाय के लिये चित्रों में राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का अंकन किया है।[4] वल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टिमार्ग में जो महिमा कीर्तन की है वही चित्र दर्शन की है। इस पर ब्रजसाहित्य व संस्कृति का प्रभाव परिलक्षित होता है। पौराणिक काल से ही वैष्णव सम्प्रदाय के आविर्भाव तक ज्यों-ज्यों कृष्णभक्ति भावना का विस्तार होता गया त्यों-त्यों अनेक लीलास्थलों की वृद्धि होती गयी। भगवान कृष्ण की आनन्दमयी सरस लीलाओं और लोकोपकारी क्रिया-कलापों ने भारतीय जनमानस को जितना प्रभावित किया है

---

[1] डा० रेखा कक्कड़-कला लेख, राजस्थानी चित्रकला, प्रतियोगिता दर्पण, जनवरी 1990, पृ० 603-604.

[2] डा० जयसिंह नीरज-राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, पृ० 40.

[3] S.C. Welch-*Indian Art & Culture*, P. 83.

[4] Eric Dickinson-*Kishangarh Painting*, P. 5.

उतना सम्भवतः किसी अन्य ने नहीं।[1] बल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी विट्ठलनाथजी के वंशज श्री गोकुलनाथजी, श्रीहरिराय आदि विद्वानों ने धार्मिक आस्था रखने वाली जनता को कृष्णोपदेशों तथा बल्लभ दर्शन के आदर्शों से प्रभावित किया। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने भक्ति व धार्मिक श्रद्धा व आस्था के अनुसार ही पुष्टिमार्ग को स्थापित किया। सभी धर्माचार्यों के त्यागमय जीवन, उनके प्रभावी आचरण, उपदेशों तथा रचनाकारों की कृतियां व चित्र माधुर्य भावना से युक्त कृष्णभक्ति का सन्देश जनजीवन तक पहुंचाती रही।[2]

कृष्ण से सम्बन्धित धार्मिक ग्रन्थों में गोवर्धन पहाड़ी का धार्मिक दृष्टि से विशेष महत्व माना गया है। श्रद्धालु भक्त लोग इसे श्रद्धावश गिरिराज (पर्वतों का राजा) के नाम से भी पुकारते हैं। पुष्टिमार्ग पर आधारित कृष्ण-लीला युक्त चित्रों की पृष्ठभूमि में गिरिगोवर्धन पर्वत को दर्शन तथा भक्तिभावना से चित्रित किया गया है। किशनगढ़ शैली के चित्रों में इसका यथावत अंकन हुआ है। कृष्णभक्त कवियों तथा अष्टछाप कीर्तनकारों ने भी गोवर्धन पर्वत के प्रति अपनी आस्था प्रकट की तथा इसे राधा-कृष्ण की मिलनस्थली के रूप में माना। पर्वत की भव्य छटा का प्राकृतिक वर्णन कवियों ने किया तो भला चित्रकार इसकी सुन्दरता को मूर्तरूप देने में कैसे पीछे रहता।

वैसे तो राजस्थान की सभी शैलियों में राधा-कृष्ण से सम्बन्धित बाल-लीलाओं तथा प्रेमलीलाओं का अंकन हुआ है जो धार्मिक व साहित्यिक ग्रन्थों में वर्णित है। परन्तु इन शैलियों का अपना-अपना निजत्व है। वे अपनी-अपनी विशेषताओं द्वारा पहचानी जाती हैं। मेवाड़ में जहाँ कृष्ण की बाल लीला से सम्बन्धित चित्रों का अंकन हुआ है वहीं किशनगढ़ में बने चित्र राधा-कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं के कारण विख्यात हैं। परन्तु राधा-कृष्ण के प्रेम में डूबे इन चित्रों का अंकन भक्ति व श्रद्धा के ही परिप्रेक्ष्य में हुआ है।[3]

संस्कृत, हिन्दी व राजस्थानी काव्यों पर आधारित इस चित्रकला में मध्यकालीन संस्कृति व सभ्यता के भाव-जगत का साकार रूप देखने को मिलता है। किशनगढ़ के शासक नागरीदास जो किशनगढ़ शैली के विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं ने स्वयं अनेक कृष्ण सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना कर किशनगढ़ के कलात्मक, सांस्कृतिक क्षेत्र में अपूर्व योगदान दिया।[4] सावन्तसिंह की प्रिया बणीठणी का सौन्दर्य जो राधा की आकृति का मॉडल था, चित्रकारों ने अत्यन्त कुशलता के साथ उसका चित्रांकन किया है। सावन्तसिंह ने अपने समय में अनेक कलाकारो को आश्रय प्रदान किया जैसे निहालचन्द,

---

1 राजस्थानी चित्रधारा --*राजस्थान इतिहास सम्मेलन,* पृ० 7.

2 प्रेमचन्द गोस्वामी-*राजस्थान की लघुचित्र शैलियाँ,* पृ० 40.

3 रामगोपाल विजयवर्गीय-*राजस्थानी चित्रकला,* पृ० 2.

4 डा० रेखा कक्कड़-*कलालेख, राजस्थानी चित्रकला, प्रतियोगिता दर्पण,* जनवरी 1990, पृ० 603-604.

मोरध्वज इत्यादि। आश्रित कवियों तथा साहित्यकारों को आश्रय देने की परम्परा बाद के शासकों के काल में भी चलती रही। आश्रित कवियों में कविवृन्द का नाम उल्लेखनीय है। अधिकतर राजा स्वयं कवि थे तथा उन्होंने अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना की।[1]

किशनगढ़ के समाज में धर्म का विशेष स्थान है। लोग पूजा-पाठ में विशेष रुचि रखते है तथा गृहों, शुभलग्न एवं जन्मपत्रियों पर विश्वास करते हैं। यज्ञों का भी प्रचलन समाज में है। विभिन्न अवसरों पर जैसे पूर्णिमा, एकादशी, संक्रान्ति आदि पर लोग व्रत रखते हैं। दशहरा, दीपावली, राखी, होली इत्यादि प्रमुख त्यौहार हैं। किशनगढ़ में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण राजस्थान में त्यौहार अपना मुख्य स्थान रखते हैं। यहां के संघर्षमय जीवन तथा शुष्क वातावरण को तीज-त्यौहार और मेले लोगों के जीवन को रसमय और स्फूर्तिदायक बना देते हैं।[2] यदि रणक्षेत्र में शौर्य एवं बलिदान राजस्थान की सामान्य परम्परा रही तो रीति-रिवाज, पर्व तथा त्यौहारों का उल्लास के साथ मनाना भी उतनी ही सामान्य परम्परा रही है। यहां होली का त्यौहार अत्यन्त धूमधाम से मनाया जाता है।

होली के दिन होलिका दहन तथा दूसरे दिन फाग खेलने की प्रथा है।[3] स्थान-स्थान पर स्त्री-पुरुषों के समूह राजस्थान की विभिन्न बोलियों में फाग गीत गाते एक विशेष वाद्ययन्त्र के साथ जिसे चंग कहा जाता है, गाते दिखायी पड़ते हैं। गुलाल तथा रंगीन पानी से सराबोर स्त्री-पुरुष तथा बच्चे सभी इस त्यौहार को उल्लास व उत्साह के साथ मनाते हैं। चित्रकारों ने इस परम्परा को अपने चित्रों के माध्यम से भी व्यक्त किया है। इसी भाँति यहां दीपावली का त्यौहार भी धूमधाम से मनाया जाता है। ये लोग दीपावली से दो दिन पूर्व एक दीप जलाते हैं, जिसे जामदीप कहते है। इस अवसर पर घरों को अलंकृत करने एवं देवी-देवताओं के शुभ प्रतीकों से चित्रित करके सजाये जाने की परम्परा भी देखने को मिलती है। मन्दिरों तथा भवनों को दीपमालाओं तथा कन्दीलों से सुसज्जित किया जाता है।[4] दीपावली के दूसरे दिन अर्थात कार्तिक शुक्ल को अन्नकूट तथा गोवर्धन की पूजा की जाती है।[5]

विश्व विजय अभियान के लिये प्रस्थान करने के लिये विजयलक्ष्मी त्यौहार मनाने का रिवाज था। यह पर्व बुराई पर अच्छाई की विजय का प्रतीक माना जाता है। यह मुख्यतः क्षत्रियों का त्यौहार माना जाता है। आश्विन

---

1 आर0 ए0 अग्रवाल - *कलाविलास*, पृ0 111.
2 डा0 एल0 आर0 भल्ला-*राजस्थान का सामान्य ज्ञान*, पृ0 242.
3 वही, पृ0 242.
4 सुखवीर सिंह गहलौत-*राजस्थान के रीति-रिवाज*, पृ0 64.
5 वहीं, पृ0 64.

मास की दशमी को श्री राम ने विजय प्राप्त की थी, ऐसी मान्यता प्रचलित है।[1] यह पर्व स्वतन्त्रता से पूर्व राजाओं के समय में राजसी के साथ मनाया जाता था। उस समय के चित्रों को देखने से ज्ञात होता है कि विजयदशमी मेले का आयोजन तथा उसमें रावणवध के नाटकीय प्रदर्शन की परम्परा तत्कालीन समाज का एक अंग था।

गणगौर का पर्व यहां की स्त्रियों का मुख्य पर्व है।[2] इस दिन स्त्रियाँ अपने-अपने पति की चिर आयु की कामना करती हैं। होली के बाद से जो पूजा वे प्रतिदिन करती हैं, उसका समापन इस त्यौहार के दिन होता है। सावन के मेघों का आनन्द उठाते हुये विवाहित नवयुवतियां इस दिन रंग-बिरंगे वस्त्रों तथा आकर्षक श्रृंगार से सुसज्जित होती हैं, जिससे उनका रूप उमंग व उत्साह से खिल उठता है।[3] वृक्ष पर पड़े झूलों पर झूलती स्त्रियां समूहों में बैठकर लोकगीत गाती हैं[4] --

''हरणी मन हरिया किया उर हालियो उमंग

तीज पंख रंग त्यारियां सावण क्यों रंग।''

ये राजस्थानी लोकगीत यहां के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।[5]

यहां त्यौहारों के साथ-साथ विभिन्न मेलों का आयोजन भी होता है। अधिकतर मेले उन स्वनामधन्य महापुरुषों की पुनीत स्मृति में आयोजित किये जाते हैं जिन्होंने जनता के कल्याण के लिये तथा उच्च मानवीय आदर्शों की रक्षा के लिये अपने प्राणों तक का बलिदान दे दिया और जो लोक देवताओं के रूप में आज भी पूजे जाते हैं। यहाँ मेलों में स्त्री-पुरुष जहां बड़े उत्साह के साथ भाग लेते हैं, वहीं मेले में भक्ति रस की अद्भुत धारा प्रवाहित होती है। वर्ष के विभिन्न त्यौहारों, मेलों, जन्मोत्सवों, विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर स्त्री-पुरुष परम्परागत पोशाक पहनकर लोकगीत गाते हैं। लोकगीत यहाँ की मर्यादा, अनुशासन, पारम्परिक वेशभूषा, प्रकृति के साथ तादात्म्य, घरेलू सम्बन्ध तथा वैभवपूर्ण जीवन जीने की अदम्य जिजीविषा का परिचय देते हैं।[6]

किशनगढ़ के स्त्री-पुरुषों का पहनावा अत्यन्त आकर्षक है। पुरुष अपनी वेशभूषा में अधिकतर 'पाग बाला बन्दी' (एक प्रकार का कुर्ता) 'सूथन पोतीयो' (साफा) तथा 'गोसपेंच' (कन्धे पर रखने का वस्त्र) पहनते हैं।[7] उच्चवर्ग के लोगों के वस्त्र रेशमी तथा मूल्यवान होते हैं, जिस पर ये कलंगी युक्त पगड़ी तथा

---

[1] रामशरण शर्मा व्याकुल-*राजस्थान की लघुचित्र शैलियां*, पृ0 20.
[2] गोविन्द सिंह राठौर-*मारवाड़ की सांस्कृतिक धरोहर*, पृ0 40.
[3] डा0 स्वर्णलता अग्रवाल-*राजस्थान के लोकगीत*, पृ0 15.
[4] वही, पृ0 15.
[5] डा0 एल0 आर0 भल्ला-*राजस्थान का सामान्य ज्ञान*, पृ0 240.
[6] डा0 स्वर्णलता अग्रवाल-*राजस्थान के लोकगीत*, पृ0 15.
[7] डा0 एस0 आर0 भल्ला-*राजस्थान का सामान्य ज्ञान*, पृ0 242.

पावों में नोक वाला जूता पहनते हैं। स्त्रियां अधिकतर शरीर के ऊपरी हिस्से पर कांचली व कुर्ती तथा निम्न भाग के लिये लहंगे का प्रयोग करती हैं तथा सिर पर आंचल तथा ओढ़नी ओढ़ती हैं।[1] चोली व लहंगे पर सुन्दर बेलबूटे, जरी व गोटे का काम होता है।

यहां के स्त्री-पुरुष दोनों आभूषण धारण करने में रुचि रखते हैं। पुरुष गले में माला तथा बाहों में पहुंची व कानों में लूंग या मुरकी पहनते हैं। स्त्रियां अपने पति की निशानी के रूप में हाथी दाँत अथवा लाख का चूड़ा पहनती हैं।[2] कुछ स्त्रियां ऊपर बाजू पर भी चूड़ा पहनती हैं जो अमर सुहाग का चिन्ह माना जाता है। यहां की वेशभूषा तथा आभूषणों में इतनी सामर्थ्य है कि जिसमें सोलह श्रृंगार से सुसज्जित होकर नख-शिखपर्यन्त आभूषण धारण किये जा सकते हैं। स्त्री आभूषणों में बागड़ी, हथफूल, बोरला, खड़ी मरहठी, गोखरु, सिरफूल, पीपल पत्ते, बाजूबन्द, करधुरी, तिमन्या तथा कड़े आदि प्रमुख हैं।[3]

मनोरंजन के लिए युद्ध, शिकार, संगीत, नृत्य, जल-क्रीड़ा, कपोत-क्रीड़ा, उपवन के विभिन्न खेल तथा चित्रकारी आदि उपयुक्त साधन हैं। शिकारी दृश्यों का अंकन किशनगढ़ कला में बखूबी से मिलता है।[4] पशु-पक्षियों को परस्पर लड़वाना भी मनोरंजन का एक साधन था।

राजपूत लोग दिखने में ताकतवर, मजबूत डीलडौल वाले लगते हैं। दाढ़ी रखना इनका आम रिवाज है। ये सीधे-साधे व मिलनसार होते हैं। राजपूत अपनी मान-मर्यादा व शान की रक्षा के लिये अपनी प्राणों की बाजी तक लगा देते हैं। राजपूतों की प्रशंसा में कर्नल टाड का कहना है कि 'राजस्थान में कोई छोटा सा राज्य भी ऐसा नहीं है जिसमें थर्मोपोली (यूरोप) जैसी रणभूमि न हो और शायद ही कोई ऐसा नगर मिले जहां लियोनिडा जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो।'[5] शूरवीरता, देशभक्ति, स्वामिधर्म, प्रतिष्ठा, अतिथि सत्कार और उदारता राजपूतों की चरित्रगत विशेषता है। किशनगढ़ के पुरुषों की लम्बाई अधिक होती है। औसतन वे मध्यम कद के होते हैं। वे देखने में सुन्दर, चित्ताकर्षक देह के व अच्छे रूप-रंग के होते हैं। उनका गेहुँआ अथवा लाल मिश्रित पीला वर्ण रूप लावण्य का प्रतीक है। उनके काले सुनहरे बाल, गोल सिर, तीखे नेत्र, छोटा मुख, गोल चिबुक, लम्बी ग्रीवा, लम्बी मूंछे, नारियल जटा सी दाढ़ी, केहरि कटि वक्ष, लम्बे हाथ तथा नीचे का मांस तंग है। पुरुषों के रूप के साथ-साथ यहां स्त्री का रूप भी अत्यन्त मनमोहक है।[6]

---

[1] डा० अविनाश बहादुर वर्मा-*भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ० 210.

[2] डा० निर्मला-*राजस्थानी चित्रकला में नारी अंकन, (शोध प्रबन्ध)]* पृ० 110.

[3] लल्लन राय-*रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में उल्लिखित वस्त्राभरणों का अध्ययन*, पृ० 125.

[4] Philip & Rawson-*Indian Painting*, P. 76.

[5] के० जेम्स टाड-*जोधपुर राज्य का इतिहास*, पृ० 329.

[6] डा० आर० एल० भल्ला-*राजस्थान का सामान्य ज्ञान*, पृ० 232.

यहां पुरूष सामान्यतः एक ही विवाह करते हैं। हिन्दू धर्म में यहाँ गोत्र के अलावा सात पीढ़ी तक विवाह सम्बन्ध करना पसन्द नहीं करते हैं। मुस्लिम समाज में विवाह आपसी सम्बन्धियों में ही होते हैं। हिन्दुओं के विवाह में ब्राह्मण तथा मुसलमानों के विवाह में काजी का महत्वपूर्ण भाग रहता है। वर पक्ष अपने सम्बन्धियों व मित्रों को लेकर वधू के घर जाता है। वर पक्ष उनका स्वागत कर उन्हें भोज देता है। विवाह भोज में वर-वधू दोनों पक्ष के लोग सम्मिलित होते हैं।[1] उच्च जातियों में वरपक्ष को वधूपक्ष वाले दहेज देते हैं परन्तु पिछड़ी जातियों में वर पक्ष के लोग वधूपक्ष के लोगों को रकम देते हैं। मुसलमानों मे काजी की उपस्थिति में हज़ाब (प्रस्ताव) तथा कबूल (स्वीकृति) की रस्म अदा की जाती है।[2] इसी समय वधूपक्ष के लिये मेहर की रकम भी तय की जाती है। काश्तकारों में आटा-साटा की परम्परा भी प्रचलित है, जिसमें वर पक्ष की कोई भी कन्या वधू पक्ष के किसी लड़के को विवाह के लिये दी जाती है। यहाँ प्रायः वर्षा ऋतु में विवाह नहीं होते हैं। विवाहित स्त्रियां ससुराल पक्ष के लोगों के सामने आंचल से अपना मुख ढक कर रखती हैं।[3]

हिन्दू लोग मृतकों का दाह संस्कार करते हैं। भांभी, विश्नोई आदि हिन्दू जातियों में मृतकों को दफनाया जाता है जैसा मुस्लिमों में होता है।

यहाँ गेहूँ, चावल, बेसन, मूठ, मैदा आदि खाद्यानों का खाने के रूप में प्रयोग होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में 'राब' (छाछ में बाजरे का आटा घोलकर प्रायः संध्या को उबाला जाता है और दूसरे दिन खाया जाता है।) 'खीच'[4] (बाजरे को ओखली में कूट कर, उसका छिलका उतार कर चौथाई हिस्सा मोठ पानी में मिलाकर आग पर गाढ़ा होने तक पकाया जाता है) 'सोगरा' (बाजरे के आटे की मोटी सिंकी रोटी) 'घाट' (मक्की का मोटा दला हुआ आटा पानी में पकाकर गाढ़ा बनाया जाता है) तथा दलिया खाया जाता है। कैर, कूमट, फोग, सांगरी और फलियाँ यहाँ की प्रमुख सब्जियां हैं।[5] विवाह आदि शुभ अवसरों पर मुगरी, चूरमा, जलेबी, छुहारे तथा जीर, इत्यादि पकवानों को पकाया जाता है।

मनुष्य के कर्म जिस प्रकार उसके व्यक्तित्व को जानने का सशक्त माध्यम है। उसी प्रकार उसकी भाषा, वाणी, शिष्टता व नम्रता उसके व्यक्तित्व के गुणों को जानने में सहायक सिद्ध होता है।[6] किसी भी देश की उन्नत संस्कृति में वहां के लोग, वहां की बोलचाल की भाषा व शिष्ट वार्तालाप इत्यादि एक सकारात्मक भूमिका निभाते हैं।[7] जैसे यहाँ की बोलचाल की भाषा

---

1. गोविन्द सिंह राठौर-*मारवाड़ की सांस्कृतिक धरोहर,* पृ0 8.
2. Dr. Gopi Nath Sharma-*The Social Life in Medieval Rajasthan*, P. 12.
3. गोविन्द सिंह राठौर-*मारवाड़ की चित्रकला,* पृ0 78.
4. वहीं, पृ0 80.
5. सुखवीर सिंह गहलौत-*राजस्थान के रीति-रिवाज,* पृ0 65.
6. राजकिशोर सिंह-*प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति,* पृ0 20.
7. गोविन्द सिंह राठौर-*मारवाड़ की सांस्कृतिक धरोहर,* पृ0 8.

में लाडली, वापसी, दादीसा, मामूसा, काकोसा, काकीसा, कंवरसा, नानूसा, भाभूसा, नानीसा, लाडेसर, अन्नदाता, आप पधारोसा, विराजोसा, जल अरोगावों, आराम फरमावो सा, राज पधारया, सोभा होसी आदि ऐसी अनेक कर्णप्रिय शब्दावली हैं जिससे यहां के लोग विपुलता से प्रत्येक दिन प्रयोग करते हैं।

यहां के लोगों के जीवन में रचे-बसे मेले, त्यौहार, व्रत, उत्सव, संस्कृति, साहित्य जिस स्वरुप का दर्शन हमें कराते हैं वह त्याग, संयम तथा वीरता, श्रद्धा, भक्तिभाव और आपसी भाई-चारे व मेल-मिलाप की संस्कृति है।[1] यह इस प्रदेश की अमर धरोहर है जो अनेक आघात सहकर भी अमर है। इस प्रकार विभिन्न देशों और प्रदेशों के भूगोल से प्रेरित होकर सृजनशील मानव ने जिस अद्‌भुत कल्पना लोक की रचना की, यहां की इन्द्रधनुषीय संस्कृति इसका अच्छा उदाहरण है।[2] मन को मोह लेने वाले नृत्य, रंग-बिरंगी वेश-भूषा, शिल्पकला, हस्तकला, संगीत व भाषा की सरसता, शौर्य की विभिन्न गाथायें इस तथ्य को पूरी तरह से साबित करते हैं। विभिन्न संस्कृतियों का आदान-प्रदान एक सहज प्रक्रिया है। बाहर से आने वाली सांस्कृतिक परम्पराओं ने देश में प्रचलित परम्पराओं को प्रभावित और समृद्ध किया।[3]

इस प्रकार कला एवं सौन्दर्यबोध की सहस्त्रों धारायें हमारे देश में बाहर से आयीं और बहुत सी कलात्मक उद्‌भावनायें हमारे देश की संस्कृतियों से घुल-मिल गयीं। मनुष्य ने हृदय की तमाम तरंगित भावनाओं को रंग, रूप व आकार दिया जिससे कला व संस्कृति को विभिन्न आयाम मिले।

---

[1] राजस्थान वैभव *श्रीरामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ*, भाग-2, पृ0 5.

[2] वही, पृ0 6.

[3] बी0 एम0 दिवाकर-*राजस्थान का इतिहास*, पृ0 358.

द्वितीय अध्याय

(a) किशनगढ़ शैली के चित्रों की विशेषताओं का अध्ययन

(b) चित्रों के भावपक्ष का अध्ययन

(c) चित्रों के श्रृंगारपक्ष का अध्ययन

द्वितीय अध्याय

किशनगढ़ शैली के चित्रों की विशेषताओं का अध्ययन

किशनगढ़ शैली विविधताओं से परिपूर्ण है। वहां के चित्र मधुरतम स्वप्न महत्वाकांक्षाओं, सुख-दुख की भावना, शौर्यपूर्ण उपाख्यान तथा लोगों के सूक्ष्म मनोभावों के चित्रण के साथ श्रृंगार, प्रेम, भक्ति आदि धार्मिक भावनाओं की विराट कल्पना से भरे हुये हैं। किशनगढ़ की चित्रकला में सामूहिकता की सृष्टि है जिसमें छोटे से छोटे शिल्पियों ने कला के उन्नयन तथा विकास के लिये अधिकाधिक प्रयत्न किया है। बदलती हुयी विभिन्न परिस्थितियों से कला का स्वरूप भी प्रभावित हुआ है जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन सांस्कृतिक स्वरूपों के साथ सम्मिलित होकर यह अपनी निजी तथा बाह्य विशेषताओं को सरल रूप में अभिव्यक्त करने में सफल हुयी है।[1]

---

1 डा. रेखा कक्कड़ - *कलालेख, राजस्थानी चित्रकला, प्रतियोगिता दर्पण*, जनवरी 1990, पृ0 603-604.

कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर का मानना है कि जल में उछलने वाली मछली का सौन्दर्य निरपेक्ष दृष्टि रखने वाला ही देख सकता है न कि उसको पकड़कर मारने वाला मछुआरा। चित्रण मे ऐसी साधना जिसकी दृष्टि निरपेक्ष हो सके आसानी से नहीं प्राप्त होती है। इसके लिये गहन भावनात्मक चिन्तन तथा निरन्तर साधना की आवश्यकता होती है, तभी चित्र की रचना में भाव,सौन्दर्य व चेतना की मौलिक अभिव्यक्ति होती है।[1] यही सरल और सहज अभिव्यक्ति किसी भी कला के भावों तथा विशेषताओं को उजागर करती है। चित्रकार अपने आन्तरिक भावों को ही विशेष रूप से कृति के रूप में ढालता है।[2] तब भावों की एक विशेष शैली मूक रूप से दर्शक के सामने आती है और यही उसकी निजता अथवा विशेषताओं का बोध कराती है।

शैली या Style शब्द लेटिन भाषा के 'स्टिलस' शब्द से बना है और हिन्दी में यह शैली शब्द के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। शैली शब्द जो भिन्न- भिन्न शब्दों के रूप में जानी जाती रही है, समय और काल के साथ-साथ परिवर्तित होती रही है। कलाकार के मन मे निर्मित प्रतिरूप ही उसकी निज शैली बन जाती है। शैली लिखने या चित्र को पूर्ण करने की एक विधा है जो रंगो और रेखाओं के माध्यम से तथा कलाकार के व्यक्तित्व, बौद्धिक कलात्मक व सामाजिक सरोकारों के प्रभाव आदि सब कुछ मिलाकर चित्र के रूप में अभिव्यक्ति होती है।[3]

राजस्थान में विभिन्न रियासतों में विकसित होने वाली शैलियां पनपकर अपने-अपने राज्यों के नाम से प्रचलित हुयीं हैं।[4] मुगलों के बाद जिन चित्रकारों ने राजस्थान में आश्रय लिया, वे अधिकांशतः दरबार में रहकर ही अपनी कला को निखारते, संवारते रहे।[5] राजस्थान की सभी शैलियां किशनगढ़, जोधपुर, उदयपुर, कोटा, बूंदी, नाथद्वारा, अलवर और बीकानेर शैलियां आज भी अपनी रियासत के ही नाम से प्रचलित एवं विख्यात हैं।

राजस्थान की इन प्रान्तीय शैलियों में किशनगढ़ शैली अपनी विशेषताओं के कारण चित्रकला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।[6] इस शैली में रंगों का सौन्दर्य, रेखाओं का लावण्य, साहित्य तथा काव्य के रूपकों की अभिव्यंजना इतनी मुखर है कि उनका अनुभव करने पर हमें कला व कविता दोनों के आनन्द की अनुभूति हो जाती है।[7] रेखाओं में इतना प्रवाह व गतिमयता झलकती है कि कम रेखाओं के प्रयोग होने पर भी वे अपने विषय को पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान कर देतीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों चित्रकार ने अपनी तूलिका द्वारा आरम्भ से अन्त तक एक लय व गति में चलकर चित्र पूर्ण किया हो।[8] ये चित्र भावों की अभिव्यक्ति में इतने शक्ति सम्पन्न हैं कि ये कलाकार की

---

1 राधेश्याम - *श्रृंगार रस के चितेरे रामगोपाल विजयवर्गीय*, राजस्थान पत्रिका, पृ05

2 वही, पृ0 6

3 राधेश्याम - *सौन्दर्य बोध की चेतना के लिये चित्र*, राजस्थान पत्रिका, पृ0 4

4 R.K. Tandon - *Indian Miniature Painting*, P. 40

5 वाचस्पति गैरोला - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 90

6 सुरेन्द्र सिहं चौहान-*राजस्थान की चित्रकला*, पृ0 112

7 वही, पृ0 113

8 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 2

अनवरत साधना का परिणाम प्रतीत होते हैं।[1] इन चित्रों में कल्पना तथा भावनाओं का मुख्य आधार एक ही था वह था राधा कृष्ण की युगल लीला के दर्शन की अभिलाषा, आत्मा व परमात्मा के मिलन की अनिमेष व्याकुलता।

इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि किशनगढ़ शैली में कुछ विशिष्ट अद्वितीय गुणवत्ता है जिसने किशनगढ़ जैसी एक साधारण सी नगरी को विश्वभर में प्रसिद्ध कर दिया।[2]

कवि एवं कृष्ण भक्त सावन्तसिंह अथवा नागरीदास के नेतृत्व में सुन्दर तूलिका के स्पर्श से चित्रित रचनाओं ने कलामर्गज्ञों व विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। यही नागरीदास किशनगढ़ की चित्रकला को जीवन्तता प्रदान करने वाले रसिक, भावुक, कला-मर्मज्ञ एवं सन्त हैं। इनके द्वारा रचित पदावलियों ने सम्पूर्ण राजस्थान में कृष्णभक्ति की अजस्र धारा बहा दी । किशनगढ़ के अधिकांश चित्रों में इन्हीं पदावलियों की प्रेरणा अभिव्यक्त होती दिखलायी पड़ती है।[3] सावन्तसिंह के समय में किशनगढ़ की कला ने विशिष्ट प्रतिमान निर्धारित किये। किशनगढ़ के चित्रों में जहां एक ओर मनोवैज्ञानिक प्रभाव परिलक्षित होता है वहीं दूसरी ओर बाघ, अजन्ता, सित्तनवासल आदि गुफाओं में बने चित्राकृतियों की भांति इनमें भी एक नियन्त्रित, लयात्मक रेखाप्रवाह दिखलायी पड़ती है। यहां राधा कृष्ण की मुखाकृति की एक निश्चित शैली है जो इसे अन्य शैलियों से पृथक करती है।[4] इन्हीं विशिष्टताओं के साथ किशनगढ़ के कलाकारों ने रूप, रंग व कला का संगम कर एक नवीन अद्भुत स्वप्निल संसार की रचना की।

जिस विशिष्ट सम्प्रदाय ने इस शैली को प्रेरित किया था वह था वल्लभाचार्य सम्प्रदाय। जिसके प्रणेता एक तेलगू ब्राहमण थे, जिन्होंने श्रीनाथ सम्प्रदाय का प्रारम्भ किया। ये पुष्टि मार्ग के समर्थक थे। उनके अनुसार यह मार्ग आनन्द का मार्ग है। किशनगढ़ के सभी शासक बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण प्रायः साहित्य, कलाप्रेमी तथा कृष्ण भक्त रहे थे।[5] नागरीदास का उपास्यभाव श्रृंगारिक है। यही कारण है कि उस समय बने चित्रों मे राधाकृष्ण की श्रृंगारप्रधान लीलाओं के चित्र विशेषतः मिलते हैं चित्र फलक 38, 40, 55, 45, 43, 64, 65, आदि। इस सम्प्रदाय में राधाकृष्ण के युगलस्वरूप की आराधना तथा भक्ति पर विशेष बल दिया गया है। कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को श्रवण कीर्तन और सहजमोक्ष का साधन मार्ग बतलाया गया है। इस प्रकार राधाकृष्ण की भक्ति से ओतप्रोत समाज के लिये एवं स्वान्तः सुखाय के लिये कलाकारों ने कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को चित्रों में साकार किया है।[6] किशनगढ़ के चित्रों पर ब्रज साहित्य व संस्कृति का भी प्रभाव दिखायी पड़ता है। बल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार श्रीकृष्ण ही पूर्णानन्दस्वरूप पुरूषोत्तम परमब्रह्म हैं। उनके माधुर्य पक्ष को प्रचारित एवं प्रसारित करने का श्रेय बल्लभाचार्यजी को ही

---

1 राजस्थान वैभव *श्री रामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ*, भाग-2, पृ0 96

2 Rooplekha, Vol- XXV, Part - I, Banerjee - *Kishangarh Painting*, P. 14

3 डा. फैयाज अली खान - *भक्तवर नागरीदास*, पृ0 20

4 Krishan Chaitanya - *A History of Painting, Rajasthan Tradition*, P. 127

5 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 2

6 Erick Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 5

है।[1] वल्लभाचार्य के प्रभाव से काव्य एवं ललित कलाओं में भक्ति द्वारा नवीन आन्दोलन का सूत्रपात हुआ और अष्टछाप की स्थापना हुयी। इसमें सम्मिलित सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास इत्यादि कवियों ने कृष्ण को चरित्र नायक माना[2] और उनकी श्रृंगारमयी भक्तिधारा को सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रवाहित किया।[3] इसी भक्ति धारा में सावन्तसिंह तथा उनके वंशजों की आत्मा रमी।

वैसे तो राजस्थान की सभी शैलियों में राधाकृष्ण से सम्बन्धित जीवन के प्रत्येक पक्ष का अंकन साहित्य व धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित कथाओं के आधार पर हुआ है। परन्तु प्रत्येक शैली का अपना निजत्व है। वे अपनी-अपनी विशेषताओं के द्वारा पहचानी जाती हैं। मेवाड़ शैली में यदि कृष्ण के बाल्यावस्था से सम्बन्धित चित्रों की भरमार है तो किशनगढ़ में राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं के चित्रण को प्रधानता मिली है, परन्तु इन प्रेम दृश्यो में किसी प्रकार की अश्लीलता का भाव नहीं है वरन् इनका अंकन आध्यात्मिकता व भक्ति के परिप्रेक्ष्य में ही हुआ है। चित्र फलक 19, 26, 29, 38, 56। गोपियों के कान में ज्यों ही बंसी की मधुर लहरी का गुन्जन होता है तो वे लोकलाज त्यागकर तुरन्त ही श्रीकृष्ण के समीप पहुँच जाती हैं। कृष्ण ने गोपियों के साथ चन्द्र रात्रि में रास रचाया था जिस पर कलाकारों ने अनेक चित्रों का अंकन किया।[4] चित्र फलक 41। वृक्षों से युक्त सघन कुंज, नीलगगन में झिलमिलाते तारे और पूर्णिमा का चमकता चांद तथा नीचे के भाग में प्रस्फुटित कमलदल व तैरता पत्रगुच्छ, यमुना की शीतल सरितप्रवाह के अंकन के बिना चित्र अपूर्ण से माने जाते हैं।

किशनगढ़ शैली ने मध्यकालीन संस्कृति व सभ्यता और हिन्दी साहित्य व काव्य के भाव जगत को साकार किया। यहां की चित्रकला हिन्दू साहित्य समाज की सजीव प्रतिकृति है।[5] किशनगढ़ के चित्रकार वास्तव में रंगों व रेखाओं के जादूगर थे।[6] उनकी अभूतपूर्व वर्णव्यंजना नेत्रों को सुख प्रदान करती है। किशनगढ़ शैली के चित्र इसके अविरल स्रोत हैं। यहां न केवल भक्ति रस से ही सम्बन्धित चित्रों की अभिव्यक्ति हुयी है वरन् श्रृंगार विषयक उच्चकोटि के काव्य व साहित्य के आधार पर बहुत सा चित्रण कार्य हुआ है।[7] परन्तु इस शैली में माधुर्य भक्ति का इतना अधिक प्रचार व प्रसार हुआ कि इसकी सभी भक्ति व श्रृंगार सम्बन्धी रचनायें एक जैसी ही प्रतीत होती है। चित्र फलक 26, 27, 32, 35, 38, 55। श्रीमद्भागवत, गीतगोविन्द, रामायण आदि ग्रन्थों के आधार पर कृष्णभक्ति के चित्रों का अंकन हुआ है। महाभारत के कृष्ण चरित्र से सम्बन्धित चित्र रुक्मिणी हरण प्रसंग तथा अन्य कथाओं के रूप में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। चित्र फलक 42। मध्यकालीन कवि केशवदास, देव, बिहारी, मतिराम व नागरीदास आदि के काव्य को सभी शैलियों के चित्रकारों ने अपने चित्रों के अंकन का आधार बनाया। यद्यपि चित्रकारों ने कृष्ण के जीवन के समस्त पक्षों का अंकन किया है तथापि उनके रसिक रूप का अंकन करना कलाकारों को

---

1 राजस्थान वैभव *श्री रामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ*, भाग-2, पृ0 97

2 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्णकाव्य*, पृ0 25

3 रामनाथ - *मध्यकालीन भारतीय कलायें और उनका विकास*, पृ0 40

4 *Krishan the Divine Love Myth & Legend through Indian Art*, P-41

5 Jameela Brijbhushan - *The World of Indian Miniatures*, P-40

6 वाचस्पति गैरोला - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 18

7 वही, पृ0 18

विशेष रूप से प्रिय रहा है। कृष्ण के शैशव तथा यौवन लीलाओं ने चित्रकारों तथा संरक्षकों को विशेष रूप से सम्मोहित किया।[1] परन्तु किशनगढ़ शैली में कृष्ण के प्रेमी रूप का ही अंकन अधिक हुआ है।[2] चित्रफलक 18, 40, 41।

नागरीदास जो किशनगढ़ कला शैली के प्रणेता के रूप में जाने जाते हैं के कलात्मक समय में किशनगढ़ शैली को एक नया आयाम मिला।[3] नागरीदास ने 69 ग्रन्थों की रचना की जो नागरसमुच्चय संकलन के नाम से प्रसिद्ध है। जिनके प्रमुख विषय मुख्यतः राधा कृष्ण की विभिन्न प्रेममयी लीलाओं से ही सम्बन्धित हैं। उनके प्रमुख ग्रन्थों में मनोरथमंजरी, युगलरस माधुरी, फागविलास, वीणाविहार, पावसपच्चीसी, रास रसलता इत्यादि हैं।[4] कविवर नागरीदास की प्रिया वणीठणी का सौन्दर्य जो राधा की आकृति का एक आदर्श मॉडल थी चित्रकारों ने अत्यन्त सुन्दरता के साथ उसका चित्रांकन किया है। नागरीदास की श्रृंगारप्रियता तथा भावुकता ने कविता के रूप में कृष्णभक्ति की ऐसी पवित्र धारा प्रवाहित की कि उन्होंने अपने राजपाट का त्याग कर दिया और उसी अनुराग में लीन हो गये।[5] उन्होंने स्वयं लिखा है--

> ''जहां कलह तहं सुख नहीं, कलह दुखन को मूल
> सबै कलह इक राज में, राज कलह को मूल।।''

सावन्तसिंह चित्र के भावों को रंगों तथा रेखाओं के माध्यम से रूप प्रदान करने वाला कलाकार निहालचन्द था।[6] निहालचन्द एक सम्भ्रान्त घराने से सम्बन्ध रखते थे क्योंकि उनके प्रपिता मूलराज सूरध्वज राजा मानसिंह के दरबार में मन्त्री थे। वे कश्मीर से पहाड़ी शैली की छाप अपने साथ लाये थे जिसका प्रभाव किशनगढ़ शैली पर भी पड़ा। निहालचन्द के अतिरिक्त नानगराम चितेरे, छोटू, भैरू, धन्ना, अमरचन्द इत्यादि चित्रकार भी उत्कृष्ट कलाकारों की श्रेणी में ही आते हैं।[7] किशनगढ़ के चित्रण विषय अधिकतर प्रेम प्रसंगों पर ही आधारित हैं। नयनमिलन, नयनठगौरी, जलविहार, राधाकृष्ण श्रृंगार, युगल विहार, लीला हाव-भाव, संयोग श्रृंगार आदि से सम्बन्धित चित्रों का अंकन बड़े ही भावपरक व संवेदनशील बन पड़े हैं।[8] चित्रफलक 18, 29, 35, 49।

राग-रागिनियों का अंकन यद्यपि राजस्थान की अन्य शैलियों में बहुत हुआ परन्तु किशनगढ़ शैली में इस तरह के चित्र न के बराबर प्राप्त होते हैं।[9] चित्रकारों ने परम्परानुकूल श्रृंगारिक भावनाओं को आधार बनाकर चित्र निर्माण में अपनी तूलिका चलायी।

---

1 M.S Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 8
2 A. K. Swamy - *Rajput Painting*, P. 25
3 वाचस्पति गैरोला - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 163
4 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 100
5 आर. ए. अग्रवाल - *भारतीय चित्रकला का विवेचन*, पृ0 111
6 आज, *साप्ताहिक विशेषांक*, 15 फरवरी 1998, पृ0 5
7 पदमश्री रामगोपाल *विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ*, भाग-2, पृ0 18
8 Dr. Jai Singh Neeraj - *Splendour of Rajasthan*, P. 22
9 डा. सुमहेन्द्र - *राजस्थानी रागमाला परम्परा*, पृ0 54

किशनगढ़ शैली में नारी का अंकन विभिन्न रूपों में हुआ है। भारतीय कविता में जहां एक ओर नारी को शाश्वत व आकर्षक रूप प्रदान किया गया है।[1] वहीं दूसरी ओर उसे वेदना की प्रतिमूर्ति भी माना गया है। प्रेम का आधार स्त्री है इसीलिये चित्रों में स्त्रियों का भावनाओं तथा संवेदनाओं से युक्त प्रेमी की ओर जाते हुये कुंजो के मध्य एकान्त में प्रतीक्षा करते हुये या प्रेमी से मिलन के रूप में ही अधिकांशतः अंकन किया गया है। चित्र फलक 27, 32, 35, 38।

नारी अपने मासूम व कोमलतापूर्ण सौन्दर्य से आकर्षित करती है। यही आकर्षण उसके प्यार करने की शक्ति है न कि प्यार किये जाने की, जो कविता या चित्रों में प्रदर्शित हुयी है।[2] यही विचार भारतीय साहित्य परम्परा में भी विश्लेषित हुये जिसमें भानुदत्त की रसमंजरी, केशवदास की रसिकप्रिया, बिहारी की बिहारी सतसई आदि मुख्य हैं।[3] इस चित्रशैली की नारी संस्कृति की प्रतीक राधा अपने पौराणिक सन्दर्भ को वर्तमान से जोड़ती सी लगती है। राधा नामक चित्र में (चित्र फलक 30) किशनगढ़ की आदर्श नारी का सौन्दर्य पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुआ है।[4] कृष्ण की प्रिय बालसखी तथा प्रेमिका राधा शक्तिस्वरूपा भक्ति, प्रेम व निष्ठा की प्रतीक थी। वह आज भी आदर्श नायिका के रूप में मूक सन्देश देती हुयी सी प्रतीत होती है। पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय में इन्हें शक्तिस्वरूपा होने के साथ-साथ राधारानी के रूप में भी मान्यता प्राप्त है, जिसका चित्रण कलाकारों ने अपने चित्रों में बड़े मनोयोग से किया है। कांगड़ा कला के चित्रों ने जिस प्रकार नारी छवि के मनोहर अंकन में अपनी दक्षता का परिचय दिया है उसी प्रकार किशनगढ़ शैली के भी चित्रकारों द्वारा नारी रूप का अद्वितीय अंकन किया गया है। वास्तविकता तो यह है कि किशनगढ़ शैली का मूल्यांकन नारी चित्रों की दृष्टि से ही होता है। नारी सौन्दर्य का जितना भी चित्रण सम्भव हो सकता था, चित्रकारों ने दर्शित किया है।

किशनगढ़ शैली के चित्रों में एक प्रमुख विशिष्टता मुखाकृतियों का अंकन है जो अन्य शैलियों से उसे पृथक करती है।[5] प्रतीत होता है कि किशनगढ़ शैली के चित्रों में नारी मुखाकृति का अंकन सावन्तसिंह की प्रेमिका बणीठणी को मॉडल बनाकर ही किया गया होगा क्योंकि राधा की यह विशिष्ट मुखाकृति, लम्बा मुख,तीखी नुकीली नासिका, लाल अधर, नेत्र कमलपत्र जैसे, चिबुक आकार में छोटी और नुकीली उंगलियां लम्बी, पतली एवं लालित्यपूर्ण हैं। ये कविता तथा साहित्य में वर्णित मुखाकृति पर आधारित नहीं प्रतीत होते हैं क्योंकि काव्य, कविता तथा साहित्य पर आधारित मुखाकृतियों का अंकन इतना रूढ़िगत व सामान्य है कि इनके आधार पर विशिष्ट मुखाकृति का चित्रण नहीं हो सकता है।[6] चित्र फलक 11, 30, 44, 45, 46, 47। यदि होता तो इसी मुखाकृति को हम पुनः अन्य राजस्थानी शैलियों तथा पहाड़ी शैलियों के चित्रांकन में पाते जिसने इस भक्ति परम्परा से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखा

---

1 A.K.Swamy - *Rajput Painting*, P. 30

2 *Krishna the Devine Love Myth & Legend through The Indian Art*, P. 20

3 सुरेन्द्रसिंह चौहान - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 177

4 *आज, साप्ताहिक विशेषांक*, 15 फरवरी 1998, पृ0 5

5 Dr. Sumhendra - *Splendid Style of Kishangarh Painting*, P. 40

6 Krishan Chaitanya - *A History of Painting, Rajasthan Tradition*, P. 124

था।[1] सावन्त सिंह व बणीठणी का चित्र फलक 28 भी इसी परम्परा की ओर संकेत करता है कि किशनगढ़ शैली में राधा की विशिष्ट मुखाकृति के अंकन मे बणीठणी के रूप को आदर्श प्रतिमान बनाया गया होगा।[2] राधा की मुखाकृतियों के आधार पर ही कृष्ण की मुखाकृतियों का भी अंकन हुआ।[3] मुखाकृति अंकन के उपरोक्त सभी लक्षण भारतीय चित्रांकन की परम्परा की निरन्तरता को दर्शाते हैं। पांचवी शताब्दी ई0 पू0 के केन्द्रीय स्कूल आफ मालवा, बनारस, मथुरा और गान्धार क्षेत्र के बुद्ध एवं बोधिसत्व के मुख पर इसी कमलपत्र के सदृश नेत्र दिखायी पड़ते हैं।[4] बनारस शैली मे अंकित बुद्ध के चित्र में ओष्ठ का अंकन धनुषाकृति के रूप मे हुआ है। अजन्ता के चित्रांकन में विशेषकर पद्मपाणि बोधिसत्व के आकार में भी यही विशेषता मिलती है। पूर्वी भारत में मथुरा एवं बनारस शैली में यही विशेषता बारहवीं शती ई0 पू0 तक लगातार चलती रही। प्रो0 डिकिन्सन इसे भारतीय कलाकारों व मूर्तिकारों की एक अभूतपूर्व परम्परा मानते हैं।[5]

लम्बे उठे खंजनाकृति वाले नेत्र, तीखी लम्बी नाक, उसमें लटकता बेसर या नथ त्रिकोणाकार, पतले ऊपर की ओर खिंचे अधर, छोटी व आगे निकली हुयी चिबुक, चौड़ी कनपटी, माथे पर शीशफूल, कान के समीप लहराती बालों की लट, कटिप्रदेश तक लहराते बाल, लम्बी ग्रीवा में अनेक मोतियों की मालायें, एक हाथ में पारदर्शक नीले आंचल का पल्ला पकड़े तथा दूसरे हाथ में कमल की पंखुड़ी पकड़े नागरीदास की प्रेमिका का यह चित्र विश्व प्रसिद्ध हो चुका है।[6] यूरोप मे मोनालिसा के चित्र को जो लोकप्रियता प्राप्त है वही गौरव राजस्थानी शैली में बणीठणी के चित्र को प्राप्त है।[7] यह बणीठणी की सुन्दर मुखाकृति व नेत्रो का ही जादू था जिसके कारण उसका चित्र सारे जगत में विख्यात हो गया। ऐसे नेत्रों का वर्णन सावन्तसिंह ने अपनी रचना इश्क चमन में इस प्रकार किया है[8] -

"क्यों सुरझे आरस भरे नैनानि उरझे नैन
नागरिया हिय में बसों यह रूप रस नैन। "

जिन नेत्रों का उन्होने विविध रूप में सरस वर्णन किया है। निश्चित रूप से उन नेत्रों का साक्षात्कार बणीठणी में किया होगा और यही नेत्र उनके साहित्य कला के स्रोत बने होंगे। चित्रफलक 18 में अंकित राधा-कृष्ण के नेत्र इस वाक्य को शब्दशः सत्यरूप में प्रकट कर रहे हैं। नागरीदास द्वारा बनाये गये कुछ रेखाचित्रों से यह स्पष्ट होता है कि वे स्वयं नेत्रों के अंकन पर नये-नये प्रयोग करते रहते थे। निः सन्देह वे पारम्परिक चित्रण से सन्तुष्ट नहीं थे।[9] चित्रों में खंजनाकृति वाले ये विशाल तथा काजल की गहरी कालिमा से अधिक स्पष्ट हुए दीर्घ नेत्र मादकता का भाव लिये चित्रित किये गये हैं। चित्रफलक 18, 30, 55 61, । किशनगढ़ के चित्रों में नेत्र एक मुख्य विशेषता है जो अन्य राजस्थानी शैलियों में नहीं पायी जाती है जिससे किशनगढ़ शैली के चित्र स्वतः ही अन्य शैलियों से विलग हो जाते हैं।

1 Krishan Chaitanya - *A History of Painting, Rajasthan Tradition*, P. 124
2 M.S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 8
3 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme In Rajsthani Miniature*, P. 77
4 Rooplekha, Vol. XXV, Part I, Banerjee - *Kishangarh Painting*, P. 24
5 वही, पृ0 24
6 *पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ*, भाग-2, पृ0 179
7 आज, *साप्ताहिक विशेषांक*, 15 फरवरी 1998, पृ0 5
8 डा. फैयाज अली खान - *भक्तवर नागरीदास* (अप्रकाशित शोध ग्रन्थ), पृ0 8
9 Krishan Chaitanya - *A History of Painting, Rajasthan Tradition*, P. 125

नेत्र व गुखाकृति के अंकन के साथ नारी आकृतियों का अंकन भी किशनगढ़ शैली की अपनी मौलिक विशेषता है। स्त्री आकृतियों को विशेष रूप से बहुत कोमलांगी और लतिका के समान लचकदार, पतली, लम्बी और छरहरे शरीर वाली बनायी गयी है। जैसा कि चित्र फलक 44, 50, 60 आदि में अभिव्यंजित हो रहा है। उन्नत किन्तु उठे हुये अर्द्धविकसित वक्षस्थल, अत्यन्त क्षीण कटि, लम्बी पतली लयात्मक उगंलियां, पैरों को छुपाये लहंगा किशनगढ़ की नारी का कनक हरी कामिनी वाला रूप नेत्रों के समक्ष उपस्थित कर देता है।[1] चित्र फलक 30, 44, 45, 46, 47, 61, 63, 66 इत्यादि चित्रों में नारी के आदर्श रूप का अंकन मिलता है। चित्र फलक 60 में नायिका को स्नान के पश्चात् एक छोटी चौकी पर खड़े गीले बालो को सुलझाते हुये अंकित किया है जिसमें से पानी की बूंदें टपक रही हैं। नायिका को लम्बी छरहरी लतिका के समान लचकदार अंकित किया गया है। हाथ पैरों में आल्ता, घनी केश राशि जो कमर से नीचे तक चित्रित की गयी है। स्वाभाविक रूप से अर्द्ध विकसित वक्ष, कपोलों पर लहराती अलक, उन्नत ग्रीवा, सुडौल शरीर नारी आकृति की विशेषताओं को पूर्णतया प्रदर्शित कर रहे हैं।[2]

स्त्री आकृति की ही भॉति पुरूष आकृति भी सर्वोत्कृष्ट भारतीय कला परम्परा के अनुसार ही है।[3] उनके कन्धे शक्तिशाली एवं लचीले हैं। चौड़ा वक्ष नीचे क्षीण कटि में परिवर्तित हो जाता है। चित्रफलक 12, 15, 18, 19, 20 इत्यादि चित्रों में पुरूष के इसी रूप की अभिव्यक्ति मिलती है। इस तरह की चित्राभिव्यक्ति प्राचीन काल में बोधिसत्व बुद्ध एवं तीर्थंकर के चित्रों में भी प्रयुक्त हुयी है।[4] जटाजूट की तरह ऊपर की ओर उठी मोती की लड़ियों से युक्त श्वेत मूंगिया पगड़ी, समुन्नत ललाट, लम्बी नासिका, मधुर स्मित से युक्त पतले अधर, खंजनाकृति वाले नेत्र, लम्बी सुराहीदार गर्दन आदि का अंकन पुरूषाकृति में देखने को मिलता है।[5] चित्र फलक 12, 15, 18, 23, 50 इत्यादि । राधाकृष्ण की मुखाकृतियो मे जो समानता दिखलामी पड़ती है सम्भवतः कलाकारों ने अभ्यासवश ही किया होगा।[6]

राधाकृष्ण के युकोमल भावों को चित्रित करने में किशनगढ़ के कलाकारों ने अद्वितीय दक्षता हासिल की है जो कॉंगड़ा शैली की विशेषता के ही समान है।[7] यद्यपि कलाकारों ने खुशी, उल्लासपूर्ण व प्रेम आसक्ति आदि भावों का ही प्रायः चित्रण किया है परन्तु क्रोध, दुख, शान्ति, लज्जा आदि भावों की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति भी यहां के चित्रों में दृष्टिगोचर होती है।[8] राधा को पान पेश करते हुये चित्र फलक 32 में राधा का शान्त, सौम्य

---

1 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme in Rajsthani Miniature Painting*, P. 77
2 *Indian Miniature Painting*, P. 112
3 Rooplekha, Vol-XXV, Part I, Banerjee - *Kishagarh Painting*, P. 24
4 Krishan Chaitanya - *A History of Painting, Rajasthan Tradition*, P. 15
5 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 2
6 Anjana Chakrawarti - *Indian Miniature Painting*, P. 69
7 वहीं, पृ0 69
8 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 10

और पारलौकिक सौन्दर्य कृष्ण के मुखाभाव से बहुत साम्य रखता है। माला पहनाते समय रुक्मिणी के मुख पर मृदुल प्रेम तथा प्रेमिका का समर्पित भाव (चित्र फलक 42) 'कुन्दनपुर में पड़ाव' नामक चित्र में (चित्र फलक 2) दोनों बन्धुओं के मुख पर गम्भीर भाव तथा 'राधा-कृष्ण ग्वालिनों के साथ' (चित्र फलक 32) ग्वालिनों के मुख पर अनन्य भक्ति भाव तथा राधा के मुख पर लज्जा के भाव दर्शनीय हैं।[1] चित्रों में मुखाकृतियों की मुद्राओं और उनकी भंगिमाओं से उनके मनोभाव इतने स्पष्ट रूप से मुखरित हुये हैं कि चित्र की घटना का विवरण बिना बताये ही समझ में आ जाता है। निःसन्देह किशनगढ़ शैली के चित्र भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अतिविशिष्ट हैं।[2]

परम्परागत शैली में निर्मित इन चित्रों में पाया जाने वाला अलंकरण एक प्रमुख गुण है।[3] वस्त्रों की सज्जा, पगड़ी तथा पटकों का अलंकरण व आभूषणों का अंकन चित्रकारों ने अत्यन्त कुशलता से किया है। मोती की माला में लड़ों को क्रीम रंग या हल्के सफेद रंग के नन्हें बिन्दुओं से चित्रित किया है जो राजस्थानी शैली की ही विशिष्टता है।[4] जिसे बसोहली शैली ने भी अपनाया है। अलंकारों की अधिकता, यौवन तथा लावण्य की अत्यधिक व्यंजना यहां के चित्रकारों की प्रिय अभिव्यक्ति है। चित्र फलक 46, 47, 53 इत्यादि। फूलों एवं अलंकारों से सुसज्जित वणीठणी का रूप सौन्दर्य मानव मन को ऐसे कल्पनालोक में ले जाता है जहां रस की अनुभूति होने लगती है।[5] (चित्र फलक 30)

किशनगढ़ शैली में पुरुषों की वेशभूषा में अधिकतर पारदर्शक घेरदार जामा,जामे के अन्दर पैरों में चुस्त पायजामा, कटि में अलंकृत पटका, सिर पर विभिन्न रत्नों से अलंकृत पगड़ी तथा पैरों में जूतियों का अंकन हुआ है।[6] महाराजाओं व मुख्यनायक (कृष्ण) को सफेद रंग का जामा पहने चित्रित किया गया है। चित्र फलक 9, 10, 15, 20, 24, 34, 55।

महाराजाओं को तलवार या कटार लिये चित्रित किया गया है। कहीं-कहीं पर तलवार और ढाल लटकाये हुये भी चित्रित किया है। सम्भवतः यह राजपूतों की वीर पूजा की भावना का परिणाम है।[7] स्त्रियों के परिधान में अधिकांशतः लहँगा-चोली तथा पारदर्शी दुपट्टे का अंकन है। कम से कम रेखाओं में अंकित वस्त्रों की सिलवटें उस पर अंकित सुवर्ण आलेखन व बूटियों का अंकन वस्त्रों की शोभा को द्विगुणित कर देता है। चित्र फलक 11, 18, 20, 30, 46, 47।

---

1 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 30
2 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P. 61
3 M.M. Deneck - *Indian Art*, P. 27
4 Rooplekha, Vol-XXV, Part I, Banerjee - *Kishangarh Painting*, P. 22
5 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 2
6 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme in Rajasthani Miniature Painting*, P. 77
7 रामनाथ - *भारतीय कलायें और उनका विकास*, पृ0 20

चित्रों में प्रयुक्त रंग योजना सजीव एवं आकर्षक है। ''द्युति ज्यों तन मोती सांवल गौर शरीर'' शारीरिक रंग योजना के अनुकूल वर्णन हुआ है। राधाकृष्ण के सुकोमल भावों को चित्रित करने के लिये कलाकारों ने अधिकतर हल्के रंगों का प्रयोग किया है।[1] वास्तव में निहालचन्द रंगों के चयन में प्रकृति वस्त्राभूषण, मानवशरीर, स्थापत्य आदि उपकरणों से प्रेरित हुये हैं।[2] श्वेत व गुलाबी रंगों का प्रयोग चित्रों में एक अद्भुत एवं आकर्षक प्रभाव पैदा करने में समर्थ हुआ। अन्य रंगों में गहरा नीला, हरा तथा स्लेटी प्रमुख हैं।[3] चित्र फलक 13, 15, 20, 50।

प्रकृति के अद्भुत संगीतमय खूबसूरती का सूक्ष्म निरीक्षण एवं अध्ययन करने की ऐसी प्रतिभा निश्चित रूप से कलाकारों के मौलिक चिन्तन को परिलक्षित करती है।[4] चित्रों में प्रकृति व मानव के रागात्मक सम्बन्धों का कलात्मक स्वरूप दृष्टव्य होता है। प्रकृति की मनोहारिणी छटाओं को कलाकारों ने अपनी कला कृतियों में उतारने का प्रयास किया है, जिसमें एक विशेष प्रकार की रूमानियत है और एक शान्त एवं धीर गम्भीर सौन्दर्य है। यही हमें कांगड़ा शैली की विशुद्ध शास्त्रीय गुणवत्ता की याद दिलाता है। किशनगढ़ के कलाकारों ने जैसा इन लालित्यपूर्ण सुन्दर जीवन्त प्राकृतिक दृश्यों का अंकन किया है वैसा अन्य शैलियों में दुर्लभ है। ये प्राकृतिक दृश्य जीवन से भरपूर हैं क्योंकि इनमें दिव्य प्रेमी युगल का समागम है।[6] इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि वे प्रकृति चित्रण के अंकन में सिद्धहस्त थे। इन चित्रों के कलाकार समस्त राजपूत कला की विरासत के प्रतीक थे। वे अपने पूर्वजों से रंग योजना के क्षेत्र मे और इन नियमों या सिद्धान्तों को सफलता से प्रतिपादित करने में भी बहुत आगे थे।[7]

वास्तव में चित्रित परिदृश्यों का अंकन आकृतियों के भावों को व्यक्त करने के लिये प्रतीक रूप में हुआ है जैसे प्रेमीयुग्म के खिले हृदय तथा प्रेम की सुगन्ध के प्रतीक रूप में उद्यान में खिले पुष्पों का चित्रण किया गया है। चित्र फलक 33, 52। यदि कोई नायक अथवा नायिका विरह वेदना से पीड़ित है तो उसके दुख से दुखी निम्नोन्मुख पत्तियों तथा वृक्षों का चित्रण हुआ है। बसन्त की अभिव्यंजना के लिये परिपक्व आम्र फलों से नत वृक्षों का प्रयोग किया गया है। रतिभाव को व्यक्त करने के लिए सुगन्धित द्रव्य वाली शीशी, वृक्षों से लिपटी लतरे, सरोवर में उर्ध्व या निम्नोन्मुखी सारस युग्म का यत्र-तत्र प्रयोग मिलता है। नदी की रूपहली सतह पर तैरती नौकायें दृष्टिगोचर होती हैं। उद्यान में स्थित पुष्पों तथा फलों से आवृत वृक्ष जिनमें केले, सरो, पीपल, कदम्ब के वृक्ष हैं जो उपवन की शोभा को अनुपम रूप प्रदान करते हैं। नदी के उस पार वृक्षों के झुरमुटों में दूर तक

---

1 अविनाश बहादुर वर्मा - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 210
2 Philip & Rowson - *Indian Painting*, P-28
3 राजस्थान वैभव *श्रीरामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ*, पृ0 96
4 डा0 पुष्पलता-*रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन*, पृ0 156
5 *Indian Miniature Painting*, P 97
6 Anjana Chakrawarti - *Indian Miniature Painting*, P. 69
7 Pratapaditya Pal - *The Classical Tradition in Rajput Painting*, P. 40

विस्तृत फैले हुये महलों व भवनों का सुन्दर अंकन मिलता है। आसमान मे डूबते सूरज की लाली आदि से युक्त चित्रों की पृष्ठभूमि अत्यन्त आर्कषक दृश्य उपस्थित करती है।[1] नदी व झरने के जल को प्रायः नीले रंग से वर्णित किया गया है परन्तु मौसम के अनुसार उनका रंग सुनहरा, पीतवर्णी, कहीं रुपहला और कहीं स्याह है। आकाश के अंकन मे विविधता दृष्टिगत होती है। हल्के नीले आकाश के अतिरिक्त उषाकालीन रक्ताभ आसमान से लेकर रात्रि की कालिमा से युक्त आकाश का चित्रण मिलता है।[2] आकाश के चित्र में विशेषकर श्याम रंग या धूसर रंग के बादलों का गोलाकार स्वरूप देखने को मिलता है तो कहीं -कहीं सपाट एकरंगी आसमान दृष्टिगोचर होता है।

पृष्ठभूमि में पशु-पक्षियों का चित्रण अनिवार्य रूप से हुआ है। परिदृश्यों से सम्बन्धित पशु-पक्षियों का चित्रण जहां भी हुआ है वह चित्रकार की भावनात्मक सूझबूझ का ही परिणाम है। आकाश मे डैने फैलाये जलविहार करते हुये तथा अग्रभूमि में तथा नायक नायिकाओ के पास पशु-पक्षियों का चित्रण मनोहारी प्रतीत होता है। चित्र फलक 27, 33, 37, 39, 40, 64। मानव के साथ पशु-पक्षियों के सम्बन्धो को कलाकार ने रंगों, रेखाओं द्वारा बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त किया है।[3] रेखाये उनकी गति व लय को दर्शाती है। वास्तु संरचना से युक्त पृष्ठभूमि का अंकन अतिविशिष्ट है। चित्रों में प्रायः महल के वाह्य भाग अथवा एक भाग ही दृष्टिगत होते हैं। चित्र फलक 2, 28, 31 । कुछ चित्रों में भवनों के भीतरी भाग का भी चित्रण मिलता है। भवनों को श्वेत वर्ण से ही प्रदर्शित किया गया है।[4] सम्भवतः ऐसा इसीलिए कि उस समय संगमरमर का अभाव था या फिर विशालता का अनुभव कराने की दृष्टि से श्वेत वर्ण का प्रयोग किया गया है।[5]

पृष्ठभूमि मे चित्रित भवनों, वृक्षों तथा पक्षियों के अंकन की बहुलता इसे जोधपुर शैली के निकट ले जाता है।[6] जोधपुर के राजाओं की कलाप्रियता का प्रभाव यहां के शासकों पर पड़ा था। अतः कला शैली का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। काँगड़ा प्रान्त जोधपुर के निकट था, अतः सम्भव है कि उसका प्रभाव यहां तक भी हुआ हो। किशनगढ़ शैली के चित्र साहित्यिक दृष्टि से काँगड़ा शैली के चित्रों के समकक्ष रखे जा सकते हैं। कांगडा व किशनगढ़ शैली के चित्रों में साहित्य का जो सफल आधार प्राप्त होता है वह अन्य किसी शैली मे नहीं प्राप्त होता है।[7]

किशनगढ़ शैली में ग्रामीणीय दृश्यों के स्थान पर प्रासाद, राजभवन व महल आदि तथा सुनियोजित ढंग से बने उद्यानों के दर्शन होते हैं। शोखरंगी चोलियां, चुनरी, कोमल झीने मलमल, रेशम व किमखाब के लहंगे तथा जामें, मसनदें, मखमल के भारी पर्दे जिसमें जरी के बार्डर का अंकन होता था तथा विभिन्न बहुमूल्य आभूषणों का अंकन किशनगढ़ शैली के चित्रों मे खूब हुआ है। इन तत्वों से युक्त वातावरण

---

1 सुरेन्द्रसिंह चौहान- *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 99
2 कुंवर संग्राम सिंह- *राजस्थान की लघुचित्र शैलियाँ*, पृ0 28
3 बी. एम. दिवाकर- *राजस्थान का इतिहास*, पृ0 357
4 R.K.Tandon- *Indian Miniature Painting*, P. 41
5 Pratapditya Pal - *Court Painting of India*, P. 60
6 राजस्थान वैभव *श्रीरामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ*, भाग- 2, पृ0 4
7 *Indian Minture Painting*, P. 98

हमारी दृष्टि के समक्ष विलासिता, शान-शौकत, उल्लास और मध्ययुगीन राजपूती दरबार की चमक-दमक को प्रस्तुत करते हैं। जिसके बीच सीधे-सादे ग्वालकुमार व उसकी बाँसुरी को किशनगढ़ के चित्रकारों ने कम ही चित्रित किया है।[1] कलाकारों ने कृष्ण को राजकुमार के रूप में तथा राधा को राजकुमारी के रूप में ही चित्रित करने में विशेष रुचि ली। यहां के चित्रों में राजा सावन्तसिंह का दासी बणीठणी के साथ प्रेम का प्रतीकात्मक चित्रण खूब हुआ है। उन दोनों को राधाकृष्ण के रूप में ही दिखाया गया है।[2]

प्रारम्भिक राजपूती कला के रंग जहाँ बहुत चटक तथा हाव-भाव प्रबल हैं वहीं किशनगढ़ शैली के चित्र अपनी लयात्मक कोमल रेखांकन, बारीकी से किया गया। अलंकरण आकर्षक व नियंत्रित रंग-योजना के कारण अन्य शैलियों से भिन्न दिखायी पड़ते हैं। ये चित्र दृष्टि के समक्ष भड़कीलापन या धाराप्रवाह वेग की प्रस्तुति नहीं करते हैं वरन् ये उस शान्त सूर्य के समान हैं जो नेत्रों के समक्ष एक अलौकिक सौन्दर्य प्रस्तुत करता है। चित्रों में चित्रित आकृतियां एक ऐसा आदर्श रूप उपस्थित करती हैं जो मानव मन को उड़ाकर ऐसे कल्पनालोक मे ले जाती है जहां मनुष्य मन की भावनायें निहित होती हैं । ये आकृतियां साधारण लोगों की प्रतिकृति या साधारण वैभव का द्योतक नहीं है वरन् ये आकृतियां तो दैवीय वैभव की द्योतक हैं।[3]

प्राचीन भारतीय चित्र परम्परा में चित्रकार द्वारा सौन्दर्य को जानने की मुख्य परिपाटी बौद्धिक रही है। चित्रकारों ने प्रत्येक चित्र को सौन्दर्ययुक्त बनाकर आनन्द को प्राप्त करने का माध्यम माना है तथा आनन्द द्वारा परमात्मा को प्राप्त करने की प्रवृत्ति चित्रकार की आध्यात्मिक रुचि को प्रदर्शित करती है। परमात्मा को शक्ति स्तम्भ माना है। ये स्तम्भ कभी क्षीण, जर्जर और शीर्ण नहीं होते। प्रेम व आनन्दमूलक जीवन दृष्टि चित्रकर्म यात्रा मे वह अमृत भाव है जो चित्रकार की संजीवनी बना हुआ है। आह्लाद प्रेम का यह भाव जोधपुर के भित्तिचित्रों में भी प्रदर्शित है। चित्रकारों ने चित्रों में इसी प्रकाश, ज्ञान, अन्तः प्रेरणा व प्रतिमा को भित्ति पर संयोजित किया है। रंग एवं रेखा के कलात्मक प्रयोग से चित्रों में आनन्दमयी गंगा को प्रवाहित किया गया है।[4] अपनी सुन्दर भावाभिव्यक्ति और सुदीर्घ कलेवर के बाद भी किशनगढ़ में बनी लघुचित्रों की संख्या अधिक नहीं है, फिर भी अपनी तमाम विशिष्टताओं के कारण एक स्वतन्त्र और महत्वपूर्ण शैली के रूप में जानी जाती है। किशनगढ़ महाराज के निजी संग्रहालय, दिल्ली संग्रहालय, भारत कलाभवन वाराणसी इत्यादि स्थानों पर इस शैली के चित्र संग्रहीत हैं। किशनगढ़ शैली के चित्र रहस्यमयी कल्पनाओं के अमूर्त स्वप्न से प्रतीत होते हैं। किशनगढ़ शैली ने जहां राजस्थानी शैली की महानता की स्थापना में कुछ नवीन योगदान दिया है, वहीं भारतीय चित्रांकन की परम्पराओं में तारतम्य बनाये रखने में भी अमूल्य योगदान दिया है।

---

1 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P. 82

2 वहीं, पृ0 83

3 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 2

4 राजस्थान पत्रिका, पृ0 17, मई 1995

मानव स्वभाव से ही अपने विचारों तथा भावों को दूसरे तक पहुँचाना चाहता है और दूसरे के विचार एवं भावों को जानने व समझने के लिये सदैव उत्सुक रहा है। मानव जो कुछ सोचता, समझता या कल्पना करता है उसे ही चित्रांकन एवं प्रतीकात्मक संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है।[1] प्रेम, दया, करुणा, द्वेष, घृणा आदि मनोविकारों को चित्रित करने में उसे एक प्रकार का सन्तोष अथवा आनन्द का अनुभव होता है। यह अनुभूति ही सभी ललित-कलाओं के संवेदनीय अभिव्यक्ति का मूल है।[2] प्रारम्भ से ही आदिम वर्बर जातियों ने अपने विचारों, कल्पनाओं, आकांक्षाओं तथा भावनाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। चाहे वह संगीत व नृत्य के माध्यम से रहा हो, चाहे चित्रकला के माध्यम से। मानव अपनी अभिव्यक्ति को सौन्दर्य चेतना के सहारे और सुन्दर बनाने का प्रयास करता है।[3] चित्रकला के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति मानवीय अभिव्यक्ति के प्रयत्नों में काफी प्राचीन रही है। संगीत, नृत्य व काव्य के समान चित्रकला में भी भावों का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है।

वास्तव में मानसिक विकारों को ही भावों की अभिधा प्रदान की जाती है। हृदय भावनाओं का एक ऐसा कोष है जिसमें सामान्यतः नित नये भाव जन्म लेते और विलीन होते रहते है और जिनको हम हर्ष, क्रोध, भय, घृणा आदि के रूप में अनुभव करते है। कुछ भाव ऐसे भी है जिनकी स्थिति नित्य मानी गयी है। वे स्थायी भाव के अन्तर्गत है।[4] ये भाव हैं रति, शोक, भय, उत्साह, क्रोध, जुगुप्सा, हास, विस्मय, निर्वेद आदि नौ स्थायी भावों को प्रमुख रूप से साहित्य शास्त्रियों ने माना है।[5] अमरकोष में मन के विकारों को भाव कहा गया है। ''विकारो मनसो भावः'' निर्विकार चित् की बाह्य संवेदनों की संहति में होने वाली विकृति ही भाव है जो वाणी तथा मुख अभिनय द्वारा प्रकट होता है।[6]

मनोवैज्ञानिक भाषा में भाव को किसी वासना (सहजप्रवृत्ति) के चारों ओर केन्द्रित रहने वाला मनोविकार माना गया है।[7] भाव के दो पक्ष माने गये हैं मानसिक पक्ष तथा शारीरिक पक्ष। मानसिक पक्ष आत्म चेतना अर्थात अन्तर्मन की अनुभूतियों से सम्बद्ध है और शारीरिक पक्ष बाह्य अभिव्यक्ति से जुड़ा हुआ है अर्थात स्नायु तथा पेशियों में परिवर्तन होने पर शरीर में विकार उत्पन्न होते है। इस प्रकार के मनोवेग के तीन स्तर होते हैं[8] :-

1 उत्तेजित करने वाला कारण
2 मानसिक प्रभाव
3 शारीरिक प्रभाव या शारीरिक चेष्टाओं में परिवर्तन

---

1 वासुदेव शरण अग्रवाल - *कला व संस्कृति*, पृ0 240
2 रामदहिन मिश्र- *काव्यदर्पण*, पृ0 52
3 वही, पृ0 53
4 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 177
5 डा. सरन सकसेना एवं डा0 सुधासरन-*कला सिद्धान्त और परम्परा*, पृ0 77
6 डा. जगेश्वर प्रसाद मिश्र - *रीतिकालीन श्रृंगारिकता एवं ललित कलायें*, पृ0 35
7 डा. नगेन्द्र - *रस सिद्धान्त*, पृ0 46
8 डा. उमा मिश्र - *काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध*, पृ0 21

भारतीय काव्यशास्त्र मे इन्हें कमशः विभाव, स्थायी भाव तथा अनुभव कहा जाता है।[1] रीतिकालीन आचार्यो ने भी मानसिक विकार या वासना को ही भाव कहा है[2] -

> ''मनविकार कहिभाव सो, वरन बासना रूप।
> विविध ग्रन्थ करता कहत, ताकौ रूप अनूप।''
>
> -चिन्तामणि

मानव हृदय में वस्तुगत आकर्षण एवं आध्यात्मिक अभिचेतना के सूत्र में जो तल्लीनता पायी जाती है, वह अनेक मनोविकारों के जन्म का आयाम बनती है और ये मनोविकार विभिन्न भावो के उद्दीपनकारक बन रस अवस्था को प्राप्त होते हैं। जहां सामाजिक मनुष्य स्वयं को विस्मृत करके उसमें एकीकरण को प्राप्त हो जाता है, वही रस की अवस्थिति मानी गयी है। समय-समय पर यह सरसता अनेक रूपों में प्रकट हुयी है। कभी कवि की कविताओं में तो कभी चित्रकार के चित्रों में तो कभी मूर्तियों में एवं शिल्पियों के निर्माण कौशल में। बौद्ध कालीन सम्राटों के आश्रय में रहने वाले कलाकारों ने चित्र प्रतिमा, चैत्य, देवालय, स्तूप, प्रासाद आदि के रूप में एक ऐसी मनोहर कला को जन्म दिया जो आज भी आकर्षण का केन्द्र है। अजन्ता की कला मण्डित गुफायें आज भी इतिहासकारों व विद्वानों को प्रभावित करती हैं।[3]

कला व आनन्द का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। लेकिन वह अभिव्यक्ति यदि वासनाओं से दूषित हो तो वह कला नहीं है। यद्यपि कला का एकान्त उद्देश्य आनन्द प्राप्त करना ही होता है। लेकिन उस आनन्द के परिणाम पर ही कला की सफलता तथा असफलता अवलम्बित है।[4] सच्चा कलाकार वही माना जाता है जो अपना लक्ष्य कृतियों के माध्यम से आनन्द प्रदान करना मानता है। चित्रसूत्रकार ने चित्र की विशेषता स्थान तथा रस बताकर स्पष्ट किया है कि इनसे विहीन चित्र गर्हित होता है[5] -

> ''स्थानहीन गतरसं शून्य दृष्टिमलीमतम्
> चेतनारहितं व स्यान्तदशस्तं प्रकीर्तितम्।''

भारतीय चित्रकारों की यह विशेषता उनकी अपनी मौलिक विशेषता है।[6] अबुल फजल ने भी अकबर के विचार अपने ग्रन्थ में इस तरह प्रकट किये 'चित्रकला युक्ति और ईश्वर सानिध्य प्राप्त करने का एक मुख्य साधन है।'

---

1 प्रो. विश्वनाथ प्रसाद-*कला व साहित्य प्रवृत्ति और परम्परा*, पृ0 21
2 डा. पुष्पलता - *रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसईयों का तुलनात्मक अध्ययन*, पृ0 45
3 Stella Kramrisch - *The Art of India*, P.30
4 डा. सुधासरन तथा सरन सक्सेना - *कला सिद्धान्त और परम्परा*, पृ0 78
5 चित्रसूत्र 43, 23
6 श्री गोपाल नेवारिया - *भारतीय कला*, द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ0 489

चित्र में चार तत्व प्रमुख होते हैं-चिन्तन, अनुभूति, कल्पना तथा अभिव्यंजना। काव्य में भी लगभग यही तत्व विद्यमान होते हैं परन्तु चित्रों की अभिव्यंजना पद्धति काव्य की अभिव्यंजना पद्धति से भिन्न होती है। काव्य के भाव शब्दों में अंकित होते हैं जबकि चित्रों में दिये भावों को व्यक्त करने में रंग तथा रेखायें अपने विभिन्न गुणों के कारण कई प्रकार से रसात्मक प्रभाव डालते हैं।[1] चित्रकला तथा काव्य दोनों में भाव की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण है। यह एक तरह से काव्य तथा चित्रतत्व की मुख्य धुरी है। चित्रों में यदि भावों की अभिव्यक्ति न हो तो वे रंगों व रेखाओं के होते हुये भी निष्प्राण लगेंगे। इसी प्रकार काव्य में भावों की अभिव्यंजना नहीं है तो वे केवल शब्द मात्र होंगे, जिनका कोई अर्थ नहीं होगा। काव्य को पढ़ने से या सुनने से जिस प्रकार रसानुभूति होती है उसी प्रकार चित्रों को देखने से मन में रसोद्रेक होता है। कला कोई भी हो कलाकार अनुभूतियों को साकार रूप देने के लिये चित्र योजना से काम लेता है। भावों की अभिव्यंजना कला का साध्य है। इसीलिये कलाकार अभिव्यक्ति के विभिन्न साधनों के माध्यम से ही भावों को प्रकट करने का यथासाध्य प्रयत्न करता है।[2] जिस तरह काव्य में भाव तथा रस का अलग-अलग महत्व है, उसी भांति चित्रकला में भाव चित्र तथा रसचित्रों का अलग-अलग विधान है। यहां कलाकार ऐसी वस्तुओं का चित्रण करता है जो मन में कोई भाव उठाने या उठे भावों को जगाने में समर्थ होती है। वहीं कवि उन वस्तुओं के अनुरूप भावों के अनेक स्वरूपों को अंकित करने का प्रयास करता है। इस प्रकार कवि तथा चित्रकार के कर्म विधान के दो पक्ष होते हैं-विभाव पक्ष तथा भाव पक्ष। काव्य तथा चित्रकला दोनों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है । जहां एक पक्ष का अंकन होता है वहां दूसरा पक्ष भी अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है।[3] किशनगढ़ के चित्र बहुधा कवित्त पर ही आधारित हैं।

भाव व रस सम्बन्ध सदैव से प्रमाणित हैं क्योंकि सभी कलायें आनन्द की द्योतक है। सूक्ष्म से स्थूल तक सभी कला विधाओं में शब्द, स्वर, वर्ण, आकारों तक जाते हुए कोई भी व्यक्ति आनन्द का अनुभव करता है । किसी भी दशा में चित्र काव्य से अधिक संवेदनशील हैं क्योंकि चित्र में दृश्य की प्रत्यक्ष अनुभूति नेत्रों के माध्यम से मन पर सीधा प्रभाव डालती है। रस की उत्पत्ति भावों से होती है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में रस और भावों की अभिन्नता प्रतिपादित की है[4]--

''न भाव हीनेस्ति रसो न भावो रस वर्जितः।''

विभाव और अनुभाव के बिना स्थायी भाव, रस की स्थिति को प्राप्त नहीं हो सकता है। भरतमुनि के अनुसार [5] -

''विभावानुभावा व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।''

---

1 डा. जनेश्वर प्रसाद मिश्र - *रीतिकालीन श्रृंगारिकता एवं ललितकलायें,* पृ0 43

2 डा. पुष्पलता - *रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसईयों का तुलनात्मक अध्ययन,* पृ0 125

3 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य,* पृ0 177

4 रामचन्द्र शुक्ल - *सूरदास,* पृ0 152

5 डा. नगेन्द्र - *रससिद्धान्त,* पृ0 35

अर्थात विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो के संयोग से ही स्थायी भाव रस दशा को प्राप्त होते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावो से पुष्ट होकर ही स्थायी भाव रस अवस्था को प्राप्त होते हैं।[1] रीतिकालीन कवियों ने स्थायी भाव को प्रत्येक व्यक्ति के अन्तरस्तल मे सदैव बीजरूप में विद्यमान माना है इसलिये समस्त भावों में इन भावों को ही प्रमुख माना है।[2]

> ''नायक सब ही भाव कौ, टारै टरै न रूप
> तासौ थाई रूप कहि बरनत है कवि।''
> -भूप-रसपीयूषनिधि

इस प्रकार रस के आधार स्थायी भाव ही हैं। रस को स्थायी भाव की परिपक्व अवस्था माना गया है। भाव हृदय के विकार हैं और हृदय उस समुद्र के समान है जिसमें वायु के वेग से अनेक लहरें उत्पन्न होतीं और विलीन होती रहती हैं। उसी प्रकार वातावरण आदि के प्रभाव से हृदय में भी अनेक प्रकार के भाव जन्मते और विनष्ट होते रहते हैं। यही स्थिति भावों को जन्म देती है। मध्ययुगीन कला व काव्य दोनो में ही श्रृंगार रस की ही प्रधानता दिखायी पड़ती है। श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति व इसका संचारी भाव ही कवियो को अधिक प्रिय रहे हैं।[3] राजस्थान की सभी शैलियों में श्रृंगार भाव प्रमुख रूप से मिलता है विशेषकर किशनगढ़ शैली में। चित्रकारों ने अपने संरक्षकों की इच्छाओं के अनुरूप तथा अपनी कल्पना का पुट देकर अनेक श्रृंगार विषयक कृतियों का निर्माण किया है। श्रृंगारकालीन किशनगढ़ शैली मे तत्कालीन सामन्ती वर्ग की श्रृंगारिकता तथा जनमानस की राधा कृष्ण सम्बन्धी लोकमाधुर्य भावना का जितना विस्तृत चित्रण हुआ है उतना किसी अन्य भाव का नहीं।[4] यहां की चित्रकला रस प्रधान है और उसे अधिक संयत, शास्त्रीय एवं भावमय बनाने का श्रेय काव्य को है। काव्यात्मक भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रांकन इसमें विशेष रूप से हुआ है।[5] राजदरबार मे पल्लवित होने वाली इस चित्रकला में एक ओर तो दरबारी शान-शौकत तथा ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति और श्रृंगार भावना की व्याख्या हुयी है तो दूसरी ओर वल्लभ सम्प्रदाय की राधा कृष्ण सम्बन्धी माधुर्य भक्ति भावना ने चित्रकारों को धार्मिक भावना से जोड़े रखा। चित्र फलक 1, 15, 35, 37। कवियों ने श्रृंगार रस के अलावा अन्य रसों का वर्णन प्रसंगवश ही किया। रसिकप्रिया में केशवदास ने श्रृंगार रस की महत्ता उसे सब रसों में नायक कहकर प्रतिपादित की है -

> ''नवहू रस के भाव बहु, तिनके भिन्न विचार
> सबको केशवदास हरिनायक है श्रृंगार।''

---

1 डा. सरन सक्सेना तथा डा० सुधासरन - *कला सिद्धान्त और परम्परा*, पृ० 74

2 डा. मनोहर प्रसाद मिश्र - *रीतिकालीन श्रृंगारिकता एवं ललित कलायें*, पृ० 36

3 वहीं, पृ० 36

4 सुरेन्द्र सिंह चौहान - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ० 185

5 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ० 175

चित्रों में भावांकन के लिये विभाव तथा अनुभाव दोनों का उपयोग होता है। विभाव तथा अनुभाव के बिना स्थायी भाव रस की स्थिति को नहीं प्राप्त हो सकता है। इसलिये स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों का पोषण पाकर आस्वाद्यता की स्थिति प्राप्त कर लेता है, तभी अभिधा का अधिकारी होता है। विभाव विशेष रूप से रस को प्रकट करते हैं। इन्हें रस का उत्पादक भी कहा जाता है।[1] ये स्थायी भाव के कारक होते हैं। विभाव के लक्षण निम्न प्रकार के बतलाये गये हैं[2]--

''जो विशेषकर रस को उपजावत हैं भाव
भारतादि सत्कवि सबै तिनको कहैं विभाव।''

विभाव दो तरह के माने गये हैं - आलम्बन विभाव तथा उद्दीपन विभाव। जिस वस्तु के सहारे रस की उत्पत्ति होती है, उसे आलम्बन विभाव कहते हैं। हिन्दी साहित्य में राधा कृष्ण इत्यादि आलम्बन विभाव के अन्तर्गत आते हैं जो स्थायी भावों को धारण करता है, वह आश्रयी कहलाता है। राजस्थान की सभी शैलियों में काव्य के आधार पर चित्रकारो ने आलम्बन विभाव का जो चित्रण किया है वह दो रूपों में अभिव्यंजित होता है।[3] पहला स्वच्छन्द रूप में दूसरा नायक-नायिका के भेद के रूप में। नायक-नायिका सम्बन्धी भेद की यह धारा काम अथवा श्रृंगार सम्बन्धी मनोविज्ञान से अनुप्राणित होकर तथा नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुरूप अपने शुद्ध शास्त्रीय रूप मे प्रवाहित हुयी। विद्वानों के मतानुसार सोलहवीं शती के आरम्भ मे इस शास्त्रीय परम्परा में विभिन्न पुराणों से निःसृत कृष्ण के वर्णन की एक बलवती धारा सम्मिलित हुयी जिसने साधारण नायक-नायिका के स्थान पर कृष्ण तथा राधा व गोपियों को स्थापित किया।[4] इस प्रकार विभाव पक्ष का एक अंग नायक-नायिका भेद किशनगढ़, बूंदी, कोटा आदि चित्र शैलियों का प्रधान विषय बन गया।[5] नायिकाओं के अगणित भेदोपभेद द्वारा उनके सूक्ष्म मनोविकारों तथा श्रृंगारिक प्रवृत्तियों का अंकन किया गया। दस वर्ष की अज्ञात यौवना से पचास वर्ष की प्रौढ़ा तक के भेद-विभेद किये गये। उनके हाव-भाव, विलास आदि को चित्रकारों ने अपने चित्रों के माध्यम से व्यक्त किया। अतः जिस तरह भक्ति व रीति-श्रृंगार में राधा कृष्ण आदि का आलम्बन रहा, उसी तरह से किशनगढ़ की चित्रकला में राधा कृष्ण के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति चित्रकारों ने बड़ी कुशलता से की। गीतगोविन्द, बिहारी सतसई, नागरसमुच्चय आदि ग्रन्थों में कवियों ने सामान्य नायक-नायिकाओं को आलम्बन मानकर भावों को अभिव्यक्त किया है वही किशनगढ के निहालचन्द जैसे चितेरों ने उन ग्रन्थों के आधार पर राधा कृष्ण के प्रेमयुगल के स्वरूप का चित्रों (चित्र फलक 30, 37, 38, 39, 40) मे अंकन कर भावाभिव्यंजना को और सरल एवं ग्राह्य बना दिया है। साथ ही कलाकारों ने राधा कृष्ण की छवि के अंकन मे सामयिक सामन्ती प्रभाव को महत्व प्रदान किया इसलिये उनकी राधा राजसी परिवेश और शाही वैभव के मध्य चित्रित है। वे किसी राजा और रानी से कम नहीं प्रतीत होते हैं।[6] चित्र फलक 3, 20, 29, 35, 38, 57।

---

1 डा. सरन सक्सेना तथा डा. सुधासरन - कला सिद्धान्त और परम्परा, पृ0 74
2 डा. नगेन्द्र - रस सिद्धान्त, पृ0 40
3 डा. जयसिंह नीरज - राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य, पृ0 203
4 बच्चन सिंह - रीतिकालीन कवियों की प्रेमाभिव्यंजना, पृ0 390
5 पुरूषोत्तमदास अग्रवाल - मध्यकालीन हिन्दी व्रजभाषा में रूप सौन्दर्य, पृ0 300
6 Eric Dickinson - Kishangarh Painting, P. 7

आलम्बन का रूप सौन्दर्य आश्रयदाता के हृदय में प्रेम व आकर्षण उत्पन्न करता है। अतः रीतिकालीन कवियो ने नायक-नायिका के विभिन्न शारीरिक अवयवों का विवेचन विशद रूप में किया है। किशनगढ़ के कलाकारों ने चित्रों में नायिका के रूपसौन्दर्य का स्वतन्त्र तथा परम्परागत रूप में नखशिख का वर्णन किया है। यहां नायिका को गौरवर्ण, लम्बी, तन्वंगी, छरहरी, उन्नत उरोज वाली, कमल जैसे नयन, पतले संवेदनशील होंठ, नुकीली चिबुक व लम्बी नासिका का अंकन किया है जो सहज ही नायक को आकर्षित कर लेती है। यहां नेत्रों का अंकन अपने आप में एक मौलिक विशेषता है जो अन्य शैलियो में नहीं पायी जाती है। चित्रों में नेत्रों द्वारा भावों की अभिव्यक्ति को विशेष प्रधानता मिली है। चित्र फलक 30 में राधा के नेत्र लम्बे भावमय बनाये गये हैं जो राधा के सौन्दर्य के प्रतीक हैं। चित्र फलक 1 तथा चित्र फलक 55 में राधा के नेत्र झुके हुये हैं और कृष्ण भाव-विह्वल होकर राधा की छवि को निहार रहे हैं। चित्र फलक 32 में राधा कृष्ण अपने प्रेमालाप मे इतने मग्न हैं कि उन्हें आसपास की सुध ही नहीं है। चित्र फलक 40 में राधा कृष्ण की संयोगावस्था का चित्रांकन है । इन सभी चित्रों में भावों की अभिव्यक्ति नेत्रों के माध्यम से प्रकट हो रही है।

जो वस्तुये रस को उद्दीप्त करने में सहायक होती हैं और उनकी आस्वादन योग्यता बढ़ाते हैं वे उद्दीपन विभाव कहलाते हैं। इनके द्वारा स्थायी भाव उद्दीप्त होकर आश्रिवय को प्राप्त होते हैं।[1] श्रृंगार के सखा-सखी, दूती, वन-उपवन, चन्द्र-चाँदनी, नदी तट षड्ऋतु, बारहमासा आदि उपकरण उद्दीपन विभाव में आते हैं। उद्दीपन विभाव के भी दो भेद किये गये हैं[2] -

1 विषयगत - 'मानवीय' उद्दीपन
2 बहिर्गत - 'मानवेत्तर' उद्दीपन

विषयगत उद्दीपन में नायक-नायिकाओं के वस्त्राभूषण, श्रृंगार सामग्री, नायिकाओं को हावादिक चेष्टायें, सखा-सखी इत्यादि आते हैं। नायिका के गुण तथा हाव का चित्रण रति क्रियाओं में प्रमुख हैं।[3] जिसे चित्रकारो ने अपने चित्रों में प्रधानता दी है। मानवीय उद्दीपन में सखियों और दूतियों की उक्तियां तथा क्रियायें भी हैं जिसमें वे रतिक्रीड़ा विषयक शिक्षा देने से लेकर परिहास तक करती है। चित्र फलक 1, 17, 38, 411।

'मानवेत्तर बहिर्गत उद्दीपन' में कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र में वर्णित छः ऋतुओं, सूर्य, चन्द्रमा, जलविहार, वनविहार, मधपान, रतिक्रीड़ा, चन्दनादि लेपन आदि का वर्णन किया है। षडऋतुओ तथा बारहमासों के रंगीन मादक वातावरण एवं नायक नायिका की परिवर्तित मनः स्थितियों व अनुभूतियों को न केवल किशनगढ़ के कलाकारों ने ही व्यजित किया वरन् राजस्थान की अन्य शैलियों में भी यह प्रमुखता से देखने को मिलता

---

1 बाबू गुलाब राय - *नवरस*, पृ0 20
2 रामदहिन मिश्र - *काव्यदर्पण*, पृ0 57
3 डा. पुष्पलता पाण्डेय - *रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसइयो का तुलनात्मक अध्ययन*, पृ0 40

है। नदी, सरोवर के तटों, उपवनों तथा हरे भरे और घने खेतों के एकान्त मधुर शान्त और शीतल सहेट स्थलों आदि का वर्णन काव्यों में बहुत अधिक हुआ।[1] जिसे चित्रकारों ने अपने चित्रों में बहुलता से उतार दिया है।

चित्रकला मे उद्दीपन विभाव भावों की अभिव्यक्ति के लिये एक प्रमुख भूमिका निभाता है।[2] जबकि काव्य में अनेकों बार आलम्बन के रूप में सौन्दर्य के लिये बाह्य उपकरणों का अंकन किया जाता है। किन्तु चित्रकार आलम्बन के रूप सौन्दर्य के अंकन के वस्त्राभूषण का चित्रांकन करता है। इसी तरह चित्र मे पृष्ठभूमि के अंकन के लिये प्राकृतिक परिवेश का चित्रण होता है। इसीलिये उद्दीप्त करने वाली वस्तुओ का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष अंकन चित्रकला की अपनी निजी विशेषता है।[3] चित्रों में नायक-नायिका को विभिन्न प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करना तथा पृष्ठभूमि का भावानुकूल चित्रण चित्रो में भाव तथा रस के महत्व को दोगुना कर देता है।[4]

सामन्ती परिवेश मे पल्लवित और विकसित किशनगढ़ की चित्रकला मे विषयगत तथा वाह्य दोनों प्रकार के उद्दीपनों का अंकन बड़ी ही दक्षता से किया गया है । राधा कृष्ण एवं अन्य गोप-गोपिकाओं के विभिन्न रंगों के सौन्दर्यपूर्ण वस्त्रों का अंकन, विभिन्न प्रकार की जरी, कलाबत् तथा सलमे सितारे से जड़े परिधान, जिन पर विभिन्न डिजायनों का अलंकरण मिलता है आदि का अंकन किशनगढ़ के चित्रों में बखूबी हुआ है। विभिन्न प्रकार के माणिक्य, मोती, हीरे तथा पन्नों से निर्मित आभूषणों से सुसज्जित राधा कृष्ण का अंकन हुआ है जो उनके सौन्दर्य की शोभा में वृद्धि कर देता है। चित्र फलक 1, 18, 19, 20, 51।

चित्रकार को भावों के उद्दीपन के लिये पृष्ठभूमि का अंकन करना होता है। जिसका किशनगढ़ के कलाकारों ने काफी ध्यान रखा है किशनगढ़ नगर तथा रूपनगढ़ का परिवेश जिस प्रकार झीलों, पहाड़ों, उपवनों से घिरा है।[5] उसी रूप में प्रकृति का चित्रण भी आकर्षक व लालित्यपूर्ण है। चित्रों में इसका जितना बारीक एवं रंगीन चित्रण मिलता है उतना अन्यत्र कहीं नहीं।[6] विस्तृत क्षेत्र में फैली झील तथा झील के मध्य क्रीड़ा करते हुये विभिन्न पक्षी हंस, बत्तख, जलमुर्गाबी, सारस, बक आदि का अंकन तथा झील में तैरती लाल रंग की नौकायें राधा-कृष्ण की प्रेम भावना को उद्दीप्त करने में सहायक बना है। चित्र फलक 10, 49। ऊंचे-ऊंचे राजभवन, कुंजों के मध्य बनी श्वेत गुंबदें, फव्वारे, कदम्ब, आम व केले आदि के वृक्षों से घिरे विभिन्न दृश्य तथा कमल दलों से ढके जलाशय का अंकन चित्रों में बराबर मिलता है।[7] चित्र फलक 26, 27, 39, 52।

---

1 डा. जगेश्वर प्रसाद मिश्र - *रीतिकालीन श्रृंगारिकता एवं ललित कलायें*, पृ0 41
2 डा. रांगेय राघव - *काव्यकला और शास्त्र*, पृ0 40
3 L . James Jarren - *The Quel For Beauty*, P. 50
4 डा. उमामिश्र- *काव्य तथा संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध*, पृ0 51
5 Pratapditya Pal - *The Classical Tradition in Rajput Painting*, P. 40
6 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 7
7 *Indian Miniature Painting*, P. 100

इस प्रकार चित्रकारों ने भावों के उद्दीपन के लिये पृष्ठभूमि का अंकन किया तथा नायक व नायिका के रतिभाव को प्रदर्शित करने के लिये उनके आंगिक लावण्य, उनकी भावानुकूल चेष्टा तथा उचित वस्त्राभूषणों का सुन्दर अंकन किया। राजपूत संस्कृति में जिस तरह के वस्त्राभूषणों का उपयोग मिलता है। उन्हीं का प्रमुखता से कलाकारो ने अंकन किया है।[1] काव्यकला व चित्रकला के भावांकन में अनुभवों का भी विशेष योगदान होता है। चित्रकला में तो इनका विशेष महत्व है। आलम्बन और उद्दीपन आदि कारणों से हृदय में जागृत रति भाव को प्रकट करने वाले हाव-भाव, मुस्कान, कटाक्ष भ्रूभंग आदि कार्य श्रृंगार रस के अनुभाव कहलाते हैं।[2] कर्मेन्द्रियों द्वारा आन्तरिक भावों का वाहय प्रकटीकरण ही अनुभव है।

> ''मुख रूख चखनि सुभाई लखि प्रगटति ही की बात
> ताहि कहत अनुभाव सब जिनकी गति अवदात।''
>
> 10 तोष चिन्तामणि

अनुभाव एक तरह से वे शारीरिक चेष्टायें हैं, जिनसे भावों की अनुभूति होती है। इसलिये अनुभाव को स्थायी भाव का कार्य कहा गया है। अनुभावों का क्षेत्र विस्तृत है। इन्हें मुख्यतः तीन कोटियो में रखा जा सकता है।[3]

सात्विक अनुभाव -

शरीर के अकृत्रिम अंग विकार को सात्विक अनुभाव कहते हैं। आश्रय की यह स्वाभाविक चेष्टाये जिन्हें रोका नहीं जा सकता है सात्विक अनुभाव में आती हैं। इनके आठ भेद हैं - स्तम्भ, वेपथु, अश्रु, प्रलय, स्वर- भंग, रोमांच, स्वेद, वैवर्ण्य।[4]

मानसिक अनुभाव -

अन्तः करण की वृत्ति से उत्पन्न हुआ प्रमोद मानसिक अनुभाव में आता है।

कायिक अनुभाव -

दौड़ना, कूदना, झपटना, कटाक्ष आदि कृत्रिम आंगिक चेष्टा आदिकायिक अनुभाव कहलाते हैं। अनेक रीतिकालीन कवियों ने अनुभाव की स्पष्ट और मुखर रेखाओ के द्वारा बिम्ब बनाकर रस व्यजंना की है।[5] किशनगढ़ के लघु चित्रों में अनुभूति की अनुकृति से भाव अभिव्यक्तिकरण की सजीव प्रक्रिया आदि से अन्त तक दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः किशनगढ़ शैली इतनी प्राचीन होते हुये भी हमारे जीवन की अभिव्यक्ति सी प्रतीत होती है।

---

1 डा. लल्लन राय- *रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में उल्लिखित वस्त्राभरणों का अध्ययन,* पृ0 40

2 रामदहिन मिश्र- *काव्य दर्पण,* पृ0 60

3 डा. नगेन्द्र- *रीतिकाव्य की भूमिका,* पृ0 40

4 भगीरथ मिश्र- *हिन्दी रीति साहित्य,* पृ0 50

5 डा. जनेश्वर प्रसाद मिश्र- *रीतिकालीन श्रृंगारिकता एवं ललितकलायें,* पृ0 42

अभिव्यक्ति के आत्मविस्तार में तादात्म्य रस का संचार करता है और आन्तरिक अनुभूति में जो रस हैं पारस्परिक अभिव्यक्ति में वही आनन्द है।[1] भारतीय चित्रण में यह 'भाव' रचनात्मक तत्व है जो अभिव्यक्ति को रूप प्रदान करता है। अभिव्यक्ति आन्तरिक तथा वाह्य दोनों रूपों मे होती है। जिस रस निष्पत्ति का विवेचन आचार्य भरतमुनि ने अपने सूत्र नाटक में विशद विवेचना करते हुये प्रस्तुत किया है।[2] उसका पूर्ण समागम किशनगढ़ के चित्रों में देखने को मिलता है। अधिकतर चित्रों में नायक-नायिकाओं के माध्यम से ही रस की निष्पत्ति हुयी है। साहित्य के आधार पर भी राधा कृष्ण के रागात्मक सम्बन्ध का विवेचन हुआ है। चित्र फलक 2 मे कृष्ण राधा को निहार रहे हैं।[3] राधा का सौन्दर्यपूर्ण मुखमण्डल उनके झुके हुये कमल के समान नेत्र तथा पतले कोमल होठ राधा की सम्पूर्ण मनोभावो की अभिव्यक्ति सी करते प्रतीत हो रहे हैं। कृष्ण की उगलियां राधा के घूंघट का स्पर्श कर रही हैं और राधा कृष्ण की कलाई पकड़े हुये हैं। इस चित्र की विशेषता दोनों की प्रेमभावना को सर्वश्रेष्ठ रूप में प्रस्तुत करने की है। किशनगढ़ शैली में भावों की अभिव्यंजना सबसे अधिक भावपूर्ण नेत्रों के द्वारा ही अभिव्यंजित हुयी है। चित्रित नेत्र किसी पदमाक्षी या कमलनयनी से कम नहीं हैं।[4] जिनकी हिन्दी व संस्कृत साहित्य में प्रेम कविताओ के रूप में व्याख्या की गयी है। राधा कृष्ण के आलम्बन का भाव किशनगढ़ के लगभग सभी चित्रों में अभिव्यजित है।[5] उपरोक्त चित्र में संयोगावस्था का सजीव चित्रांकन हुआ है।

चित्रकारों ने तथा स्वयं नागरीदास ने जो एक चित्रकार भी थे, स्वयं को कृष्ण व अपनी प्रेमिका बणीठणी को राधा के रूप में अभिव्यंजित किया। साहित्य के आधार पर भी उनके रागात्मक सम्बन्धों का उल्लेख मिलता हैं। श्रृंगारिक अनुभूतियो से ओतप्रोत चित्र फलक 28 में नागरीदास तथा बणीठणी को चित्रित किया गया है।[6] सावंतसिंह को एक आसन पर बैठे पूजा करते हुये अंकित किया गया है तथा बणीठणी सद्यः स्नात के रूप में पुष्पाहार लिये सावन्तसिंह की ओर बढ़ रही है। उनके पीछे दो दासियां हाथ मे पूजा की सामग्री लिये हुए हैं। बणीठणी को लावण्य से पूर्ण नवयौवना के रूप में चित्रित किया गया है जो विभिन्न भावों को दर्शाता है।

अतः चित्र ऐसा प्रतीत होना चाहिए जो आस्वादक के मन में भाव को जागृत कर सके।[7] जिससे वह आनन्द की अनुभूति कर सके। प्रत्येक कृति में ऐसे लोक जीवन की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। अभिनव गुप्त ने इसे रस चर्वणा कहा है। जुगाली के सदृश घूँट-घूँट आस्वादन की अनुभूति चित्र फलक 35, चित्र फलक 52, चित्र फलक 55 आदि चित्रों से स्वतः ही होती है। चित्र फलक 35 जो दो भागों में विभाजित है एक भाग में राधा कृष्ण दिव्य प्रेमीयुगल के रूप में नौका विहार करते अभिव्यंजित हैं तथा अन्य भाग में राधा व कृष्ण घने

---

1 नवनीत, अप्रैल, 1986, पृ0 99

2 भरतमुनि- नाट्यशास्त्र, पृ0 35

3 *Indian Painting*, P. 40

4 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P. 83

5 संध्या गुप्ता- राजस्थानी शैलियों में कृष्ण के विविध स्वरूपों का चित्रण, पृ0 25

6 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, फलक - 2

7 भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, सं. विद्नाथ नाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय, पृ0 25

कुंज मे एक वृक्ष के नीचे खड़े एक दूसरे को मुग्ध भाव से निहार रहे हैं। पृष्ठभूमि का सम्पूर्ण प्राकृतिक परिवेश उनकी भावनाओं को उद्दीप्त करने वाला है जैसा कि चित्र फलक 52 तथा चित्र फलक 55 में दिखायी पड़ रहा है। राधा कृष्ण सब कुछ भूलकर स्वयं में तल्लीन हैं और यही आत्मविस्मृतिमयी तन्मयता साधारणीकरण की स्थिति है।

यहां चित्रों में भावनाओं की गम्भीरता तथा रस की अनुभूति दोनों का संगम मिलता है।[1] अतः चित्रों में भाव चित्रण व रस चित्रण के समानता के आधार पर कहीं-कहीं पर दोनों को एक ही नाम से सम्बोधित किया गया है परन्तु यह उचित नहीं है। वास्तव में देखा जाय तो रस चित्रण, भाव चित्रण का ही परिपक्व रूप है।[2] भाव चित्रण में चित्रगत भावों की अनुभूति की तीव्रता मुख्य होती है। भाव चित्रण के आस्वादन की प्रक्रिया के बिना रस की अनुभूति नहीं की जा सकती है। यही कारण है कि भारतीय कला में भाव तथा रस चित्रण को अलग-अलग मान्यता दी गयी है।[3] भाव चित्रण में रस संचारण विभिन्न वर्णों के विन्यास पर आधारित होता है किन्तु चित्रण में रस निष्पत्ति की व्यवस्था हुआ करती है। रस चित्रण में भावों को लयात्मक आकार के साथ छन्द युक्त रेखाओं के सन्तुलित प्रयोग वर्तनाक्रम और रंग योजना पर विशेष बल दिया जाता है। अतः भाव तथा रस जीवन की अन्तरतम अनुभूतियां है जिससे जीवन के माधुर्य एवं रागीय भावो का समन्वय सर्वव्यापी रूप मे स्वयं सिद्ध है।[4] मध्यकालीन रीतिकाव्यशास्त्र में तथा चित्र शैलियों का परिवेश पूर्णतया भाव तथा रस पर आधारित है।[5] विशेष रूप से प्रेम की अभिव्यंजना में इस समय तक नवयुगलों की प्रेमकथायें साहित्य का अंग बन चुकी थीं। संस्कृत साहित्य के आदि ग्रन्थों में जीवन के मधुर व अमधुर आयामों के आधार पर नायक-नायिकाओं के भेद-विभेद प्रतिपादित हो चुके थे। राधा कृष्ण एवं कृष्ण रूक्मणी प्रेम की अभिव्यंजना कर कवियों ने भौतिक पृष्ठभूमि पर प्रेम की शाश्वतता को सिद्ध किया है।[6]

चित्र फलक 29 में राधा कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम को अभिव्यंजित किया गया है। जिसमे प्रेमी युगल अलग-अलग चबूतरे पर आमने-सामने बैठें हुये हैं जो जल के मध्य स्थित है और खिली चाँदनी रात निश्चय ही उनके इस प्रेममिलन में सहायक है। वे एक दूसरे को निहार कर प्रसन्न हो रहे हैं। यद्यपि वे एक दूसरे के समीप नहीं है फिर भी सम्पूर्ण वातावरण से बेखबर अपनी प्रेमलीला में लीन है। चित्र फलक 32 में राधा कृष्ण एक दीवान पर बैठे पान का आनन्द लेने में मग्न हैं । राधा कृष्ण की दृष्टि में केन्द्रत्व की छवि द्रष्टव्य है। चित्र फलक 40 में कृष्ण राधा को अपनी शय्या पर आने का आमन्त्रण दे रहे हैं। यद्यपि राधा कृष्ण के चुनरी पकड़े जाने पर प्रतिवाद तो करती है परन्तु उसकी लजीली मुख मुद्रा कुछ और ही मनोभावो को प्रकट करती सी प्रतीत हो रही है । सम्पूर्ण चित्र में चन्द्रमा

---

1 M.S Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 8

2 डा. पुष्पलता - *रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन*, पृ0 103

3 डा. नगेन्द्र- *रस सिद्धान्त*, पृ0 40

4 डा. बच्चनसिंह - *रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना*, पृ0 45

5 वहीं, पृ0 46

6 भगीरथ मिश्र - *हिन्दी रीतिसाहित्य*, पृ0 50

व तारों से भरी रात्रि का दृश्य है।[1] चित्र में सारस तथा मयूर का अंकन राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम की पराकाष्ठा के प्रतीक स्वरूप अंकित हुआ है।[2] चित्र फलक 38 में प्रेमी युगल जगत की दृष्टि से स्वयं को बचाने के लिये नदी को पार कर आम्रकुंज में कुछ समय एकान्त में बिताने के लिये बैठे हुये हैं परन्तु इस चित्र का भाव यह है कि प्रणयीयुगल यह नहीं जानता कि उनकी श्रृंगारिक क्रीड़ाओ को कोई देख रहा है। वे अपने आप में तल्लीन अपनी-अपनी भावनाओं की अन्तरतम स्थिति एक दूसरे से कह देना चाहते हैं परन्तु कहने मे संकोच करते हैं। चित्र फलक 13 में कृष्ण राधा के सौन्दर्य पर इतने मन्त्रमुग्ध हो गये हैं कि वे शब्दमुग्ध हो गये हैं।[3] ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वे राधा के सौन्दर्य मे सदा के लिये खो जाना चाहते हों।

किशनगढ़ शैली के चित्रों में कलात्मक अभिव्यंजना तथा कलात्मक सृजन दोनों का ही समान भाव संयोजक सत्व रस ही है। डा0 सुधीन्द्र ने काव्यश्री में लिखा है कि आश्रय के मन में जागृत भाव का अनुमान पाठक या दर्शक भाव अनुभाव के आधार पर लगाता है परन्तु आश्रय के मन में स्थायी भावों के अनुषांगिक भावों के रूप में अनेक भावों का संचार होता है। केशव ने रसों में अनियन्त्रित रूप से आने वाले भावों को व्यभिचारी भाव कहा है। स्थायी भाव के भीतर उन्मज्ज व निमज्जि होते हुये संचरण करने वाले भाव ही संचारी या व्यभिचारी हैं। जिनका काव्य मे विशेष महत्व है।[4] ये स्थायी भाव की अपेक्षा बहुत कम स्थिर हुआ करते हैं। इनकी सार्थकता केवल इसी बात में निहित है कि ये स्वयं आविर्भूत तिरोभूत हो स्थायी भावो को पुष्ट करें।[5] इनकी उपस्थिति के बिना कोई भी स्थायी भाव रसदशा तक नही पहुंच सकता है। कुलपति और देव के अनुसार सभी रसों में जो संचरणशील होते हैं वे संचारी भाव हैं।[6] पाश्चात्य विद्वानों ने भावों को सेन्टीमेंन्टस और इमोशन्स की संज्ञा दी है।[7] आधुनिक काव्यशास्त्रियों में रामदहिन मिश्र ने अस्थिर मनोविकारों या चित्तवृत्तियों को भाव की संज्ञा प्रदान की है। हिन्दी व संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने संचारियों की संख्या 33 के करीब मानी है।

ग्लानि, शंका, असूया, निर्वेद, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृत्ति, व्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, सुप्ति, विवोध, अमर्ष, अविहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क।

1 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 10
2 Rooplekha, Vol-XXV, Part I, Banerjee - *Kishangarh Painting*, P. 10
3 Watler Spink - *The Quest of Krishna*, P. 14
4 डा. पुष्पलता - *रीतिकालीन सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन*, पृ0 129
5 वही, पृ0 129
6 डा. रांगेय राघव - *काव्यकला और शास्त्र*, पृ0 45
7 डा. सरन सक्सेना तथा डा. सुधा सरन - *कला सिद्धान्त और परम्परा*, पृ0 17

किशनगढ़ शैली के चित्रों में इस प्रकार के कुछ भावों की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है -

निर्वेद

जब किसी कारण विशेष से हृदय में ज्ञान 'वैराग्य' उत्पन्न होता है तो वह निर्वेद कहलाता हैं।[1] चित्रफलक 28 मे सावन्त सिंह पूजा स्थल पर बैठे हैं जो सांसारिक माया मोह के प्रति विरक्ति को दर्शा रहा है। विरक्ति या वैराग्य की भावना ही निर्वेद है-

> ''तौ लौ भली वाम जौ लौ आन्योधन्यधाम
> जब हाते गयो निकाम वामना सुंचित है।
> तौ ला भलो पूत जो लौ मात मजबूत फेरि शत्रु
> कैसो दूत द्रग देखत प्रेषित है,
> कहे बन्दराम मेरे भमण के धाम
> के राग राग अन्तरागहि रचत है।
> दारूण दराजन को सग काग साजन को
> ऐसे दगाबाज को छोड़िवो उचित है।''

शंका

जहां पर अपराध के कारण अनिष्ठ की आशंका उत्पन्न हो जाये वहां शंका का भाव होता है।[2] चित्र फलक 38 में राधा कृष्ण जगत की दृष्टि से ओझल होकर कुंजों के मध्य कुछ समय व्यतीत करना चाहते हैं परन्तु झाड़ियों के मध्य दो स्त्रियां प्रेमी युगल के इस प्रेमालाप को बड़े कौतुक से देख रहीं हैं-

> ''अरि खरि सटपटी परि विधु आवे मगहेरि
> संग लगै मधुबनु लई भागनु गली अथरि।''[3]

यहां नायिका का अभिसरण अपराध है जिसमें लोकापवाद की शंका उत्पन्न हो गयी।

मद

अपने रूप कुल ऐश्वर्य यौवन आदि से जब नायिका का मन गर्व से भर जाता है तब मद की स्थिति होती है-

> ''दरपन में निज रूप लखि नैननि मोद कमंग
> तियमुख पिय बस करन कौ उठयौ गरत कौ रंग।''[4]

---

1 डा0 रामलाल वर्मा -*रस राज श्रृंगार*, पृ0 279

2 डा. पुष्पलता - *रीतिकालीन सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन*, पृ0 130

3 बिहारी-रत्नाकर दोहा 456

4 प्रभुदयाल मित्तल - *ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद*

चित्र फलक 11, चित्र फलक 22, चित्र फलक 45, चित्र फलक 47, चित्र फलक 46 आदि कृतियों मे विभिन्न नायिकाओं का चित्रण किया गया है। जिसमें उनके रूप, यौवन, धन, प्रभुता आदि मद की झलक मिलती है। मद का भाव पद्‌माकर ने भी इस प्रकार व्यक्त किया है -

> ''पूस निसा में सुवासनी ले धनि बैठे दुहू मद के मतवाले,
> त्यों पदमाकर झूमें झुके धन धूमि स्वे रस रंग रसाले।
> सीत को जीत अभीत भये सुगने न सुखी कछु साल दुसाले,
> छनकि छका छवि को दिये मद मैनन के ये प्रेम के प्याले।''[1]

जड़ता

चित्र फलक 1, चित्र फलक 15, चित्र फलक 32, चित्र फलक 35, आदि चित्रों मे प्रेमी युगल एक दूसरे को देखते ही अपनी सुधबुध खो बैठे से प्रतीत होते हैं। इनकी यह विस्मृति जड़ता के भाव की घोतक है।

मोह

भय विषाद विरह आदि के कारण चित्र में जो विकलता का भाव उत्पन्न होता है वह मोह कहलाता है।[2] इस भाव की अभिव्यक्ति मूर्छा एवं कर्तव्य व अकर्तव्य, विवेक व अविवेक आदि रूपों में की जाती है। किशनगढ़ के राजसी वैभव के मध्य राधा कृष्ण की आकृति का अंकन चित्रो में मिलता है। चित्र फलक 1, 15, 29, 35, 38, आदि।

व्रीड़ा

नायक को देखकर नायिका में लज्जा का भाव आना स्वाभाविक ही है।[3] चित्र फलक 1, 15, 38, आदि चित्रों में नायिका के मुख पर लज्जा का भाव दृष्टिगोचर होता है। व्रीड़ा भाव की व्यंजना पद्‌माकर के दोहे में इस प्रकार हुई है -

> ''प्रथम समागम की कथा बूझी सखिन जू आई
> मुख नवाई सकुचाई तिय रही सु घूँघट नाई।''

यद्यपि मध्यकालीन सभी चित्रकलाओं, भावनामूलक होते हुए भी बहिर्मुखी रही है। चित्रकारो ने नायक-नायिकाओं के हाव-भाव, उनकी वाह्य चेष्टायें, अंगित मुद्रायें, वस्त्राभूषणों द्वारा भावों के अंकन पर ही अधिक ध्यान रखा है।[4] अन्तर की पीड़ा या मनोविकारो की अभिव्यक्ति को विशेष स्थान नहीं मिला है। आन्तरिक मनोभावों की अभिव्यक्ति पूर्णतया आधुनिक कला में देखने को मिलती है। आधुनिक चित्रकला में वाह्य तत्वों या शारीरिक सौन्दर्य के स्थान पर अन्तर की मनोव्यथा को सांकेतिक रूप से अंकित करने में महत्व देती है।[5] परन्तु फिर भी सभी भारतीय कलाओं की प्रमुख विशेषता विभिन्न

---

1 डा. ब्रजनारायणसिंह - *कवि पद्माकर व उनका युग*, पृ0 55
2 बच्चन सिंह - *रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना*, पृ0 21
3 प्रभुदयाल मित्तल - *ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद*, पृ0 40
4 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 177
5 वहीं, पृ0 178

भावों तथा श्रृंगारिकता का अंकन ही रहा है। अलौकिक तथा लौकिक दोनों ही जीवनको भारतीय कला जगत में युगों-युगों से भावमय तथा रसमग्न कर रहा है।

चित्रों के श्रृंगार पक्ष का अध्ययन

मानव मन सदैव से ही आस्तिक रहा है। वह प्रकृति नटी के पल-पल परिवर्तित रूप को देखकर आनन्दित व आश्चर्यचकित हो उठता था और प्रकृति के कार्यव्यापार, शक्ति तथा विविध रूपों को देखकर श्रद्धा से नत हो गया।[1] यही कारण है कि उसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति का मौलिक सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार अलौकिक शक्तियों से स्थापित हो जाया करता था और मानव ने जगत-जीवन के इन्हीं रहस्यो को कल्पना द्वारा समझाने तथा उन्हें व्यक्त करने के प्रयास मे चित्र तथा वाणी का आश्रय लिया होगा और यहीं से कला तथा काव्य का साथ प्रारम्भ हुआ।

कला एक अखण्ड अभिव्यक्ति है। कला के मानस पटल पर जो बिम्ब उभरते हैं उन्हें वह विभिन्न माध्यमों से व्यक्त करता है। कवि शब्दों के माध्यम से अपनी कल्पनाओं की भावाभिव्यक्ति करता है तो चित्रकार रंग और रेखाओं के माध्यम से उसे रूपाकार प्रदान करके दृश्यवान बना देता है। मूर्तिकार अपने मानस चित्रो को छेनी-हथौडी के माध्यम से आकार प्रदान करता है[2] तो संगीतकार स्वरों के आरोह-अवरोह से मनः स्थिति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

कला कोई भी हो उसकी सृजन प्रक्रिया में दूसरी कलायें भी अपनी सीमा मे पूर्ण सहयोग प्रदान करती हैं। इस दृष्टि से तो चित्रकर्म सर्वोपरि रहता है। चित्रण की भावना और दृश्यतत्व या बिम्ब की कल्पना व्यापक सत्य है क्योंकि कलाकार अपनी प्रत्येक अभिव्यक्ति को सूक्ष्म रूपचित्रण अथवा वस्तु के आकार रूप में स्थापित करना चाहता है। अनुभूति के हर स्तर मे चित्रतत्व की कल्पना या बिम्ब विधान समाविष्ट रहता है[3] क्योंकि प्रतिभा सर्वप्रथम बिम्ब के माध्यम से बोलती है। यही मानसचित्र शब्दचित्र, मूर्तिचित्र और सगीत मे रूपाकार ग्रहण करते हैं। काव्य और संगीत श्रव्य कलायें है तो चित्र और मूर्ति दृश्यकलायें। किन्तु जब कलायें परस्पर सहयोग लेकर प्रस्फुटित होती हैं तो सारे भेद स्वतः ही मिट जाते हैं।[4] ऐसी अलौकिक स्थिति में चित्रों को देखकर हृदय मे एक संगीतमय अनुभूति होने लगती है और श्रव्यकलाओं को सुनकर संतरंगे दृश्य रूपायित होने लगते हैं। इन सभी कलाओं की आत्मा एक है भले ही अभिव्यक्ति में अन्तर है। काव्य यदि बोलता हुआ चित्र है तो चित्र मूक काव्य है।[5] प्रत्येक कविता अपने आप में एक भावमय चित्र है और चित्र आकृति रस और विचारों का रूप है इसीलिए चित्र एक मूक कविता है। जो देखकर

1 डा. किशोरी लाल- *रीतिकालीन कवियों की मौलिक देन*, पृ0 116
2 डा. गणपति चन्द्र गुप्त - *हिन्दी काव्य में श्रृंगार परम्परा*, पृ0 12
3 पदमश्री रामगोपाल *विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ*, भाग-2, पृ0 22
4 सम्मेलन पत्रिका, *कलाअंक*, पृ0 14
5 वही, पृ0 15

अनुभूति ग्रहण करने के लिये है तो कविता सुनकर अनुभूति ग्रहण करने के लिये है। कवि अपनी कविता में चित्रमयी भाषा का प्रयोग करता है।[1] भाषा व छन्द जो संगीत में भी अपना महत्व रखते हैं उसमें विधायक तत्व अक्षर या शब्द स्वयं भावमय चित्र हैं। इसलिये कविता, चित्रकला व संगीत एक दूसरे के प्रेरक ही नहीं वरन् पूरक भी है और भारतीय चित्रकला में प्राचीन काल से ही काव्य को आधार बनाकर चित्रों की रचना होती रही है। कला व साहित्य का सम्बन्ध सदैव प्रमाणित है।

राग प्राणिमात्र के जीवन का अभिन्न अंग है और इसी रागात्मक वृत्ति से मानव प्रेरित होता है तथा कर्मशील बनकर विभिन्न कार्यो में रत रहकर जीवन के अभीष्ट आनन्द को प्राप्त करता है और नियति के नियमन का कार्य भी साथ-साथ चलता रहता है। यही प्रवृत्ति स्त्री पुरूष के मध्य आकर्षण का कारण बनती है और यही आकर्षण प्रक्रिया मानवमात्र को समरसता के शिखर तक ले जाकर अनिर्वचनीय आनन्द प्रदान करती है। सृष्टि के आदिकाल से ही नारी और पुरूष एक दूसरे के पूरक रहे हैं। एक दूसरे के साथ मिलन सुख की प्राप्ति के लिये अधीर हो उठना तथा व्याकुल होना जहां विरह की संज्ञा से अभिहित होता है।[2] वहीं मिलन होने पर संयोग की परिणिति को प्राप्त होता है। स्त्री पुरूष के मिलन की यही प्रवृत्ति श्रृंगार के परिवेश में आती है। नाट्यशास्त्र के आचार्य भरतमुनि ने श्रृंगार की परिभाषा देते हुए कहा है [3] -

> ''सुख प्रायेष्ट सम्पन्न ऋतु माल्यादिसेवकः
> पुरूष प्रमदायुक्त श्रृंगार इति संज्ञितः।''

अर्थात् प्रायः सुख प्रदान करने वाले इष्ट पदार्थो से युक्त ऋतु मालादि से सेवित स्त्री और पुरूष से युक्त श्रृंगार कहा जाता है।

काव्य तथा साहित्य में श्रृंगार की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। श्रृंगारिक प्रवृत्तियों का उन्मेष सर्वप्रथम वैदिक वीर गीतों और सामवेद की स्तुतियों में दृष्टिगत होता है। धार्मिकता के परिवेश में बंधे होने पर भी वैदिक कवियो ने श्रृंगार को लौकिक पक्ष के अनुरूप ही चित्रित किया है तथा श्रृंगार के विविध रंगों से रंजित किया है। वैदिक साहित्य में श्रृंगार साहित्य का जो स्रोत प्रारम्भ हुआ था। वह रामायण काल तक आते-आते कुछ मर्यादाओं में बंध गया।[4] रामायण काल में नीतिबन्धन कुछ दृढ़ हो गये थे। इस समय विवाह के पूर्व स्वतन्त्र प्रेम यहां मान्य नहीं था इसलिये दाम्पत्य जीवन के परिवेश में ही श्रृंगार का विकास हुआ।[5] श्रृंगार के संयोग तथा वियोग पक्ष की सुन्दर व्यंजना राम और सीता के विवाहोपरान्त

---

1 सम्मेलन पत्रिका, *कला अंक*, पृ0 15

2 दयाकृष्ण विजयवर्गीय - *राजस्थान काव्य में श्रृंगार भावना*, पृ0 28

3 आचार्य धनञ्जय कृत दशरुपक सम्पादक-*भोलाशंकर व्यास*, पृ0 253

4 जनेश्वर प्रसाद मिश्र - *रीतिकालीन श्रृंगारिकता एवं ललितकलायें*, पृ0 10

5 वही, पृ0 11

जीवन मे दिखायी पड़ती है। महाभारत मे रामायण युग की भांति धार्मिक भावना ही प्रधान रही परन्तु नैतिक बन्धन अपेक्षाकृत शिथिल हो गये थे। महाभारत मे श्रृंगार का चित्रण दाम्पत्य एवं स्वतन्त्र दोनो रुपो में अंकित है। महाभारत के अन्तर्गत उर्वशी, मेनका इत्यादि नारियो के सौन्दर्य को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखा और परखा गया है, इसीलिये अनेक हाव-भाव व अंग-प्रत्यंगों के उभार का चित्रण बड़ा ही मनमोहक बन पड़ा है।[1] महाभारत में यद्यपि धार्मिकता की परिधि मे ही श्रृंगार भावना का विकास हुआ किन्तु उसका विस्तार स्वतन्त्र रुप से हुआ है जिसने परवर्ती काव्यों को अत्यन्त प्रभावित किया है।[2]

पुराण साहित्य में मुख्यरुप से धार्मिक भावनाओं की ही प्रधानता रही है। फिर भी इसमें श्रृंगारिक छटा यत्र-तत्र दिखायी पड़ती है। श्रीमद्भागवत, विष्णु, मार्कण्डेय, शिव, मत्स्य आदि पुराणो में यथास्थान श्रृंगार के संयोग एवं वियोग पक्ष की सुन्दर व्यंजना विद्यमान है। मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत नारी सौन्दर्य का भी बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से वर्णन किया गया है[3] -

> ''रक्ततुंगनखं रवाश्यामां मृदुवाग कारांधिक्रम्
> करभोरु सुदशनांनील सूक्ष्मस्थरालकाम्।''

अर्थात् उस मदालसा के नख लाल रंग में कुछ ऊंची देह कोमल, नवीन अवस्था, हाथ-पाँव, हथेली व तलुये लाल रंग के, दोनों अरुमज शुण्ड के समान, सुन्दर दर्शनावली और अलकें नीलवर्ण की थी।

दशमस्कन्ध में गोपियों की संयोग तथा वियोग दोनों अवस्थाओं का सुन्दर वर्णन मिलता है। वेणुगीत, गोपीगीत इत्यादि ललितप्रसंगों को कुछ इस प्रकार अंकित किया गया है कि रसिक के हृदय में प्रेम की अविरल धारा प्रवाहित होने लगती है। भ्रमरगीत के अन्तर्गत गोपियों की विरह व्यथा मनप्राण को अपार करुणा से आप्लावित कर देती है।[4] समस्त पुराणों का प्रतिनिधित्व करने वाले इस पुराण में समस्त प्रसंग रमणीय तथा श्रृंगार रस से ओतप्रोत हैं।[5] कवि कालिदास की रचनाओं में श्रृंगार की रसिकता प्रधान वृत्ति सम्यक रुप से उभर कर हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। कालिदास की प्रमुख रचनाओं में कुमारसम्भव, रघुवंश, मेघदूत, अभिज्ञानशाकुन्तलम और विक्रमोर्वशीय इत्यादि हैं।[6] कालिदास के समस्त काव्य के चित्र अति श्रृंगारयुक्त तथा विलासमय होते हुये भी श्रेष्ठ काव्य के गुणों से ओतप्रोत हैं। कुमारसम्भव में शंकर पार्वती की रतिक्रीड़ा का वर्णन पूर्ण श्रृंगारिक है।[7] विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन पार्वती के विरह में दिखायी पड़ता है। कुमारसम्भव में जहां संयोग चित्रों मे अतिरंजित श्रृंगार को मान्यता दी गयी वहीं रघुवंश मे संयोग को श्रृंगार के उज्ज्वल पक्ष के रुप में चित्रित किया है।[7]

---

1 डा. मिथिलेश कान्त- *हिन्दी भक्ति श्रृंगार का स्वरुप*, पृ0 55
2 डा. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी- *रीतिकालीन कविता एवं श्रृंगार रस का विवेचन*, पृ0 217
3 वही, पृ0 218
4 डा. बच्चन सिंह - *रीतिकालीन कवियो की प्रेमाभिव्यंजना*, पृ0 383
5 कलानिधि वर्ष-1, अंक-2, पृ0 14
6 डा. नगेन्द्र- *हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास*, भाग 6, पृ0 200
7 डा. भगीरथ मिश्र - *हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास*, पृ0 20

मेघदूत कवि की अनुभूतियों का एक उत्कृष्ट काव्य है जिसके अन्तर्गत श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग तथा वियोग की उत्कृष्ट अभिव्यंजना हुयी है। अतः मेघदूत सदैव ही चित्रकारों की प्रेरणा का अनुपम ग्रन्थ रहा है।[1] कालिदास के समस्त काव्यों में श्रृंगार के संयोग और वियोग की धारा का निरूपण जिस विशेष परिस्थिति में हुआ है, उसी प्रकार नारी सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन यथास्थान विविध रेखाओ व रंगो द्वारा रंजित व सुसज्जित किया गया है। कालिदास ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से स्थूल अंगों के अवलोकन के साथ-साथ उनकी गतिविधियों तथा परिवर्तन को भी अंकित किया है। युवावस्था में प्रवेश करने पर नवयुवतियों की लज्जामिश्रित मुद्राओं तथा अनुरागजन्य चेष्टाओ के चित्रांकन में कालिदास अत्यन्त कुशल थे।[2] इस प्रकार कालिदास ने जहां एक ओर यौवन तथा सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण किया है वहीं दूसरी ओर प्रणय की श्रेष्ठता को उभारने मे श्रृंगार की अतिरंजिता को उन्मीलित कर दिया है।[3]

इसके पश्चात् अधिकांश कवियों ने राजाओं के संरक्षण में रहना प्रारम्भ कर दिया था। फलतः श्रृंगार के चित्रण में स्वाभाविकता के स्थान पर पाण्डित्य प्रदर्शन झलकने लगता है।[4] भारवि, माघ, विल्हण, श्रीहर्ष आदि कवियों ने श्रृंगार के समस्त रुपों के चित्रण मे कामशास्त्रीय काव्यशास्त्री और ग्रन्थो का प्रश्रय लिया।[5] इन काव्यों में स्थान-स्थान पर नायिका भेद का वर्णन निरुपित है जिससे पता चलता है कि नायिकाभेद निरुपक ग्रन्थो का प्रभाव इन पर विशेष रुप से पड़ा। कामसूत्र के ग्रन्थों के प्रभाव से इन कवियों की प्रवृत्ति श्रृंगार के अन्य पक्षों की ओर अधिक न होकर रति क्रीड़ा चित्रण के ही अधिक रही है।[6] मुक्तक काव्य तथा लघु काव्यों की रचना अलंकारिक महाकाव्यों में समानान्तर ही हुयी, इनमें किसी विशेष कथानक का अभाव होते हुये भी विभिन्न नायक व नायिकाओं का चित्रण बड़े मनोयोग से किया गया है। श्रृंगार के आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों पक्षों का सुन्दर वर्णन मिलता है।[7] इस युग में अनेक लघु श्रृंगारिक काव्यों की सर्जना हुयी जो मुख्य रुप से अमरुशतक, श्रृंगारशतक, चौरपंचाशिका तथा कृष्णाश्रयी सगुण भक्ति शाखा में प्रस्फुटित होता दिखायी पड़ता है।[8]

रामाश्रयी शाखा मे प्रसंगवश मर्यादित श्रृंगार का वर्णन हुआ है परन्तु कृष्णाश्रयी शाखा में अपेक्षाकृत उन्मुक्त और वास्तविक उन्मेष मिलता है। सूरदास तथा अष्टछाप कवियों ने राधाकृष्ण को ही नायक-नायिका के रुप में वर्णित किया है।[9] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में ''श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द

---

1 डा. भगीरथ मिश्र - *हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास*, पृ0 21
2 वही, पृ0 22
3 डा. नगेन्द्र - *रीतिकाव्य की भूमिका*, पृ0 36
4 मधु प्रसाद अग्रवाल - *मारवाड़ की चित्रकला*, पृ0 40
5 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme in Rajsthani Miniature Painting*, P. 75
6 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P. 82
7 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 79
8 डा. हरवंश लाल वर्मा - *सूर और उनका साहित्य*, पृ0 40
9 वही, पृ0 40

आंखो से किया है उतना किसी अन्य कवि ने नहीं।'' हिन्दी साहित्य में श्रृंगार के रसराजत्व का यदि किसी ने पूर्णरूप से वर्णन किया है तो वह सूरदास ही थे।[1]

श्रृंगार रस की सर्वाधिक सुनियोजित, व्यापक और स्पष्ट प्रतिष्ठा आचार्य केशवदास ने अपने ग्रन्थो के माध्यम से व्यक्त की है।[2] केशवदास ने सबसे अधिक प्रधानता श्रृंगार रस को ही प्रदान की है। क्योंकि इसके अन्तर्गत प्रकारान्तर से अन्य रस भी समाहित हो जाते हैं[3]-

''नवह रस को भाव वहु तिनके भिन्न विचार
सबको केशवदास हरिनायक है श्रृंगार।''

रसिकप्रिया की रचना सम्वत् 1648 में हुयी। इसके 16 प्रकाशों मे से प्रथम 13 प्रकाशों मे श्रृंगार रस का सांगोपांग निरूपण मिलता है। श्रृंगार रस के अन्तर्गत नायिकाभेद का निरूपण मिलता है जो भानुदत्त की रसमन्जरी तथा विश्वनाथ के साहित्य दर्पण पर आधारित है। जिसमें राधाकृष्ण को नायिका- नायक के रुप में वर्णित किया गया है। केशवदास की रसिक प्रिया के साथ-साथ विहारी सतसई के दोहों के आधार पर भी भारी मात्रा में चित्रण कार्य हुआ। इन दोनो कवियों के ग्रन्थों के साथ-साथ मतिराम के ग्रन्थ रसराज, ललितललाम के पदों से प्रेरणा लेकर राजस्थान के कलाकारों ने असंख्य चित्रों का निर्माण किया।[4]

स्वयं किशनगढ़ के शासक राजा सावंतसिंह ने छोटे- बड़े 69 ग्रन्थों की रचना की जो नागरसमुच्चय के नाम से प्रकाशित है।[5] जिनके विषय मुख्य रुप से राधाकृष्ण की विभिन्न लीलाओं से ही सम्बन्धित है। रसिकरत्नावली-24 पद, ब्रजलीला- 21 पद, गोपी प्रेम प्रकाश- 61 पद, ब्रजवैकुण्ठ तुला- 54 पद, विहारचन्द्रिका- 85 पद, गोरलीला- 27 पद, गोधनआगम-11 पद, जुगलरस माधुरी- 12 पद, पावसपच्चीसी- 25 पद, होरी की माझ- 5 पद, ठाकुर के जन्मोत्सव कवित्त-4 पद, ठकुराइन के जन्मोत्सव कवित्त- 17 पद, सांझी के कवित्त-4 पद, रास के कवित्त-4 पद, चॉदनी रात के कवित्त-5 पद, गोवर्धन धारण के कवित्त- 6 पद, होली के कवित्त-22 पद, हिण्डोरा के कवित्त- 7 पद, वनविनोद- 8 पद, बालविनोद - 6 पद आदि ग्रन्थों में राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं का मनोरम वर्णन मिलता है।[6]

इन ग्रन्थों से स्पष्ट होता है कि नागर-समुच्चय में राधा कृष्ण की श्रृंगार परक भावनाओं का चित्रण अधिक हुआ है। उत्सवों, विहारों, दैनिक कार्यक्रमों आदि के माध्यम से नागरीदास ने राधा-कृष्ण की लीलाओं का जो वर्णन किया है वही किशनगढ़ की चित्र शैली का विशेष आधार रहा है।[7] अपनी प्रेमिका वनीठणी तथा स्वयं को राधाकृष्ण के युगलस्वरुप मे मानकर अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। उनके काव्य चित्रमय काव्य हैं

1 डा. मिथिलेश कान्त - *हिन्दी भक्ति श्रृंगार का स्वरुप,* पृ0 20
2 चिन्तामणि व्यास- *रसिकप्रिया,* पृ0 12
3 चन्द्रबलि पाण्डेय- *केशवदास,* पृ0 45
4 डा. पुष्पलता - *रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसइयो का तुलनात्मक अध्ययन,* पृ0 87
5 डा. फैयाज अली खान - *भक्तवर नागरीदास (अप्रकाशित शोधग्रन्थ),* पृ0 20
6 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य,* पृ0 100
7 P. Banerjee - *The Life of Krishna in Indian Art*, P. 40

जिसका कारण सावंतसिंह का स्वयं चित्रकार व कलापारखी होना है। चित्रकार नागरीदास को यह तथ्य भलीभाँति ज्ञात था कि शब्दचित्र किस प्रकार लिखे जाने पर तूलिका से खींचे जाने के योग्य हो सकते हैं।[1] चित्रकारों ने काव्य के आधार पर चित्रण करने के लिये देश काल, समय परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न माध्यमों का प्रयोग किया है। यह माध्यम विशेष रुप से भित्तिचित्र, पटचित्र, पोथी चित्र तथा लघु चित्र के रूप में मिलते हैं। अजन्ता के भित्तिचित्र विभिन्न जातक कथाओं पर आधारित हैं। अनेक ताड़पत्रीय सचित्र बौद्ध एवं जैन सचित्रग्रन्थ रामायण, महाभारत, भागवतपुराण, गीतगोविन्द, रसिकप्रिया, बिहारी सतसई आदि का चित्रण राजस्थान की विभिन्न शैलियों में बहुलता से हुआ है जो न केवल चित्रकला के इतिहास में वरन् काव्यजगत के क्षेत्र में भी अध्ययन के विस्तृत आयाम खोलते हैं।[2]

प्राचीन भारत में काव्यालोकन व चित्रण की परम्परा मुख्यरुप से भूर्जपत्र अथवा ताड़पत्र पर ही रही है। इसी प्रवृत्ति के कारण जैन भण्डारों व संग्रहालयों में अनेकों सचित्रग्रन्थ संग्रहित हैं।[3] इस समय की सचित्रग्रन्थ चित्रण परम्परा कला व साहित्य दोनों के लिये महत्वपूर्ण थी और राजस्थानी शैली के उद्भव तथा विकास में इसी परम्परा ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। 'सावगपड़िगणसुत्त चुन्नी' (सावक प्रतिक्रमण सूत्रचूर्णी) ताड़पत्र पर चित्रित राजस्थान का प्रथम महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जो कि सन् 1260 में आहाड़ (उदयपुर) में गुहिल्ल तेजसिंह के राज्यकाल में चित्रित हुआ। बारहवीं शती में कागज के निर्माण के साथ-साथ ग्रन्थ निर्माण व चित्रण परम्परा में उल्लेखनीय प्रगति हुयी।[4] कागज पर चित्रित प्रारम्भिक ग्रन्थों में 1277 का 'उत्तराध्ययन सूत्र' तथा 1279 का वाचस्पति मिश्र कृत न्यायतात्पर्य टीका जैसलमेर के भण्डार गृहों में आज भी सुरक्षित है। बारहवीं शती से लेकर पन्द्रहवीं शती तक कागज व ताड़पत्र दोनों पर ही ग्रन्थ निर्माण का कार्य होता रहा परन्तु बाद में कागज की चित्रोपयोगिता के कारण पोथी चित्रण की अपेक्षा इस पर ग्रन्थ निर्माण का कार्य अधिक होता रहा।[5] सगुण भक्ति आन्दोलन तथा मुगल साम्राज्य की स्थापना ने इसके प्रसार में और सहयोग दिया।[6] सगुण भक्ति आन्दोलन ने जनमानस को नये उत्साह व प्रेरणा से भर दिया। विचारों की नवीन शक्ति पाकर भक्ति रस की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गयी जिसके फलस्वरुप राम व कृष्ण की लीलायें काव्य तथा चित्रकला के माध्यम से साकार हो उठीं।[7] कथ्य की एकता के कारण काव्य को आधार बनाकर ग्रन्थ चित्रित करने की परम्परा और अधिक विकसित होती गयी। लगभग 1450 ई0 के आसपास कृष्णलीला से सम्बन्धित गीत गोविन्द तथा बालगोपाल स्तुति का चित्रण मिलता है। 1450 ई0 मे अपभ्रंश शैली में चित्रित बसन्तविलास के कुछ चित्र 'फियर आर्ट गैलरी, वाशिंगटन' में सुरक्षित हैं। 79 सुन्दर चित्रों से अंकित यह पटचित्र श्रृंगारप्रधान हैं। इसमें मानवाकृतियों का चित्रण विशेष रुप से द्रष्टव्य है।[8]

---

1 P. Banerjee - *The Life of Krishna in Indian Art* , P. 40
2 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य,* पृ0 18
3 वही, पृ0 45
4 रायकृष्णदास -*भारतीय चित्रकला,* पृ0 10
5 K. Khandelwala- *Rajasthani Painting* , P. 18
6 वही, पृ0 20
7 मीरा श्रीवास्तव - *कृष्ण काव्य में सौन्दर्य बोध और रस की अनुभूति,* पृ0 40
8 वही, पृ0 40

मुगलशासकों के समय इस परिपाटी में और अधिक चित्रों का निर्माण हुआ। सम्राट अकबर ने बाबरनामा, अकबरनामा, रज्मनामा, तूतीनामा आदि के अतिरिक्त महाभारत, अनवार-ए-सुहैली आदि का कलात्मक चित्रण करवाया।[1] मुगलशैली, राजस्थानी शैली तथा पहाड़ी शैली में सूफीकाव्य, रामकाव्य, कृष्णकाव्य, बारहमासा, ऋतुवर्णन, रागरागिनी आदि पर जिन पोथीचित्रों व लघु चित्रों का निर्माण हुआ है वह सचित्रग्रन्थों की विकास परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। पोथीचित्रों की भांति लघुचित्रों का भी निर्माण हुआ। इनके निर्माण व चित्रण करने की पद्धति पोथी चित्रण जैसी थी। ऐसे चित्रों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं- शीर्षक युक्त, शीर्षक युक्त तथा पद या छन्द युक्त। बारहमासा, ऋतुवर्णन, रागरागिनी, प्रेमलीलायें आदि काव्य के महत्वपूर्ण अंशों पर बने लघुचित्रों का विशाल भण्डार सुरक्षित मिलता है। काव्य और चित्रकला के सम्बन्ध निर्धारण से यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि काव्य तथा चित्रकला का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध लगभग प्रारम्भ से ही रहा है।[2] यह भारतीय चित्रकला की विशेषता रही कि उसने काव्यगत शब्दचित्र को साकार रुप प्रदान कर दिया।[3]

राजपूत पहाड़ी आदि शैली के चित्रकारों ने संस्कृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी साहित्य की मध्ययुगीन भक्ति व रीतिकालीन विषयक कृतियों का ही निर्माण किया है। इसीलिये भक्तिकाव्य तथा रीतिकाव्य के भाव गाम्भीर्य को समझने के लिये इन्हीं भावभूमि को लेकर समस्त मध्ययुगीन शैलियों का निर्माण हुआ है।[4] अतः मध्यकालीन चित्रकला का अध्ययन हिन्दी साहित्य के अध्ययन के बिना अपरिपक्व व अधूरा ही रहेगा। इस समय कवि जो रचित करता था चित्रकार उसी को अपनी तूलिका का विषय बनाता था और अनेक बार तो कलाकार जो अंकित करता था कवि उसे अपनी कविता में प्रस्तुत करता था।[5]

किशनगढ़ शैली के लघुचित्र श्रृंगार भावना तथा कलाकारों की साधना के जीवन्त उदाहरण हैं। इस शैली के विषय प्रधानतः श्रृंगारिक भावनाओं से ओत-प्रोत राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं, नायक-नायिका मिलन तथा मानचित्रण ही रहा है।[6] इस प्रकार राजस्थान की अन्य शैलियों में भी चित्रकला का मूल आधार श्रृंगार ही रहा है। राधा-कृष्ण सम्बन्धी ग्रन्थों के अतिरिक्त भगवद्गीता, सूरसागर, गीतगोविन्द,[7] तथा नायक-नायिका सम्बन्धी ग्रन्थों में रसिका प्रिया, बिहारी सतसई रसराज आदि भक्तिकालीन व रीतिकालीन ग्रन्थों को आधार मानकर 1600 से 1900 ई0 के मध्य राधाकृष्ण सम्बन्धी लोकात्मक माधुर्य भाव का जितना अधिक चित्रण हुआ है उतना अन्य किसी भाव का नहीं हुआ। रसिकप्रिया तथा गीतगोविन्द पर आधारित मारवाड़ शैली के चित्र अत्यन्त प्राणवान व सुन्दर बन पड़े

---

1 Percy Brown - *Indian Painting Under the Great Mughals*, P. 20
2 Krishna *Legend in Pahari Painting, Lalit Kala Akedemi*, P. 22
3 कलानिधि, *अंक-3*, पृ0 27
4 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 18
5 वही, पृ0 20
6 प्रभुदयाल मित्तल - *ब्रज की कलाओं का इतिहास*, पृ0 438
7 कपिल वात्स्यायन - *जयदेव के गीतगोविन्द के चित्र*, पृ0 4

हैं।[1] इसके अतिरिक्त मूलरूप से ढोलामारू, जिहालदे आदि विषयों पर भी सुन्दर चित्रण कार्य देखने को मिलता है। कबूतर उड़ाती स्त्रियां, पेड़ की डाल को पकड़कर झूला झूलती स्त्रियां तथा श्रृंगार करती स्त्रियां आदि विभिन्न शैलियों की सर्वोत्तम कृतियां हैं। रसिकप्रिया पर आधारित चित्र जो बूंदी शैली में बने हैं मन को मोह लेने वाले है। कोटा शैली का अपना एक अलग विशिष्ट एवं स्वतन्त्र अस्तित्व रहा है। बूंदी के चित्रों में राजस्थानी संस्कृति का विकास पूर्णरूप से दृष्टिगत होता है[2] तथा किशनगढ़ की लघुचित्र शैली की तरह यहां की कलाकृतियां भी आकर्षण का केन्द्र रही हैं।

इस तरह राजदरबारों के संरक्षण में पल्लवित होने वाली चित्रकला में एक तरफ तो राजसी वैभव तथा ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति की गयी है, वहीं दूसरी ओर वल्लभसम्प्रदाय की प्रेमशक्ति सम्बन्धी माधुर्य भावना ने चित्रकारों को धार्मिक भावना से पृथक नहीं होने दिया।

इस समय श्रृंगार की भावधारा लोकसमाज और धार्मिक पीठों में भक्ति के नाम पर सामन्ती वैभव में राधा-कृष्ण के बहाने नायक-नायिका के भेद रूप में कृष्ण काव्य तथा राजस्थानी चित्रकला में एक साथ अभिव्यंजित होती दिखलायी पड़ती है।[3] कवियों ने राधा-कृष्ण के बहाने श्रृंगार के रतिभाव का विस्तृत चित्रण किया। साथ ही इन सभी शैलियों में जनजीवन की झांकी का जो स्वरूप व्यक्त हुआ है उसे तत्कालीन जीवन का उदाहरण माना जा सकता है। चित्रों में उस समय के लोगों के क्रिया-कलाप, उनकी आत्मा, उनकी वेशभूषा इत्यादि की स्पष्ट छाप दिखायी पड़ती है।[4] घर, खेत, खलिहान, तीज, त्यौहार, मेले आदि सभी में उनकी भावनाओं व उमंगों की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। समस्त नर-नारी के जीवन की अभिव्यक्ति कलाकारों में कुछ इस प्रकार की गयी है कि उनकी सरलता, स्वच्छन्दता व स्वाभाविकता अनायास ही दर्शकों के लिये उदाहरण बन जाती है।[5] वह चाहे उनके घर के भीतर की संस्कृति हो चाहे बाहर की। उनका सम्पूर्ण जीवन भारतीय संस्कृति का द्योतक है। उसमें प्रेम, भक्ति तथा श्रृंगार का स्वरूप ऐसा है कि अन्यत्र ऐसा उदाहरण मिलना कठिन है।

साहित्य के आधार पर वैष्णव सम्प्रदाय में भी चित्रण की परम्परा प्रारम्भ से मिलती है। यह भक्ति मार्ग एकदम विशुद्ध रूप से धर्म की भावना से सम्बन्धित एक रसात्मक तथा भावात्मक विकास है। यह भक्ति परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से ही चली आ रही है जिसकी रसधार में डूब कर भारतीय जनमानस का जीवन समय-समय पर प्रेम व भक्ति की रस भावना से ओतप्रोत होता रहा है।[6] कृष्ण से सम्बन्धित यह वैष्णव

---

1 रणधीर सिंह - *कविवर बिहारी लाल और उनका युग,* पृ0 40

2 *Rajput Painting at Bundi Kota,* P. 12

3 सन्ध्या श्रीवास्तव- *राजस्थानी शैलियों में कृष्ण के विविध स्वरूपों का चित्रण एक समीक्षा,* (अप्रकाशित शोधग्रन्थ), पृ0 88

4 पदमश्री रामगोपाल विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2, मोहनलाल गुप्त-*किशनगढ़ चित्रशैली की प्रेरणा बणीठणी.* पृ0 181

5 राजकिशोर सिंह एवं उषा यादव - *प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति,* पृ0 5

6 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य,* पृ0 55

आन्दोलन ही किशनगढ़ चित्र शैली का प्रमुख आधार बना। इस समय तक धार्मिक आन्दोलन अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुके थे तथा माधुर्य भावना के कारण ही कृष्ण भक्ति आन्दोलन को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया। इसका कारण हम मान सकते हैं कि तत्कालीन समाज में जनता का वाममार्ग के प्रति बढ़ते आकर्षण को रोकने के लिये कृष्ण भक्ति का यह स्वरूप विकसित हुआ होगा।[1]

किशनगढ़ शैली के नायक कृष्ण की चर्चा प्राचीनकाल से ही साहित्यों में मिलती है। उनका प्राचीनतम् उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है जिसमें उन्हें आंगिरस ऋषि कहा गया है।[2] भगवद्गीता तथा महाभारत मे कृष्ण का उपास्यस्वरूप, लोकरक्षक और लोकमंगलकारी था जिसमें शक्ति, शील, सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य सबका समन्वय मिलता है।[3] परन्तु बाद में शनैः-शनैः कृष्ण का यह लोकमंगलकारी स्वरूप तिरोहित होता गया तथा इसके स्थान पर ऐसे स्वरूप की प्रतिष्ठा बढ़ती गयी जो घनिष्ठ प्रेम के अवलम्बन के रूप में विख्यात है और कृष्ण के इस माधुर्य स्वरूप का अंकन श्रीमद्भागवत में मिलता है। जिसमें कृष्ण की बाललीला व प्रेमलीला का बहुत ही स्वाभाविक अंकन हुआ है। इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के जिस व्यापक स्वरूप की चर्चा हुई है उसे ही परवर्ती कवियों, भक्तों तथा आचार्यों ने भावाभिव्यंजना एवं सिद्धांतों के स्थापना के लिये इसे आधार ग्रन्थ माना। [4]

कृष्णभक्ति आन्दोलन के महान प्रचारक व अग्रदूत चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण के माधुर्य पक्ष का प्रचार कर समाज में एक नई जागरूकता उत्पन्न की। तन्मय भावनायें, मधुर कल्पनायें व विरह अनुभूतियों से ओत-प्रोत चैतन्य सम्प्रदाय में कृष्ण भक्ति का माधुर्य व रस भाव विशेष उल्लेखनीय है। चैतन्य महाप्रभु ने ईश्वर को प्रेमी तथा आत्मा को प्रेमिका के रूप में माना। राधा-कृष्ण की माधुर्य भक्ति का प्रचार सोलहवीं शती में बंगप्रदेश से प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे ब्रज व राजस्थान के विभिन्न स्थानों में फैल गया।[5] इसके बाद कृष्ण सम्प्रदाय के महान पोषक वल्लभाचार्य ने उत्तरी भारत में कृष्ण के मधुर स्वरूप को अपनाकर इस आन्दोलन को महत्व प्रदान किया।

वल्लभाचार्यजी पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक थे। 'पुष्टि' का अर्थ है 'अनुग्रह' अर्थात् यह मार्ग भगवान कृष्ण के अनुग्रह का मार्ग है। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों का उद्देश्य भगवान की कृपा द्वारा भगवत प्रेम को प्राप्त करना था। [6] वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को पूर्णानन्दस्वरूप, पूर्णपुरुषोत्तम, परमब्रह्म माना है। इनके प्रभाव से कृष्णभक्ति में काव्य तथा अन्य ललितकलाओं के द्वारा एक नवीन आन्दोलन ने जन्म लिया जिसमें अष्टछाप कवियों की स्थापना हुई। इन कवियो ने भगवान कृष्ण के चरित्र नायक को रूप में उनके माधुर्य पक्ष की महिमा का वर्णन किया है। [7]

---

1 शंभुरत्न त्रिपाठी - *समाजशास्त्रीय विश्वकोष*, पृ० 25
2 डा. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ - *हिन्दी साहित्य में कृष्ण*, पृ० 5
3 वही, पृ० 5
4 डा. सरनाम सिंह शर्मा - *भक्ति दर्शन*, पृ० 45
5 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी - *रीतिकालीन कविता एवं श्रृंगार रस का विवेचन*, पृ० 212
6 डा. दीनदयाल उपाध्याय - *अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय*, पृ० 395
7 वही, पृ० 396

यद्यपि वल्लभाचार्य द्वारा कृष्ण की उपासना को प्रमुखता दी गई थी परन्तु उनके मतावलम्बी अष्टछाप कवियों ने रासविहारी एवं प्रवासी कृष्ण के मधुर व भावमय चित्र को प्रस्तुत किया। निः सन्देह पुष्टिमार्ग की यह नवचेतना मनमोहक एवं प्रेरक थी जिसमे श्रृंगार एवं वात्सल्य रस से सनी भक्तिधारा को सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रवाहित किया।[1]

किशनगढ़ के संस्थापक वल्लभ सम्प्रदाय से दीक्षित थे तथा वे नृत्य गोपाल की आराधना करते थे। राजा रूपसिंह वल्लभसम्प्रदाय के गुरु के प्रपौत्र श्री गोपीनाथ के शिष्य थे। उन्होंने कल्याणराय की स्थापना कर वैष्णव धर्म को अपने राज्य मे बढ़ावा दिया।[2] किशनगढ़ में पुष्टिमार्ग का इतना अधिक प्रभाव था कि बादशाह शाहजहाँ ने किशनगढ़ के शासक राजा रूपसिंह को वल्लभाचार्य का एक चित्र भेंट किया था।[3] वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने की परम्परा का विकास राजा सावंतसिंह के काल मे भी मिलती है। यह गोपीनाथ के प्रपौत्र रणछोड़जी के शिष्य थे। इन्होंने राजपाट त्याग दिया तथा वृन्दावन में जाकर कृष्ण की पूजा में रम गये।[4]

इस राज्य के शासकों ने ही नहीं वरन् रानियों, राजकुमारियों तथा पासवानों ने भी पुष्टिमार्गीय आन्दोलन को महत्व प्रदान किया। नागरीदास की माता बंकावतजी ने श्रीमद्भागवत्गीता का छन्दोबद्ध अनुवाद किया तथा बहन सुन्दरकंवरि और प्रेयसी बणीठणी ने भी अनेकों कृष्णभक्ति सम्बन्धित रचनायें कीं।[5] इस प्रकार काव्य तथा चित्रकला के विकास एवं प्रसार में सम्प्रदायवादी आचार्यों व भक्तों ने कृष्ण के रति भाव के जो इन्द्रधनुषी स्वरूप प्रस्तुत किये वही बाद मे कवियो तथा चित्रकारों के चित्रण के आधार रहे हैं। राजा तथा रानियों के स्वंय चित्रकार व कवि होने के कारण यह स्वरूप निरन्तर प्रवाहित होता रहा।[6]

चित्र तथा रस का सम्बन्ध सदैव से प्रमाणित रहा है क्योंकि सभी कलाये आनन्द की द्योतक हैं। सूक्ष्म से स्थूल तक सभी कला विधाओं में शब्द, स्वर, वर्ण, आकारों से तादात्म्य होने पर व्यक्ति आनन्द का अनुभव करता है। परन्तु चित्र के शब्द माधुर्य से संगीत का स्वर माधुर्य रसोत्पादन में अधिक सूक्ष्म है। चित्र काव्य से अधिक संवेदनशील है क्योंकि चित्र में वर्णित दृश्य की प्रत्यक्ष अनुभूति नेत्रों के माध्यम से हमारे हृदय पर सीधा प्रभाव डालती हैं।[7] जैसा कि चित्र फलक 1 में अभिव्यंजित हो रहा है। चित्र में राधा के सुन्दर नेत्र झुके हैं और कृष्ण बड़ी चपलता के साथ राधा को निहार रहे हैं। चित्र फलक 35 में राधा व कृष्ण कदम्ब के वृक्षो के झुरमुटों के मध्य खड़े चित्रित हैं और राधा कृष्ण अर्थात् नायक और नायिका बड़ी ही आतुरता व लालसा के साथ एक दूसरे को निहार रहे हैं। चित्र फलक 38 कृष्ण राधा से कुछ आग्रह करते से प्रतीत हो रहे हैं जैसा कि

---

1 डा. सुधीन्द्र कुमार - *रीतिकालीन श्रृंगार भावना के स्रोत,* पृ0 15
2 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 8
3 वही, पृ0 8
4 डा. फैयाज अली खान - *भक्तवर नागरीदास (अप्रकाशित शोधग्रन्थ),* पृ0 75
5 डा. सावित्री सिन्हा- *मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ,* पृ0 170
6 P. Banerjee - *The Life of Krishna in Indian Art*, P. 45
7 पद्मश्री रामगोपाल *विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ,* भाग-2, पृ0 39

उनके नेत्रों से अभिव्यंजित हो रहा है और पृष्ठभूमि में झाड़ी के पीछे अंकित दो सखियां इनकी मनोदशा को देख रही हैं। इन चित्रों में भाव तथा प्रेमरस की भावना दर्शकों के मन में अनुभूति जगाने में समर्थ होती हैं।[1]

किशनगढ़ के चित्रों में नेत्रों द्वारा भावों को व्यक्त करना एक महत्वपूर्ण विशेषता है।[2] चित्रफलक 40 जिसमें कृष्ण राधा की ओढ़नी पकड़े हुये हैं, में नायक-नायिका की मनोदशा नेत्रों द्वारा स्पष्ट रूप से अभिव्यंजित हो रही है। साथ ही इस चित्र में पक्षियों तथा प्रकृति का अंकन बड़ा ही लावण्यपूर्ण है। सारस युगल एवं हिरण-हिरणी के नेत्र क्रोध का भाव दर्शा रहे हैं। जिस तरह काव्य में भाव तथा रस का अलग-अलग महत्व है उसी तरह चित्रकला में भी भावचित्र तथा रसचित्र का विधान है। अतः चित्रों में भी रस उसी प्रकार प्रमाणित होता है कि जैसे कि काव्य में। ललित कलाओं को साहित्य विधाओं के समक्ष रखकर उसे ब्रहमस्वरूप माना गया है।[3]

किशनगढ़ के काव्य तथा चित्रकला में पर्याप्त समानता देखने को मिलती है। चित्रों में काव्य की आत्मा की झलक दिखलायी पड़ती है तो चित्रों की रंग व रेखाओं से काव्य मुखर हो उठे हैं।[4] सावन्तसिंह स्वयं कलाकार थे और वे इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि किस प्रकार के शब्दों को चित्र के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। नायक-नायिका अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रकृति के मोहक वातावरण में किस प्रकार कर सकते हैं इस प्रकार के मनोभावों का अंकन नागरीदास ने इस पद में किया[5] -

''कुंज ले आवत है जमुनातटि
नागरनागरि संगलिये।
चंद की चाँदनी छाय रही है,
तैसेई स्वेत सिंगार किये।
गावत राग जगावत सहचरि,
आवत आसव प्रेमपिये।
देखि लगी नौका सरिता तट,
नागरिया आनन्द लिये।''
(नागरसमुच्चय पदमुक्तावली)

प्रस्तुत पद में घने कुन्जों का और नागरनागरी का यमुनातट की ओर आने का सुन्दर गत्यात्मक चित्रण है, चन्द्रमा की श्वेत चॉदनी चारों ओर फैली है तथा अभिसार हेतु वैसे ही श्वेत वस्त्राभूषणो का उन्होनें श्रृंगार सजा रखा है। श्वेत और गुलाबी वस्त्राभूषणों की छटा अद्वितीय है। साथ ही प्रकृति का रंगीन वातावरण इस शैली की वर्णयोजना का अनुपम उदाहरण है।[6]

---

1 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 17
2 रामचरण शर्मा व्याकुल - *राजस्थान की लघुशैलियाँ*, पृ0 25
3 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme in Rajasthani Miniature Painting*, P. 73
4 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 166
5 वही, पृ0 167
6 डा. प्रेम शंकर द्विवेदी - *राजस्थानी लघुचित्रों में गीतगोविन्द*, पृ0 75

किशनगढ़ की चित्रकला में राधा-कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं का धार्मिक एवं सामन्ती वातावरण में उन्मुक्त चित्रांकन किया गया है।[1] वास्तव में श्रृंगार रस ने लौकिक और अलौकिक दोनों जीवन को युगों-युगों से अपने में रसमग्न कर समाहित कर रखा है। काव्य की भांति चित्र कला में कहीं-कहीं नवरसों की व्याप्ति मिलती है। किन्तु काव्य की भांति चित्रकला में रसराज श्रृंगार प्रमुख रुप से व्याप्त रहा[2] और श्रीकृष्ण ही उन नवरसों के नायक रहे। श्रीकृष्ण के शील,शक्ति और सौन्दर्य प्रेम के गुणों में कलाकारों का मन अधिक रमा है। चित्रों में कृष्ण की वेशभूषा व चेष्टाओं से विभिन्न रसों का भावानुकूल अंकन किया है। चित्र फलक 38, 40 में नायक-नायिका का पारस्परिक प्रेम भाव जो रति कहलाता है, उनके मन में संस्कार रुप से विद्यमान रति या प्रेम रसावस्था में पहुंचकर जब आस्वादन योग्यता को प्राप्त करता है तब उसे श्रृंगार रस कहते हैं।[3] नौ रसों में श्रृंगार रस को प्रधानता दी जाती है। संयोग तथा वियोग जैसे दो पक्षों में विस्तृत होने के कारण श्रृंगार रस की व्यापकता और भी बढ़ जाती है। भरतमुनि ने श्रृंगार रस के स्वरूप को सांगोपांग रूप में विवेचित किया। श्रृंगार के भाव में उदात्तता एवं पवित्रता का समागम करके इसे वासनाजन्य भावों से सर्वथा मुक्त रखने का प्रयास किया है। 'श्रृंगार शुचि उज्ज्वलः' के आधार पर श्रृंगार को पवित्र रस के रूप में उज्ज्वल रुप प्रदान किया। उज्ज्वल तथा मनोहर वेशात्मक होने के कारण इसका नाम श्रृंगार रस पड़ा। हिन्दी साहित्य की ही नहीं वरन् प्रायः सभी भारतीय कलाओं की प्रमुख विशेषता श्रृंगारपरकता रही है।[4] नायक-नायिका की मिलन अवस्था संयोग कहलाता है। राधा-कृष्ण संयोग के अनन्त भंडार हैं। कलाकार चित्रों में राधा-कृष्ण और अन्य गोपियों के साथ नृत्य एवं अन्य क्रीड़ाओं द्वारा संयोग श्रृंगार की रसानुभूति कराते हैं।[5] चित्र फलक 35 में चित्रकारों ने राधा-कृष्ण को माधुर्यभाव की विभिन्न लीलाओं को आधार मानकर दाम्पत्य, रति व श्रृंगारिक वात्सल्य रस के असंख्य चित्रों को प्रस्तुत किया। चित्र फलक 9, 20, 39, 40, 41।

किशनगढ़ के कलाकारों ने भगवान की अलौकिक लीलाओं का तथा राधा व गोपियों के साथ संयोग पक्ष का प्रमुख रूप से चित्रण किया है।[6] यद्यपि यहां चित्रों में श्रृंगार रस के उपरान्त वीर रस को महत्व मिला है परन्तु वीर रस के मुख्य आधार भगवतगीता तथा आखेट दृश्य रहे हैं। नागरीदास ने राधा-कृष्ण के संयोग का जो भक्तिपूर्ण विस्तृत भावांकन किया है, उनके अनेक पदों को आधार बनाकर किशनगढ़ के लघुचित्रों में भावनामूलक चित्रण हुआ है।[7] किशनगढ़ के लघुचित्रण में राधा-कृष्ण की श्रृंगारिक भावना का परिप्रेक्ष्य विभिन्न स्थितियों में मिलता है जैसे जल क्रीड़ा, हिंडोल क्रीड़ा, वन विहार या कुंज लीला, लीला विलास, बसन्त विलास तथा होली इत्यादि।[8]

---

1 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P.84
2 डा. जनेश्वर प्रसाद मिश्र - *रीतिकालीन श्रृंगारिकता एवं ललित कलायें*, पृ0 40
3 वहीं, पृ0 48
4 वाचस्पति गैरोला - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 8
5 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 7
6 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 3
7 डा. सुधीर कुमार - *रीतिकालीन श्रृंगार भावना के स्रोत*, पृ0 25
8 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 179

किशनगढ़ के चित्रों मे राधा-कृष्ण के रतिभाव के उद्दीपन में जल क्रीड़ा का महत्वपूर्ण स्थान है। यमुना नदी जिसे राजस्थान के सभी कलाकारों ने अपनी तूलिका का विषय बनाया है, के जल में राधा-कृष्ण एवं अन्य गोपियां जलविहार करते हैं और संयोग श्रृंगार की रसानुभूति कराते हैं। यमुना नदी व्रज के लोगों के जीवन का केन्द्र स्थल है। किशनगढ़ शैली में इस तरह के चित्र नहीं प्राप्य हैं। यद्यपि चित्रो में नदी का अंकन तो मिलता है परन्तु उसमे राधा कृष्ण को क्रीड़ा करते नहीं दिखाया गया है। उन्हे अधिकांशतः नदी के समीप बैठे अंकित किया जाता रहा है या नदी में विहार करते अंकित किया है। चित्र फलक 8 में श्रीकृष्ण को नदी में तैरते अंकित किया गया है।[1] जिसमें श्रीकृष्ण के लंबे बाल उनके कंधे पर लटक रहे हैं और वे नदी में तैरते हुये तट की ओर बढ़ रहे हैं जहां कुछ पनिहारिनें खड़ी हुयीं है।[2] कुछ गोपियां जल स्नान कर रहीं हैं तथा दो ग्वालिनें आपस मे बात कर रहीं हैं, एक ग्वालिन अपने गीले केश सुलझा रही है। चित्र का सम्पूर्ण वातावरण तथा प्रयुक्त रंग योजना सभी श्रृंगारिक भाव की रसानुभूति कराते हैं।

चित्र फलक 21 में राधा हल्के नीले रंग के वस्त्र पहने चटाई पर बैठी संगीत सुन रही है। उनके सामने कुछ स्त्रियां बैठीं हैं जिन्हे संगीत के विभिन्न वाद्यों को बजाते हुए अंकित किया गया है। स्लेटी रंग से बने आकाश में पूरा चांद निकलता दिखाई दे रहा है जो राधा व उनकी सखियों के मुख सौन्दर्य की शोभा को और अधिक बढ़ा रहा है। श्रीकृष्ण पृष्ठभूमि में बनी झील में कमलगुच्छों को एकत्रित कर रहे हैं जो कि सम्भवतः राधा को देने के लिए। सम्पूर्ण वातावरण अत्यन्त संगीतमय तथा रूमानी है। आकाश में निकला चांद वातावरण की मादकता को और अधिक बढ़ाता सा प्रतीत हो रहा है।

कुंज विहार, कुंज लीला, नौका विहार आदि प्रसंगों पर किशनगढ़ के चित्रकारों ने असंख्य चित्रों की रचना की है जो नायक-नायिका की संयोगावस्था को उद्दीप्त करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं। हिन्दी के कृष्ण काव्य में भी स्थान-स्थान पर ऐसे प्रंसगों का वर्णन हुआ है।[3] प्रकृति के स्वच्छन्द परिवेश का जो सुन्दर वर्णन हिन्दी साहित्य तथा काव्य में हुआ है, उसी के आधार पर किशनगढ़ शैली में प्रकृति के खुले सौन्दर्य का अकंन विशेष रूप से हुआ है।[4] प्रकृति का अंकन उद्दीपन रूप में किया गया है जो राधा कृष्ण के प्रेम मिलन में और अधिक सहायक है। कलाकार निहालचन्द ने नागरीदास के वनविहार तथा नौकाविहार से सम्बन्धित पदों पर आधारित जो कृतियां निर्मित की हैं।[5] वह काव्य के भावों के सजीव चित्रण का अनुपम उदाहरण है[6] -

---

1 Francis Brunel- *Splendour of Indian Miniature Painting*, P. 50

2 वही, पृ0 40

3 Walter Spink - *The Quest of Krishna*, P. 20.

4 वाचस्पति गैरोला - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 163

5 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 16

6 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 182

''जमुना जगमग जोन्ह जागिनी
कमल फूल सुखकारी ।
मिलवत बीन प्रवीन सहचरी
गावत परमपियारी ।
कबहुंक नीरज नीर कर लेत हैं
मागिनि स्याम सहारी।''

श्रृंगारिक भावों को व्यक्त करने के लिये काव्य में जैसी वर्णनात्मकता मिलती है वैसी ही वर्णनात्मकता चित्रों में लाने के लिये कुछ चित्रकारों ने पृष्ठभूमि को दो या दो से अधिक भागों मे विभाजित कर दिया है। चित्र फलक 35 में पृष्ठभूमि दो भागों में विभाजित है एक भाग में नौकाविहार का दृश्य है और सामने वाले भाग में राधा-कृष्ण के मिलन का दृश्य है। जिसमे वे कदम्ब व केले के वृक्षों के मध्य प्रेमालाप में मग्न दिखायी देते हैं। इन सघन कुंजो के मध्य से झांकती सफेद भव्य अट्टालिकायें सम्पूर्ण वातावरण को शीतलता सी प्रदान करती प्रतीत होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो इन वृक्षों की घनी पर्णावली पर हल्की रोशनी से असंख्य प्रभामंडलों की रचना हुई है। सम्पूर्ण दृश्य किशनगढ़ शैली की विशिष्टता से पूर्ण है। चित्र के ऊपरी भाग मे यमुना जल के विशाल परिवेश का अंकन हुआ है और नौका मे बैठे राधा कृष्ण तथा अन्य गोपियां जो हाथ में वाद्य यंत्रों को लिये हैं, का मनमोहक अकंन हुआ है। दूर पृष्ठभूमि में एक बीच की पहाड़ी पर झुंड के रूप में कृष्ण व गोपिकाये चित्रित हैं जो सम्भवतः यह इंगित करता है कि प्रेमीयुगल पहले तो वनप्रान्त में भ्रमण करते हैं और उसके बाद नदी विहार द्वारा उस विश्रामगृह पर आते हैं जहां इस युगल को अपना समय साथ बिताना है।[1]

चित्र फलक 38 राधा-कृष्ण की श्रृंगारिक भावना से ओत-प्रोत बड़ा ही मनोरम चित्र है। चित्र में आम-कुंजों के मध्य राधा-कृष्ण को बैठा अंकित किया गया है। समीप ही नदी में लाल रंग की नौका का अंकन है। प्रेमीयुगल नौका में बैठकर नदी को पार करके लोगों की भेदक दृष्टि से बचने के लिये एकान्त में प्रेमालाप करने के लिये आम्र कुंजो में आ पहुंचे हैं। वे जगत की दृष्टि से स्वयं को बचाना चाहते हैं परन्तु चित्र का कौतुक यह है कि युगलप्रेमी यह नहीं जानते कि दो प्रौढ़ नारियां झाड़ियों के पीछे से श्रृंगारिक क्रीड़ायें देख रहीं हैं। यद्यपि जो सामान्य कथा प्रचलित है उसमें कृष्ण को चरवाहे के रूप में तथा राधा को ग्वालिन के रूप में वर्णित किया जाता है परन्तु इस शैली के अधिकांश चित्रों में राधा-कृष्ण को राजसी युगल के रूप में चित्रित किया है।[2] इस चित्र में भी श्रीकृष्ण एक सुन्दर युवराज के रूप में चित्रित हैं जो हल्के सुनहरे व बैंगनी रंग के वस्त्रों को धारण किये हैं। उनकी ग्रीवा में मोतियों की माला शोभायमान है, उनकी वेशभूषा उस काल के प्रतिमानों को इंगित करती है।[3] उनके एक हाथ मे इत्र की शीशी है, उनके दायीं ओर उनके शौर्य के प्रतीक के रूप में एक तलवार म्यान में रखी चित्रित की गई है। कृष्ण के समान राधा को भी एक सुन्दर नारी के रूप मे देखते हैं। यह चित्र देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह सावन्तसिंह तथा बणीठणी के उत्कट प्रेम का चित्र है। जिसे चित्रकार निहालचन्द ने वल्लभ सम्प्रदाय पंथ

1 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 34
2 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P. 83
3 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme in Rajasthani Miniature Painting*, P. 78

के माध्यम से व्यक्त किया है परन्तु प्रेमीयुगल के सिर के पीछे चित्रित प्रभामंडल यह संकेत करता है कि यह विषय वस्तु कृष्ण की प्रेमलीला से ही सम्बन्धित है।[1] चित्र में राधा कृष्ण एक दूसरे को प्रेमभाव से निहार रहे हैं। राधा के ओठो पर टिकी उंगली आश्चर्य का भाव प्रकट कर रही है कि कोई व्यक्ति इतना भव्य और सम्मोहक भी हो सकता है। चित्र में चटकीले लाल रंग की नौका का चित्रण इस चित्र मे व्यक्त प्रमुख भाव (संयोग श्रृंगार) के बिल्कुल अनुरूप हुआ है। चित्र देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि राधा-कृष्ण की मुख्य आकृतियों को निहालचन्द ने बनाया है तथा चित्र का शेष भाग अन्य कलाकारों द्वारा पूर्ण हुआ है। चित्रों में प्रदर्शित कलाकारों की तकनीकी विचारों की परम्परा जो अकबरकालीन मुगल शैली के प्रारम्भ से चली आ रही थी, का प्रभाव इस शैली के साथ-साथ राजस्थान की अन्य शैलियों तथा पहाड़ी शैलियों में भी दृष्टिगत होता है।[2]

ताम्बूलसेवा[3] नामक चित्र में (चित्रफलक 32) राधा-कृष्ण को नदी के किनारे एक दीवान पर मसनद के सहारे बैठा हुआ अंकित किया गया है जिसमें वे दोनों बड़े ही प्रेम से एक दूसरे को पान खिला रहे हैं। दीवान के चारों तरफ कुछ गोपियां बैठी तथा कुछ खड़ी है। आगे बायीं ओर कुछ ग्वाले खेल रहे हैं एक ग्वाला बांसुरी बजा रहा है तथा एक हाथ जोड़कर अपने प्रिय की आराधना कर रहा है। इन्हें हल्के पीले, हरे व नारंगी रंग के वस्त्र पहने चित्रित किया गया है। चित्र का सम्पूर्ण वातावरण अन्धकारयुक्त सा प्रतीत होता है। पृष्ठभूमि में पीछे बनी झील में एक नाव का अकंन है जिसमें कुछ गोपियां बैठी हुई हैं। आकाश का चित्रण काले तथा नीले बादलों से किया गया है। यह दृश्य सूर्यास्त के बाद तथा रात्रि होने के पूर्व का है। झील के पानी का अंकन गहरे रंग से किया गया है। जिसमें कमल के फूल तैरते अंकित किये गये हैं, परन्तु जहां कृष्ण-राधा बैठे हैं वह स्थान प्रकाश युक्त है। कृष्ण के शीश के चारों ओर सुनहरा प्रभामंडल चित्रित है। वातावरण में व्याप्त शांति को केवल ग्वाले की बांसुरी का मधुर स्वर भंग करता हुआ आनन्दपूर्ण बना रहा है। सम्पूर्ण वातावरण वैष्णवी भावना से ओत-प्रोत है।[4]

चित्र फलक 20 जो सावंतसिंह की कविता पर आधारित है[5] राधा-कृष्ण के प्रेमभाव से ओत-प्रोत है। प्रस्तुत चित्र में कृष्ण के एक हाथ में कमल है तथा दूसरे हाथ में चमेली के फूलों का हार है। जिसे वे राधा को भेंट कर रहे हैं। राधा-कृष्ण की मुखाकृतियां किशनगढ़ की विशेष शैली से ही चित्रित हैं। चित्र के अग्रभाग में बनी संगमरमर की श्वेत बालकनी चंद्रमा के प्रकाश में चमक रही है। बालकनी की छत पर एक पलंग बिछा हुआ है जिसमें रत्न जड़े हैं और उसके पाये चांदी के बने हुये हैं। एक तरफ जलने वाले लैम्प रखे हैं जिनकी आकृति सारस पक्षी के समान है जो राधा-कृष्ण की प्रेम-भावना का सूचक है।[6] चित्र की पृष्ठभूमि में सफेद रंग के भवनों तथा अट्टालिकाओं का अकंन है तथा झील में तैरती नौकाओं का अंकन है। चित्र में राधा कृष्ण एक दूसरे को अत्यंत प्रसन्नमुद्रा में प्रेमभाव से देख रहे हैं।

---

1 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 16
2 M.S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 16
3 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme in Rajasthani Miniature Painting*, P. 78
4 Rooplekha, Vol-XXV, Part I, Banerjee - *Kishagarh Painting*, P. 20
5 M.S. Randhawa - *Indian Miniature Painting*, P. 122
6 वही, पृ0 122

'दो प्रेमियों का मिलन'[1] (चित्र फलक 101) नामक चित्र में राधा अपनी कुछ सखियों के साथ नौका मे बैठी हैं। सामने बैठीं कुछ गोपियां वाद्ययंत्र बजा रहीं हैं और श्रीकृष्ण नौका के बगल में घोड़े पर सवार अंकित है। घोड़ा पानी में आधा डूबा हुआ है। राधा कृष्ण के हाथ पर कुछ रख रही है राधा के पीछे खड़ी कुछ सखियां पंखा झल रही है। दायीं बांयीं तरफ अग्रभाग में झुरमुटों के मध्य कुछ गोपियां खड़ीं हैं जो राधा-कृष्ण की तरफ हाथ से इशारा कर रहीं हैं। चित्र में नायक-नायिका के मिलन की इच्छा को बड़ी ही उत्कंठा से व्यक्त किया गया है।

चित्र फलक 39 में एक श्वेत संगमरमरी मंडप चित्रित है जो वृक्षकुंज से घिरा हुआ है। इन्हीं कुंजों के मध्य प्रेमीयुगल बैठा है और उनकी सेवा में रत आठ दासियां हैं जो पान और सुवासित मसाले अथवा ताजे तोड़े गये चमेली के फूलों से बने हार को पेश करने के लिये तत्पर हैं। राधा का मुख केश अलकों से आच्छादित है तथा उनकी मेहराबदार भौंहे उनकी मुख की सुन्दरता में वृद्धि कर रहीं हैं। राधा के सुन्दर मुख और उनके नेत्रों की चितवन ने कृष्ण को एकदम मंत्रमुग्ध कर दिया है। वे एकटक राधा के सौन्दर्य का पान कर रहे है जो उनकी श्रृंगारिक भावनाओं को उद्दीप्त कर रहा है।[2]

कृष्ण बड़ी कोमलता एवं नफासत के साथ अपनी प्रेयसी को सुवासित पान पेश कर रहे हैं। चित्र का सम्पूर्ण वातावरण अत्यन्त आनन्दमय और प्रेमभावना से पूर्ण है। बेलों के झुरमुटों के मध्य से झांकता चांद वातावरण के प्रेमभाव को और अधिक उद्दीप्त कर रहा है। यह कृति नागरीदास द्वारा लिखी ब्रजसार रचना में से एक पद का चित्रांकन है। जिसमें एक रूपवती के अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन है।[3] कवि कहता है कि 'वह सर्वगुण सम्पन्न है उसके मुख सौन्दर्य से सारा घर व कुंज प्रकाशित हो रहा है। उसकी भौहें कमान के समान तथा नेत्र विशाल किन्तु मनमोहक हैं। उस युवती की चितवन चन्द्रमा की उस लुकती-छिपती किरणों के समान है जो मेघाच्छादित आकाश में अपना सौन्दर्य बिखेरतीं हैं और वह युवक सर्वसुखदाता है जो बड़े ही प्यार के साथ अपनी प्रेयसी को सुवासित पान प्रस्तुत कर रहा है। वह अपनी प्रेमिका के सौन्दर्य पान में इतना लीन हो गया कि उसके अधखुले ओठों के मध्य वह सुनहरा ताम्बूल पत्र भी उसके लिए रखना दुरूह हो रहा है और वह उसके सुन्दर नेत्रों की चितवन के मोहजाल को तोड़ने में विफल है।'' चित्र फलक 26 में राधा-कृष्ण कदम्ब व केले आदि वृक्षों के मध्य घिरे एक मंडप में बैठे हैं।[4] दो दासियां उनके पीछे खड़ीं पंखा झल रहीं हैं और सामने की ओर एक दासी दर्पण लिये खड़ी है। एक दासी तेज कदमो से फूलों की माला लेकर श्रीकृष्ण की तरफ बढ़ रहीं है। प्रकृति का यह सुन्दर स्थल उनके रतिभाव को और अधिक उद्दीप्त करता है।[5]

---

1 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P. 87
2 Basil Gray - *Treasures of Indian Miniature in the Bikaner*, P. 40
3 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 9
4 *Painting of India*, P. 157
5 वहीं, पृ० 158

चित्र फलक 50 में नीलवर्णी कृष्ण एक श्वेत लम्बा वस्त्र धारण किये हाथों में फूल लिये खड़े हैं जबकि राधा शरमाते हुये उनकी तरफ बढ़ रही हैं। उन्होंने अपना आधा मुख घूंघट से ढक रखा है जिससे कि उनके प्रेमी की दृष्टि उनके चेहरे पर न पड़ सके। दो परिचारिकायें राधा के पीछे खड़ी आपस में बात कर रही हैं। यह चित्रण प्रेमी युगल के चित्रण की अपेक्षा साधारण है राधा व कृष्ण के पीछे हरी झाड़ियों का अंकन है, सामने कमल के फूलों से आच्छादित तालाब है और हरी पृष्ठभूमि में झील, भव्य महल और चहारदीवारी से घिरे एक नगर का अंकन है। आसमान में गहरे घने बादल हैं यहां कृष्ण सौम्य राजकुमार के साथ-साथ दैवीय नायक से प्रतीत होते हैं। इस चित्र में राधा-कृष्ण के दैवीय प्रेम का मानवीय रुप में अंकन बहुत ही खूबसूरती से किया गया है। [1]

राधा-कृष्ण नामक चित्र में (चित्र फलक 55) कृष्ण एंव राधा को सफेद रंग के बारजे पर कमल की पंखुड़ियों के आकार वाली शय्या पर बैठे अंकित किया गया है।[2] कृष्ण राजाओं वाली पोशाक पहने हैं। उन्हें अपनी प्रेमिका राधा के मुख की तरफ बढ़ाते अंकित किया गया है। तीक्ष्ण नयन नक्श से युक्त आकृतियां एक दूसरे की पूरक हैं। राधा को शरमाते हुये अंकित किया गया है, कृष्ण का बांया हाथ राधा के कन्धे के ऊपर रखा है। वे पास-पास बैठे चित्रित हैं। वे अपनी आंखों में मिलन का स्वप्न संजोये से प्रतीत होते हैं और अपने स्वप्नों, अपनी भावनाओं और प्रेम संवेदनाओं को पलकों का आवरण सा दिये प्रतीत होते हैं। चित्र में राधा-कृष्ण दोनों आत्मविभोर होकर एक दूसरे में खोये हुये हैं जो कि उनके आध्यात्मिक प्रेम की पराकाष्ठा है।[3]

कुंज में विहार करने के ही कारण भक्तों ने कृष्ण का नाम कुंजबिहारी रख दिया। वे अपनी प्रिया राधा के साथ गलबाहीं कर वृन्दावन की कुंज वीथियों में उन्मुक्त होकर विहार करते हैं जैसा कि उपरोक्त चित्रों में स्पष्ट अभिव्यंजित होता है। वास्तव में प्रकृति के उद्दाम वातावरण का जो लोक कलात्मक चित्रांकन हुआ वह राधा-कृष्ण के मिलन के संयोग सुख को और अधिक मादक बना देता है। राधा-कृष्ण का सुसज्जित वेश गले में बाहें डालकर आत्मविभोर होकर एक दूसरे को देखना सुन्दर अनुभावों की अभिव्यक्ति करता है। किशनगढ़ शैली की यह एक विशेषता है कि ऐसे संयोग तथा वियोगपरक चित्रों में जो भक्ति श्रृंगार के पदों पर आधृत है में नायक-नायिका की सामान्य दृष्टि से परे एक अलौकिक छटा अन्तरव्याप्त रहती है जो लौकिक श्रृंगार की बजाय अलौकिक भाव भक्तिरस और कलात्मक दृष्टि को अभिव्यक्त करती है।[4]

कृष्ण की लीला आनन्दमयी है, रसमयी है। हिन्दी कृष्णकाव्य कृष्ण की लीलाओं से ओत-प्रोत है। उनकी श्रृंगारमयी लीलाओं में रासलीला सर्वोपरि है।[5] रास शब्द रस से बना है 'रसो वै सः' अर्थात् भगवान स्वयं रसरूप हैं, आनन्दस्वरूप हैं।[6] कृष्ण परमात्मा है तो राधा व अन्य गोपियां अनेक जीव हैं। मुक्त जीव परमात्मा के साथ क्रीड़ा

---

1 *Indian Miniture Painting*-Enrenfield Collection, P. 74

2 A.G. Poster - *Realms of Heroism*, P. 181

3 Andrew Topsfield - *Painting from Rajasthan in National Gellery*, P. 41

4 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 183

5 डा. मुंशीराम शर्मा - *सूरदास का काव्य वैभव*, पृ0 171

6 वहीं, पृ0 172

हेतु उसकी लीला मे भाग लेते हैं।[1] गोपिकायें कृष्ण के साथ शरत्पूर्णिमा की चांदनी में यमुना के किनारे रास रचाती है जिसकी कल्पना भागवतपुराण के आधार पर सूरदास तथा अन्य भक्त कवियों ने किया है। कृष्ण के लीला-विलास के चित्रों में रासलीला को कल्पना का आधार बनाकर अनेक सुन्दर चित्रों का निर्माण हुआ है।[2] जिनके आधार पर रासलीला की श्रृंगारपरकता, गत्यात्मकता, लयात्मकता तथा आध्यात्मिकता का चाक्षुषीकरण किया जा सकता है। ऐसे चित्रों में रंग-बिरंगे वस्त्राभूषण, चांदनी रात का मादक प्रभाव कृष्ण की बहुरूपामिता तथा प्रकृति में उद्दीपक वातावरण की रसात्मकता का ज्ञान सहज ही हो जाता है।[3]

गीतगोविन्द पर आधारित चित्र फलक 41 में कृष्ण को गोपियों के साथ नृत्य करते दिखाया गया है। यह चित्र राजा कल्याणराय के समय अट्ठारहवीं वीं शती ई0 में बनाया गया था। चित्र की पृष्ठभूमि मे हरे-भरे वृक्षों का प्रदर्शन बड़े ही क्रमबद्ध ढंग से उनकी विभिन्न जातियों को प्रकट करते हुये अंकित किया गया है।[4] चित्र में सुन्दर गोपिकायें एक खुले स्थान में कृष्ण के साथ क्रीड़ा में लिप्त हैं। कृष्ण दो गोपियों के साथ आलिंगनबद्ध हैं उनमे से एक गोपी उनके कान में कुछ कहने के बहाने बड़ी निपुणता से उनके गालों को चूमती चित्रित की गयी है। अन्य चार गोपियां भाव-विभोर मुद्रा में रास नृत्य कर रहीं हैं। चित्र की दाहिनी तरफ राधा एवं उसकी एक सखी का अंकन है। सखी राधा को रासासिक्त कृष्ण की ओर इंगित कर रही है। राधा कृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र को देखकर दुखित सी प्रतीत हो रही है। साथ-साथ यमुना की कल-कल की ध्वनि भी उनके प्राणों में हलचल पैदा कर रही है।[5] मंद समीर, भौरों की गुनगुनाहट, फूलों का इठलाना, पक्षियों का कूकना राधा को पीड़ा सी देते प्रतीत हो रहे हैं। काव्य में वर्णित अंशों का रंगों, रेखाओं द्वारा चित्रकार ने प्रकृति को चित्र की आत्मा में तिरोहित करके किशनगढ़ चित्र विधा का बड़ा ही अलौकिक एवं माधुर्य चित्रांकन प्रस्तुत किया है। मानों चित्र में राधा व कृष्ण साकार रूप में उपस्थित होकर अपनी लीलाओं का प्रदर्शन कर रहे हों।[6]

चित्र फलक 40 में वास्तव में कलाकार ने उस भावुक क्षण का अंकन किया है जिसमें नायिका के रूप में राधा यद्यपि जानती हैं कि ये क्षण उन दोनों के लिये पूर्ण एकान्त का है परन्तु वे कृष्ण की मनोवृत्ति को जानकर स्वयं को उनसे बचने के लिये एक कविता सी प्रतीत हो रहीं हैं।

यह लघुचित्र सम्भवतः बणीठणी के पदों का ही चित्रांकन है जो रसिकबिहारी उपनाम से कविता करती थी। यह चांदनी रात में नदी तट पर स्थित मण्डप का एक दृश्य है। मण्डप के बाहर कृष्ण एक दीवान पर बैठे हैं और राधा को भी पास बैठने के लिये मजबूर कर रहे हैं। यह लजीली युवती राधा उनसे मिलने तो आ गयी लेकिन अब उनकी प्रेमाकुल चेष्टाओं से बचकर इससे पहले कि वे अपने प्रति सर्मपण के लिये बाध्य न कर लें

---

1 डा. मुंशीराम शर्मा - *सूरदास का काव्य वैभव*, पृ0 173
2 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 184
3 वही, पृ0 185
4 प्रेमशंकर द्विवेदी - *राजस्थानी लघुचित्रों में गीतगोविन्द*, पृ0 75
5 वही, पृ0 75
6 Eric Dickinson -I, P. 17

वहां से चली जाना चाहती है। राधा-कृष्ण द्वारा अपनी ओढ़नी पकड़े जाने पर प्रतिवाद तो करती है किन्तु उसकी मुखमुद्रा यही आभास देती है कि वह कुछ क्षण नायक के संग ही व्यतीत करना चाहती है। इस चित्र का अपना सहज सौन्दर्य है। चित्र के पृष्ठभाग में स्लेटी रंग से बनी झील उसमें लाल रंग की नौका और तारायुक्त आकाश के अंकन से एक सजीव दृश्य का सा आभास दे रहा है यद्यपि इसमें रात्रि के वास्तविक दृश्य को अंकित करने का प्रयास नहीं किया गया है।[1] फिर भी उसी तरह आभासित करने के लिये ताराजड़ित गहरा नीला आकाश तथा आधे चांद का अंकन है। गोल शिखरों पर गहरे हरे वृक्षों से घिरे धुंधला बैंगनी रंग चित्रित है। शय्या बाहर हरे-भरे मैदान में रखी है जिससे यही ज्ञात होता है कि यह राजस्थान की ग्रीष्म ऋतु की एक उष्ण रात्रि का ही दृश्य है। दीवान के सामने रखे तोता-मैना की अलग-अलग पिंजरों में उपस्थिति भी यही दर्शाती है कि राधा कृष्ण के सम्मोहन में बंदिनी हो चुकी है। चित्र के अग्रभाग में हिरण व सारस का जोड़ा अंकित है। यह भारतीय चित्रांकन की एक विशेषता है कि नायक व नायिका के प्रणय को रेखांकित करने के लिये निष्ठावान चिड़ियों या हिरण के युगल स्वरूप का अंकन किया जाता था।[2]

चित्र फलक 1 में राधाकृष्ण के गहन प्रणय के दृश्य का अंकन है। चित्र में रात्रि का दृश्य है, राधा-कृष्ण छत पर बैठे प्रणयलीला में लीन हैं। इसमें राधा को रानी के रूप में कृष्ण को अभिजात्य वर्ग के एक कुलीन युवक के रूप में चित्रित किया गया है।[3] नायक-नायिका दोनों के लम्बे काजल युक्त नेत्र, कमानीदार भौहें प्रत्येक चित्र से पृथक स्वरूप देती हैं। कृष्ण की उंगलियां राधा के घूंघट का स्पर्श कर रही हैं जबकि राधा अपने हाथ से कृष्ण की कलाई पकड़े हुये हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों उनके हृदय की धड़कन उनके प्रेम की मादकता को और अधिक बढ़ा रही है। इस चित्र में कलाकार ने नायक-नायिका की प्रेमभावना को उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।[4]

चित्र फलक 33 जो सांझीलीला के नाम से विख्यात है। राजस्थान में आषाढ़ में पांच दिन सांझीलीला खेली जाती है। इस लीला में केवल कन्यायें भाग लेतीं हैं परन्तु कृष्ण जो अपनी प्रिया से अलग नहीं रह पाते हैं, वे युवती के वेश में इस सांध्यप्रमोद में राधा एवं उनकी सखियों से जा मिलते हैं। चित्र में एक सीढ़ीनुमा उद्यान में राधा एक ऊंचे सिंहासन पर विराजमान हैं और उनके समक्ष हाथ में स्वर्णपात्र लिये नारी वेश में कृष्ण खड़े हैं, उनके चारों ओर राधा की सखियों को अंकित किया गया है। उद्यान के सामने की ओर रंगीन मनमोहक लालपत्थरों से जड़े सुन्दर नमूने वाले फर्श पर एक लावण्यमयी गायिका अपनी सखियों के साथ सबका मनोरंजन कर रही है।[5] अग्रभाग में जो एक कमल-ताल के अन्दर फव्वारों की श्रृंखला है, उसमें तैरती रुपहली मछलियां और दोनों किनारे की तरफ खड़े दो युगल सारस का अंकन है। ये उस प्रेम निष्ठा का प्रतीक है जहां एक पर किंचित मात्र भी विपत्ति आने पर मानों दूसरा जीवित न रहेगा। पृष्ठभूमि में सुनहरे और लाल आकाश के पार्श्व में एक विस्तृत वनप्रान्त है। जहां रात्रि धीरे-धीरे उतरती सी प्रतीत हो रही है। यहां

---

1 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 14

2 Mulkraj Anand - *Album of Indian Painting*, P. 25

3 Mario - *Indian Painting*, P. 21

4 वही, पृ0 22

5 M.S. Randhawa - *Indian Miniature Painting*, P. 7

दिव्ययुगल को सबसे पृथक दिखाने के लिये उनके पीछे सुनहरे रंग के प्रभामण्डल का अंकन किया गया है।[1] राधा के सिंहासन के बगल में सारस, मोर तथा तोते का युगल जोड़ा सभी सामान्य रूप से आराध्य देव कृष्ण एवं उनकी प्रेयसी के मध्य प्रगाढ़ प्रेम को रेखांकित करता है। वल्लभाचार्य सम्प्रदाय के अनुसार मानवीय आत्मा सदैव परमात्मा से मिलने को लालायित रहती है।[2] कृष्ण का राधा के निकट रहने का यही अर्थ है क्योंकि वे उन्हें छोड़कर किसी अन्य का ध्यान नहीं करती हैं। सच्चे अर्थो में यह विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम है।

ऋतुराज वसन्त में रसराज श्रृंगार की कामोत्तेजक उद्दाम भावनायें अधिक मुखर हो उठती है। प्राकृतिक परिवेश मे खिले विभिन्न रंगो के पुष्पो तथा नवीन कपोलों से सारा वातावरण वासन्ती प्रेमानुभूति से सराबोर हो उठता हैं। किशनगढ़ के भक्ति व श्रृंगार विषयक चित्रो में प्रेम व मांसल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में वसन्त के मादक वातावरण का बहुत योगदान रहा है।[3] राधा-कृष्ण व गोपियों का खुले आकाश के नीचे मिलन, विभिन्न प्रकार के वृक्षों के झुरमुटों का अंकन, विभिन्न रंगों के पुष्प-पौधे, विभिन्न पक्षियों का अंकन, लाल पीले रगों से धूमिल होता आकाश, चन्द्रमा की स्वच्छ चटक चाँदनी का अंकन राधा-कृष्ण की प्रेमभावनाओं तथा अनुभूति को और अधिक उद्दीप्त करते हैं।[4] नागरीदास, सूरदास जैसे कृष्ण भक्तकवियों एवं केशव जैसे आचार्य और बिहारी जैसे रीतिपरक कवियों ने वसन्त के मादक वातावरण में राधा-कृष्ण की संयोग लीलाओं का जी भरकर भावांकन किया है।[5] उनके काव्य के तत्सम्बन्धी पदो को आधार बनाकर किशनगढ़ शैली में जो चित्रण कार्य हुआ है, वह उद्दीपन प्रकृति सौन्दर्य की दृष्टि से अतिविशिष्ट चित्रावली का सुन्दर उदाहरण है। चित्र फलक 35 तथा चित्र फलक 38 में मानो वसन्ती वातावरण साकार हो उठा है। प्रकृति का स्वच्छन्द वातावरण राजपूत शैली का सामन्ती स्थापत्य वैभव उसमें वार्तालाप करते राधा-कृष्ण का अंकन, पतझड़ के उपरान्त कुसुमित तरूलताओं, सरोवरों में विकसित कमलों, हिरण, मोर, शुक, कोकिल का चित्रण वातावरण की मादकता को और अधिक बढ़ाता सा प्रतीत होता है।[6] वसन्त के वातावरण में प्रकृति जिस प्रकार सोलह श्रृंगार से युक्त होकर खिल उठती है उसी प्रकार राधा कृष्ण व अन्य अनेक गोपियां भी अनेक प्रकार के श्रृंगार से युक्त हो प्रसन्नता से नाच उठती हैं। कृष्ण का नृत्यगोपाल का स्वरूप या तो रासलीला में ही देखने को मिलता है या वसन्त मे ही। वसन्त ऋतु से होली की तैयारियां प्रारम्भ हो जाती है।[7] होली का त्यौहार भारतीय त्यौहारो में सर्वाधिक रंगीन, रोचक एवं कामोत्तेजक है। इसमें सारी मर्यादाये भंग हो जाती हैं, एक तो वसन्त का मादक वातावरण तथा दूसरा रंग खेलने की उन्मुक्तता। यही कारण है कि होली का त्यौहार अधिक सरस मादक व ऐन्द्रिय हो उठता है।[8] कृष्ण भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण और गोपियों की होली का विस्तार से वर्णन किया है। रीतिकाव्य में भी राधा-कृष्ण के बहाने नायक-नायिकाओं की होली सम्बन्धी

---

1 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme in Rajasthani Miniature Painting*, P. 78

2 राजस्थान वैभव श्रीरामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2, प्रेमचन्द्र गोस्वामी - *किशनगढ़ शैली*

3 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 187

4 प्रेमशंकर द्विवेदी - *राजस्थानी लघुचित्रों में गीतगोविन्द*, पृ0 74

5 डा. गणपतिचन्द्र गुप्त - *हिन्दी काव्य में श्रृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी*, पृ0 40

6 सुरेन्द्र सिंह चौहान - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 98

7 दयाकृष्ण विजयवर्गीय - *राजस्थान काव्य में श्रृंगार भावना*, पृ0 25

8 Pratapditya Pal - *Classical Tradition of Rajput Painting*, P. 47

लीलाओं का वर्णन मिलता है। होली में कृष्ण व उनके सभी भक्तों का समूह फाग खेलने के लिये व्रज की गलियों मे आ जाते हैं। होली पर बने चित्र मे (चित्र फलक 12) राधा-कृष्ण के द्वारा होली खेलने का अंकन है। कृष्ण द्वारा फेंके जाने वाले लाल रंग से बचने के लिये राधा जानबूझकर जमीन पर गिर जाती है। कुछ गोपियां जो कि घड़ों में पानी ले जा रही थी वे भी इस हास्य व उमंग भरे वातावरण मे सम्मिलित हो जाती हैं। सम्पूर्ण छज्जा कृष्ण द्वारा फेंके गये लाल रंग से सराबोर हो गया। पृष्ठभूमि का अंकन भी एक काव्यपूर्ण दृश्य चित्र के समान है जिसमें भवन, जंगल, झीलें, पहाड़ियों इत्यादि का कलाकार ने बड़ी ही कोमलता से अंकन किया है।[1]

राजस्थान की लगभग सभी शैलियों में होली के रंगीले त्यौहार में फाग खेलने, धम्मार गाने और नाचने का बहुलता से चित्रण मिलता है। होली इत्यादि से समन्वित सभी चित्रो में समूह के रूप में आकृतियो का अंकन मिलता है जिसमे भावानुकूलता, उन्मुक्तता, उद्दाम श्रृंगारिकता एवं अनुभावो की विविधता प्रचुर मात्रा में चित्रांकित हुयी है।[2]

इस प्रकार किशनगढ़ शैली के चित्रो में श्रृंगार की परम्परा काफी विकसित एवं समृद्ध दिखायी देती है। किशनगढ़ शैली के विकास में रस युगों-युगों की श्रृंखला है जो तत्कालीन परिस्थितियो से प्रभावित है। किशनगढ़ शैली के चित्रों में सौन्दर्य के विवेचन में श्रृंगार रस का विशिष्ट स्थान रहा है।[3] रस भारतीय कला सौन्दर्य की चिन्तनधारा की वह प्रक्रिया है जो सार्वभौमिक व सार्वकालिक है। रस सिद्धान्त भारतीय चिन्तकों के मनन का परिणाम तो है ही, साथ ही मानव मन की गहन अनुभूतियों का विश्लेषण भी है। रस सिद्धान्त के प्रवर्तक होने का श्रेय भरतमुनि को है। यदि साहित्य मे रस की विस्तृत विवेचना मिलती है तो कला में भी रसाभिव्यंजना का चरमोत्कर्ष प्रस्तुत हुआ है।[4] किशनगढ़ के चित्रों में रसचित्रण व परम्परा का जितना सामंजस्य मिलता है उतना अन्य शैलियों में नहीं। किशनगढ़ के चित्र न केवल श्रृंगारिक अनुभूतियों से ओत-प्रोत हैं वरन् वीर, भक्ति, रौद्र, हास्य आदि रसों की प्रधानता भी इन चित्रों में मिलती है।[5] चित्रों में रसों की अभिव्यंजना या अभिव्यक्ति का अंकन इतनी कुशलता व सूक्ष्मता से कलाकारों द्वारा किया गया है कि मानों उन्हें कोई सिद्धि प्राप्त हो। चित्र फलक 10, 19, 24, 95, 25 आदि चित्रों में वीर रस का चित्रण बड़े ही मनोहर ढंग से किया गया है। इसमें से कुछ चित्रों में अंकित परिवेश रूपनगर का प्रतीत होता है। अतः हो सकता है कि कुछ चित्रों का अंकन रूपनगर में ही किया गया हो। भक्ति रस की अभिव्यंजना चित्र फलक 22 व चित्र फलक 28 में देखने को मिलती है। इसी प्रकार चित्र फलक 17 में हास्य रस का चित्रण हुआ है और बाज लड़ाते हुये राजा का चित्र (चित्र फलक 34) में रौद्र रस की झलक दिखाई पड़ती है।

---

1 Pratapditya Pal - *Classical Tradition of Rajput Painting*, P. 47

2 डा. रेखा कक्कड़ - *कलालेख, राजस्थानी चित्रकला, प्रतियोगिता दर्पण*, 1990, पृ0 603 - 605

3 आनन्द प्रकाश दीक्षित - *सौन्दर्य तत्व की भूमिका*, पृ0 47

4 राजशेखर - *काव्य मीमांसा*, पृ0 10

5 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 60

वास्तव में यदि देखा जाय तो कला का विश्लेषण भाव तथा रस सिद्धान्तों की सीमा में ही सम्भव है। चित्र तथा रस का सम्बन्ध सदैव प्रमाणित है क्योंकि सभी कलायें आनन्द की घोतक मानी जाती हैं। सूक्ष्म से स्थूल तक सभी कला विधाओं में शब्द, स्वर, वर्ण, आकारों तक जाते हुये कोई भी व्यक्ति आनन्दित होता है।[1] काव्य हो अथवा कला रस सिद्धान्त के आनन्दानुभूति वाले स्वरूप को प्रत्येक मे स्वीकार किया जाता है और इनके द्वारा ही आनन्द को जागृत किया जाता है।[2] रसानुभूति माया के आवरण को हटा कर विभिन्न रूपों में तादात्म्य स्थापित करती है अर्थात् आत्मा की मुक्तावस्था का नाम ही रस दशा है।[3] पण्डित जगन्नाथ ने इसी को चिदावरण भंग की संज्ञा दी है। उन्मुक्त मन की निर्द्वन्दावस्था से प्राप्त अनिर्वचनीय आनन्द की सृष्टि ही रस है जो विभिन्न कला शैलियों का मूल है।[4] यद्यपि आज के बीसवीं शताब्दी के इस वैज्ञानिक युग में इस प्रकार की धारणा तथ्यहीन लगती है परन्तु श्रृंगारिक मनोवृत्तियों के आधार पर भेद-विभेद प्रतिपादित मध्यकालीन साहित्य एवं चित्रों को चरमोत्कर्ष रूप सामने आया।[5] विशेषतया किशनगढ़ शैली के चित्रकार इस श्रृंगारिक भेद-विभेद से पूर्णतया प्रेरित थे, जिसका प्रतिपादन रंगों में, रेखाओं में अमूर्त रूप में हुआ है। उनकी प्रेरणा का मूल स्रोत आदि संस्कृत साहित्य ही नहीं वरन् हिन्दी कवियों के ग्रन्थ केशवदास की रसिकप्रिया, नागरीदास का नागरसमुच्चय भी उनकी अभिव्यंजना का आधार रहे। उनकी नायिका किशनगढ़ के कलाकारों का आकर्षण केन्द्र थीं। चित्रकारों ने इन नायिकाओं की अभिव्यंजना अपने कथानकों का आकर्षण बढ़ाने हेतु किया। राजस्थानी व पहाड़ी चित्रकारों ने इन साहित्यकारों तथा कवियों के कवित्तों को लिपिबद्ध करके उनके आधार पर चित्राभिव्यक्ति कर चित्रजगत को एक धनाढ्य रूप दिया।[6]

चित्रों में अधिकतर राधा-कृष्ण को नायक-नायिका के रूप में प्रतिपादित होने का मूल कारण यही था कि उस समय का सम्पूर्ण साहित्य कृष्णीय कथाओं से आप्लावित था जिसका धार्मिक आधार वैष्णव धर्म से पूर्णतः प्रभावित था।[7] यह वैष्णव धारा उस समय भारतीय जन-मन के लिए आत्मिक अनुभूति सिद्ध हुई क्योंकि मानवीय भौतिक आयामों पर आधारित आध्यात्मिक पूर्णता की यह वैष्णवधारा ईश्वरीय अनुभूति की पराकाष्ठा के पूर्ण निकट थी। निर्गुण भक्ति की जो अनुभूतियां साधारण जन के लिये भक्तिपूर्ण थी सगुण भक्ति की यह धारणा उसका दिशा निर्देश बनी। ईश्वरीय भक्ति का वर्णन जो मानवीय रूप में पूर्ण कोमलता व सौन्दर्य के साथ हुआ है।[8] वास्तव में ये चित्राभिव्यक्ति उस समय के सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों की दर्पणतुल्य सिद्धियां हैं। इन चित्रों में समय के अनुरूप मानवीय आदर्शों के उल्लेख हैं, जिनका आधार प्रेम ही था।[9]

---

1 पदमश्री रामगोपाल विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2, पृ0 181 मोहनलाल गुप्त - *किशनगढ़ चित्र शैली की प्रेरणा बणीठणी*

2 प्रभुदयाल मित्तल - *ब्रजभाषा का साहित्य का नायिका भेद*, पृ0 50

3 भगीरथ मिश्र - *हिन्दी रीति साहित्य*, पृ0 35

4 डा. बच्चन सिंह- *रीतिकालीन कवियों की प्रेमाभिव्यजंना*, पृ0 2

5 वही, पृ0 30

6 *Krishana The Divine Love Myth & Legend Through Indian Art*, P. 50

7 M. S. Randhawa - *Pahari Miniature Painting*, P. 40

8 वही, पृ0 23

9 Andrew Topsfield - *Painting from Rajasthan in National Gellery*, P. 20

वैष्णव धर्म की धारणायें प्रेम की अमरत्व पवित्रता व दार्शनिक माधुर्यता का किशनगढ़ के चित्रकारो द्वारा पूर्णरूप से अभिव्यंजित हुआ है। इन्हें प्राप्त करने में मुगल चित्रकारों की धनाढ्यता, समृद्धता, सूक्ष्मता भी सफल नहीं हो सकी। किशनगढ़ के कलाकारों ने आध्यात्मिक विषय-वस्तु में मानवीय प्रेम के राग-विराग कृष्ण व राधा के कथानकों पर आधारित अभिव्यक्त हुये हैं।[1] यह प्रेम की भावना किसी देश, सीमा, जाति से बंधी न होकर संसार के प्रत्येक व्यक्ति की अन्तरतम अवधारणा है। किशनगढ़ के चित्रों ने यह भावना नायक-नायिकाओं के माध्यम से जन-मन तक अनुभूतगम्य बनाया। यह भावना चित्रों के माध्यम से इतनी सशक्तता से सामने आयी जो कि दृष्टा को उद्वेलित करती हैं। उद्वेलन की यह प्रवृत्ति टालस्टॉय की उच्च कथा की पूर्णता की मीमांसा के निकट पहुंच जाती है।

---

1 P. Brown - *Indian Painting*, P. 70

तृतीय अध्याय

(a) किशनगढ़ शैली के चित्रों की समकक्ष चित्र शैलियों से तुलना

(b) विषयगत संरचना प्रकिया की भाव, श्रृंगार तथा कलापक्ष के सन्दर्भ में तुलना

तृतीय अध्याय

किशनगढ़ शैली के चित्रों की समकक्ष चित्रशैलियों से तुलना

भारतीय कलाप्रवाह ने विभिन्न शैलियों को स्वयं में आत्मसात किया है। अन्य कलाओं के अच्छे कलात्मक गुणों को ग्रहण कर अपनी नवीन शैलियों का सृजन किया है। यहां के चित्रकारों की इसी ग्राह्य प्रवृत्ति से भारतीय कला पूरे विश्व में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। भारत में भिन्न-भिन्न राजनैतिक सीमाओ की परिधि में राज्याश्रय प्राप्त कर विभिन्न शैलियों ने जन्म लिया। अपने क्षेत्र की सांस्कृतिक परम्परा, भौगोलिक स्थिति एवं कलात्मकता को उसके चित्रों के माध्यम से देखा और जाना जा सकता है। चित्र ही वहां की संस्कृति एवं दूर एवं पड़ोसी राज्यों के सम्बन्धों के मूक साक्षी हैं। चित्रकारों ने सम्पूर्ण विवरण एवं सम्बन्धों के गर्भ में छुपे सोच को बिना शब्दों के अपनी बात रंगों व रेखाओं द्वारा व्यक्त किया है। इसी परम्परा में राजस्थानी चित्रकला में विभिन्न

उपशैलियों का सृजन हुआ। जब भी राजस्थान पर विभिन्न राजवंशो का आधिपत्य रहा है उन्हीं की कलात्मक रूचि के अनुसार यहां की चित्रकला ने अपने स्वरूप को विशेष लयात्मकता में सृजित किया है।

राजस्थानी चित्रकला का विकास भारत की अन्य शैलियों की भांति न तो एक स्थान पर हुआ है और न ही एक कलाकार द्वारा। यह कहना गलत नहीं होगा कि धार्मिक प्रतिष्ठानों और रजवाड़ों में ही ये शैलियां और उपशैलियां विकसित होती रहीं।[1] प्रारम्भ में इस शैली पर धर्म का प्रभाव रहा क्योंकि इस समय रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायियों में सूर, तुलसी, मीरा, वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु आदि ने देश में हिन्दू वैष्णव धर्म का प्रचार व प्रसार करके उसे उन्नति के शिखर पर पहुंचा दिया।[2]

राजस्थान में चित्रांकन के प्रमाण प्राचीन काल से ही प्राप्त होते रहे हैं। जिसमें मानव ने अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से प्राकृतिक तथा भौगोलिक दशाओं को अनेक प्रकार के चित्रों के विषय बनाये हैं। जयपुर के चित्रकारों ने नारी चित्रण के साथ उद्यानों का बड़ी दक्षता के साथ चित्रांकन किया है। जिनमें तरह-तरह के वृक्षों पर पक्षियों के समूह का अत्यधिक बारीकी से चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त राजस्थानी चित्रकारों ने सामाजिक जीवन का चित्रण करने में विशेष रूचि प्रदर्शित की। खेत, खलिहान, घर मन्दिर, दुर्ग, बाजार, हाट, त्यौहार, विवाह, आखेट, आदि का चित्रण बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है।

राजस्थानी चित्रकला ने अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित किया है। कुछ विद्वानों द्वारा इस शैली को चार प्रमुख भागों में विभक्त किया गया है।[3]

1 मारवाड़ - उदयपुर, बीकानेर, नागौर, किशनगढ़ आदि।
2 मेवाड़ - उदयपुर, नाथद्वारा, प्रतापगढ़ आदि।
3 हाड़ौती - बूँदी, कोटा, झालावाड़ आदि।
4 ढूँढार - जयपुर, अलवर, उनियारा, नगरहवेली इत्यादि।

वैसे यदि देखा जाये तो राजस्थानी शैली के अर्न्तगत सभी शैलियां अपनी ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। परन्तु इसमें पाँच या छः शैलियां प्रमुख हैं। जिन्हें चित्रित पृष्ठभूमि, पशुपक्षियों, स्त्री-पुरुष की वेशभूषा, आभूषणों तथा आकृति विशेषकर आंखों की बनावट के आधार पर आसानी से उन्हें पहचाना जा सकता है। इस अन्तर के लिये वहां के स्थानीय प्रभाव महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं।

वर्णसंयोजन

राजस्थानी चित्रकला में विभिन्न रंगों का प्रयोग हुआ है।[4] चित्रकार द्वारा भवन, मण्डप आदि के चित्रांकन हेतु श्वेत रंगों का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। कंचुकी, मुक्ता-माला, चांद-तारे आदि के अतिरिक्त सम्पूर्ण चित्रो का वातावरण श्वेत रंगों में अंकित है। किशनगढ़ शैली में यह प्रवृत्ति बहुत ही स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

---

1 N.C. Mehta - *Studies of Indian Painting*, P. 19

2 लोकेश चन्द्र शर्मा - *भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास*, पृ0 53

3 *सिटी पैलेस म्यूजियम जयपुर में उपलब्ध मानचित्र के आधार पर कुंवर संग्राम सिंह के विचार*

4 डा. रेखा कक्कड़ - *राजस्थानी चित्रकला, कलालेख, प्रतियोगिता दर्पण*, जनवरी 1990, पृ0 5

राजस्थानी शैलियों मे पीले रंग का प्रयोग कृष्ण की पगड़ी, धोती तथा कहीं-कहीं नायक और नायिका के सम्पूर्ण वस्त्रों में हुआ है। प्रेम विरह, वीरता और समृद्धि की व्यंजना हेतु इस रंग का प्रयोग किया गया है। लाल रंग भावात्मक दृष्टि से प्रेम का प्रतीक बनकर आया है। माथे की बिन्दी, होंठ, मेंहदी तथा महावर आदि का प्रायः सभी शैलियों में प्रयोग मिलता है। नायिकाओं की ओढ़नी, साड़ी, कंचुकी, लहंगा तथा पुरुषों की पगड़ी जामा, दुपट्टा, धोती आदि के चित्रण में लाल रंग का प्रयोग हुआ है। किशनगढ़ की नौकाओं में लाल रंग का प्रयोग मिलता है।[1] बूंदी शैली के चित्रों में चेहरों की रंगत लालिमा लिये हुये है जो बूंदी चित्रकला में निजस्व का प्रतीक है।[2] हरे रंग का प्रयोग अनेक क्षेत्रों में भूमि के लिये किया गया है। नीले रंग का प्रयोग अधिकतर आकाश व जल हेतु किया गया है।

राजस्थानी शैली की सबसे बड़ी विशेषता चटक व अमिश्रित रंगो का प्रयोग है। यद्यपि राजस्थान की सभी शैलियों में रंगों का चटकीलापन दिखायी पड़ता है परन्तु उदयपुर शैली के कलाकारो ने जिस प्रकार विभिन्न चटकीले रंगों की आभा से अपने चित्रों को निखारा है वह अन्य चित्र शैलियों में नहीं मिलता है।[3]

रंगों की दृष्टि से जयपुर तथा अलवर के चित्रों में हरे रंग का प्रभुत्व अधिक दिखायी पड़ता है जबकि मेवाड़ शैली में चटक रंगों का प्रयोग हुआ है। जिसमें लाल पीला रंग प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुआ है। जोधपुर व बीकानेर की शैली चित्रों में पीला रंग प्रमुख रूप से उभर कर नेत्रों के समक्ष आया है । उदयपुर के चित्रों में लाल रंग का प्रधान रूप से प्रयोग किया गया है। बूंदी शैली के चित्रों में सुनहरे रंग की अधिकता है तथा कोटा शैली में नीला लाजवरदी रंग ही अधिक प्रयुक्त है जबकि किशनगढ़ शैली के चित्र अपने सफेद व गुलाबी रंगों के वर्णसंयोजन के लिये प्रसिद्ध है जो चित्रों को एक आकर्षण व लावण्यता प्रदान करते हैं। किशनगढ़ शैली की यह अपनी मौलिक विशेषता है[4] जो इसे उपरोक्त राजस्थानी शैलियों की तुलना में पृथक करती है। चित्र फलक - 103, 106, 116,117, 110, 115, 127, 128, 139, 146, 152 । राजस्थानी शैली के चित्रों में बोडर्स (हाशिये) अथवा वाह्यपट्टी के रंग भी भिन्न - भिन्न हैं। जयपुर के चित्रों में बार्डर काले ग्राऊण्ड (भूमि) चंदेरी में लाल, उदयपुर में पीले, किशनगढ़ में गुलाबी और हरे रंग के व बूंदी के चित्रों में सुनहरे व लाल रंग के हाशियों का प्रयोग हुआ। अलवर शैली के हाशियों में चांदी के रंग की पतली किनारी काले तथा लाल रंग की अधिकता है।[5] (चित्र फलक- 35, 101, 105, 145)

रेखांकन

अंकन की विशिष्टता और रंगसंयोजन की प्रखर अभिव्यक्ति के लिये लघु चित्रकला सर्व प्रसिद्ध है। राजस्थान के सभी शैलियों में नेत्र, मुखाकृति, शरीर के बनावट में भिन्नता देखने को मिलती है। आकृतियां उन्नत ललाट वाली, पतले अधर, उच्च नासिका, कालिमायुक्त दीर्घ आकर्षक नेत्र, लम्बी अजानुभुजाओं, सुकुमार उंगलियों, उन्नत कंधों तथा प्रभावान मुखमण्डल से युक्त बनायी गयी हैं। भौहें तथा बालों को बारीक-बारीक रेखाओं

1 Rooplekha - Vol. XXV, Part I, Benerjee - *Historical Portrait of Kishanargh*, P. 36

2 *कलानिधि*, वर्ष 2, अंक 2, पृ0 30

3 डा. सी. एस. मेहता - *राजस्थानी लघुचित्रों में अन्तराल व्यवस्था* (शोध प्रबन्ध), पृ0 107 -108

4 नवनीत, अप्रैल 1986, रणछोड़ त्रिपाठी -*किशनगढ़ शैली का अनूठा आयाम*, पृ0 97

5 Marge - Vol. V, No. III, Karl Khandelwala - *Litze from Rajasthan*, P. 9

द्वारा बनाया गया है बाद के चित्रों मे काली रेखाओं का प्रयोग किया है। नेत्रों का अंकन किशनगढ़ शैली में विशिष्ट स्थान रखती है। जिन नयनों के विविधानेक सरस वर्णन नागरीदास ने अपने ग्रन्थ मे किया, उनका साक्षात्कार उन्होनें अपनी प्रेमिका वणीठणी में अवश्य किया होगा।[1] जिसने तत्कालीन रेखांकन परम्परा को प्रभावित किया और किशनगढ़ चित्रों में उस प्रकार के नेत्रों का अंकन व लम्बी मुखाकृति उसकी अपनी मौलिक विशेषता है, जो राजस्थान की किसी अन्य शैली में नहीं मिलती है। [चित्र फलक 18, 30, 45, 46]

मेवाड़ शैली के चित्रों में अण्डाकार मुखाकृति, लम्बी नासिका तथा मछली जैसे नेत्र चित्रित किये गये हैं।[2] कहीं-कहीं बादाम के आकार के नेत्रों का अंकन भी देखने को मिलता है जबकि किशनगढ़ शैली में खंजनाकृति के नेत्र व लम्बी मुखाकृति का अंकन हुआ है। आकृतियों के गर्दन के बीच का भाग अधिक भारी बनाया-गया है। नारी मुखाकृतियों में भरे चिबुक का अंकन हुआ जबकि किशनगढ़ में सुराहीदार गर्दन व नुकीली चिबुक का चित्रण देखने को मिलता है। मेवाड़ शैली में पुरुषों को प्रायः मूछों से युक्त बनाया गया है। किशनगढ़ शैली में मूँछों का अंकन नहीं है और किशनगढ़ शैली में स्त्री की मुखाकृति के आधार पर ही पुरुष की मुखाकृति का भी अंकन मिलता है।[3] (चित्र फलक 5, 7, 11, 18, 117, 120, 124)

जोधपुर शैली में स्त्रियों की मुखाकृति गोल, होंठ थोड़ा ऊपर खिंचे हुये, चिबुक भारी तथा नेत्र खंजनाकृति के आकार के बनाये गये हैं। केश का अंकन छोटी जूड़ी के रूप में हुआ है।[4] जबकि किशनगढ़ शैली में लम्बी मुखाकृति, नुकीली चिबुक तथा खुले केश का अंकन हुआ है।[5] पुरुषाकृतियों को लम्बा-चौड़ा, सौन्दर्य से पूर्ण हुई कलंगी व दाढ़ी रूमालों से बंधी का चित्रण हुआ है। तनी भवें, उन्नत ललाट, आगे निकली हुयी नासिका, अरुणाभ नेत्र कानों तक खिंचे हुये तथा गूँछो से युक्त पुरुष के चेहरे का अंकन हुआ है,[1]

---

1 पद्मश्री रामगोपाल - *विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ*, भाग-2, पृ0 179

2 राजस्थान की लघुचित्र शैलियां - *ललित कला अकादमी*, जयपुर, पृ0 44

3 दैनिक जागरण, कानपुर, 17 जून 1988, डा0 प्रेमचन्द गोस्वामी - *किशनगढ़ शैली*, पृ0 5

4 सुन्दर मोहन स्वरूप भटनागर - *ललित कला अकादमी*, जयपुर, पृ0 50

5 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 40

जबकि किशनगढ़ शैली में पुरुष मुखाकृति में दाढ़ी मूंछ का प्रायः अंकन नहीं हुआ है तथा मुखाकृति का अंकन नारी मुखाकृति के ही समान हुआ है। (चित्र फलक 15, 18, 127, 129)

बीकानेर शैली के चित्रों में मुखाकृतियां प्रायः गोलाकार ढंग से चित्रित की गयीं हैं। नारी आकृतियों का अंकन जोधपुर व मुगल शैली के समन्वित रूप की झांकी प्रस्तुत करती हुयी सी प्रतीत होती हैं।[1] होंठ सिकुड़े हुये से, चिबुक छोटी तथा कलाईयां पतली अंकित की गयी हैं। नेत्र खंजन पक्षी की आकृति के समान हैं परन्तु किशनगढ़ जैसी धनुषाकार नहीं हैं। पुरुषाकृतियां चौड़े माथे, उन्नत दाढ़ी मूँछ से युक्त वीर भाव को प्रदर्शित करती हुयी चित्रित की गयी हैं। परन्तु यहां जोधपुर वाली दाढ़ी व अरुणाभ आँखे नहीं मिलती हैं बल्कि मुगलिया प्रेमासिक्त भाव वाली आँखें चित्रित हुयी हैं [2] जो किशनगढ़ शैली के चित्रों में अंकित विशेषताओं से भिन्न है। (चित्रफ लक - 18, 40, 41, 111, 112, 115)

1 ए. पी. व्यास - राजस्थानी चित्रकला, पृ0 20

2 Harman Goetaze - *The Art & Architecture of Bikaner State*, P. 75

बूंदी शैली के चित्रो में मानवाकृतियों मे भारी चेहरों का अंकन मिलता है। मुखाकृतियां गोल, नासिका साधारण तथा चिबुक दोहरी पीछे की ओर झुकी तथा छोटी बनी है।[1] इन चित्रों मे आँखें और नासिका किशनगढ़ शैली के चित्रों के समान नुकीली व लम्बी नहीं हैं[2] बूंदी शैली में स्त्रियो की मुखाकृतियों में लाल अधरो का अलग ही सौन्दर्य है जिसमें ताम्बूल सेवन से उत्पन्न लाली की रेखा दी गयी है। इसी प्रकार हथेली व तलुवे में गुलाल का प्रयोग हुआ है। चेहरे पर रंगत तो लालिमा लिये हुये ही है जो बूंदी शैली की अपनी विशेषता है।[3] स्त्रियों के सिर शरीर के अनुपात में कुछ छोटे बनाये गये हैं। नेत्रों का अंकन आम के पत्ते के समान है जबकि किशनगढ़ शैली में खंजनाकृति के समान नेत्र बने हुये हैं। नेत्रों के पास कोमल छाया दिखाकर गहराई प्रकट की गयी है, जो बूंदी शैली के निजस्व का द्योतक है।[4] केशों का अंकन कभी कपोलों तक, कभी ग्रीवा के नीचे वेणी के रूप में अंकित किया गया है। किशनगढ़ के चित्रों में केशों को प्रायः खुला ही दिखाया गया है। पुरूषों के चेहरे में दाढ़ी का अंकन प्रायः नहीं हुआ है और उनकी मुखाकृतियां सुन्दर हैं परन्तु उनमें ठेठ राजपूती आकृतियों का भाव है। पुरुष आकृतियों में भी ताम्बूल अंकित अधरोष्ठ हैं एवं चेहरा लालिमा लिये हुये है। स्त्री पुरुष के चेहरे में समानता है।
(चित्र फलक - 18, 46, 55, 145, 146, 149, 150)

कोटा शैली में स्त्री आकृतियों का अंकन लावण्यपूर्ण तथा कोमल है। लम्बी नासिका, कपोल खिले हुये, सुन्दर केशराशि जो प्रायः कन्धे तक दिखायी पड़ती है तथा पतली कमर चित्रित की गयी है। आँखो की आकृति कमल की पंखुड़ी के समान है।[5] पुरुषाकृतियों में दाढ़ी चढ़ी हुयी तथा गुच्छों व गुलगुच्छों को अनेक प्रकार से चित्रित किया गया है। नाक लम्बी, आँखें गोल तथा चिबुक को पीछे दबा हुआ अंकित किया गया है।

1 Dr. Pramod Chandra - *Bundi Painting*, P. 4
2 कलानिधि, अंक-5 वर्ष- 2, (त्रैमासिक पत्रिका) *भारत कला भवन*, वाराणसी, पृ0 29
3 वही, पृ0 29
4 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 14
5 Marge, Vol. II, W.G. Archer - *Kota*, P. 65

ललाट पीछे को झुका, मोटी गर्दन तथा शरीर का अंकन पुष्ट रूप में हुआ है।[1] किशनगढ़ शैली में स्त्री आकृतियां प्रायः कोटा शैली जैसी ही लावण्यपूर्ण सौन्दर्य से युक्त है। परन्तु नेत्र का रेखांकन किशनगढ़ शैली की मौलिक विशेषता है जो इस शैली में भी नहीं देखने को मिलती है। लम्बी नासिका व पतली कमर का ही चित्रण किशनगढ़ शैली में भी हुआ है परन्तु केशों को कमर के नीचे तक लहराते हुये अंकित किया गया है। कान के पास भी बाल की लट का अंकन हुआ है। परन्तु किशनगढ़ के चित्रों में पुरुष को दाढ़ी-मूँछ से युक्त नहीं पाया गया है। मानवाकृतियों की गर्दन पतली सुराहीदार तथा नेत्रों को कान तक खिंचा सुन्दर बनाया गया है।[2] चित्र फलक - 8, 18, 15, 133, 139।

जयपुर शैली के चित्रों में पुरुष व स्त्रियों के मुख गोल चित्रित किये गये हैं।[3] स्त्रियों के लालिमा युक्त अधर हल्का सा मोटापन लिये हुये हैं और मीनाकृति नेत्रों का अंकन हुआ है जो काजल से युक्त है। किशनगढ़ शैली में लम्बी मुखाकृतियां मिलती हैं, नेत्र लम्बे कानों तक खिचे हुये किन्तु आकर्षक है। जयपुर शैली के स्त्रियों की लम्बी

1 श्री रामचरण शर्मा व्याकुल - *राजस्थान की लघु चित्रशैलियाँ ललितकला अकादमी*, जयपुर, पृ0 64
2 डा0 जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 43
3 सुरेन्द्र सिंह चौहान - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 113

केशराशि किंचित ऊपर उठी हुयी, सुडौल नाक तथा माथे पर बिन्दी का अंकन है।[1] जयपुर शैली के ही समान किशनगढ़ शैली में भी स्त्रियों की लम्बी घनी केशराशि तथा तीखी उठी हुयी नासिका का अंकन हुआ है। पुरुष पात्रों में मूछों व लम्बी केशराशि का अंकन है। मुखाकृति दाढ़ी विहीन तथा नेत्रों को बड़े रूप में अंकित किया गया है। चित्र फलक - (16, 18, 19, 103, 105, 107)

अलवर शैली में चित्रित पुरुष की मुखाकृति आम आकार की अर्थात् ठोड़ी को थोड़ा सम देकर बनाया गया है।[2] मुखाकृति गोल अंकित की गयी है। नेत्र को मीन के आकार का बनाया गया है। पुरुषों को दाढ़ी विहीन तथा बड़े नेत्रों से युक्त बनाया गया है। अलवर की स्त्री-पुरुष की मुखाकृतियों पर पूर्णतया जयपुर शैली का प्रभाव है। केवल स्त्रियों की वेणी व पुरुषों की पगड़ियों का भेद है। चित्र फलक - (163, 164)

उदयपुर शैली के चित्रों में मुखाकृतियां प्रभावोत्पादक कमनीयता लिये हुये विविध मुद्राओं में चित्रित हैं। स्त्रियों को सरलता का भाव लिये मीनाकृति आँखें, सीधी नाक

1 डा0 लोकेशचन्द्र शर्मा - *भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास*, पृ0 87

2 विनय अलवर, अंक 11, पृ0 157

तथा भरी चिबुक के साथ बनाया गया है।[1] कपोलों पर झूलती अलकों का अंकन, कभी-कभी कानों के ऊपर वेणी का अंकन मिलता है। जबकि किशनगढ़ शैली में मुखाकृतियां लम्बी, लम्बे आकर्षक नेत्र, पतली नुकीली ठोढ़ी तथा लम्बी नासिका का अंकन हुआ है। पुरुषाकृतियों की मुखाकृतियों को बड़ी-बड़ी मूँछों से युक्त भरे मुख वाले और विशाल नेत्रों से युक्त बनाया गया है। परन्तु किशनगढ़ शैली के चित्रों में दाढ़ी मूंछ का अंकन नहीं हुआ है और किशनगढ़ के नेत्रों में जो विशेषता है वह यहां के चित्रों में नहीं मिलती है।[2] चित्र फलक- [18, 32, 33, 34, 152, 153, 154]

इस प्रकार प्रत्येक शैली के चित्रकारों ने चित्रो में मुखाकृतियां एक दूसरे से भिन्नता लिये हुये चित्रित की है जो प्रत्येक शैली को एक पहचान देता है। उसी प्रकार मानवाकृतियों को भी चित्रकारो ने अपने अनुसार छोटा या बड़ा अंकित किया है। जोधपुर शैली में नारी आकृति को औसत रूप से लम्बा बनाया गया है, तो जयपुर में नारी का कद छोटा बनाया गया है। कोटा शैली में उससे भी छोटा अंकित किया गया है। उदयपुर एवं मेवाड़ में नारी कद सामान्य रहा है।[3] जबकि बूंदी शैली में नारी यद्यपि छरहरे स्वरूप मे चित्रित की गयी है परन्तु कद छोटा अंकित किया गया है। सम्भवतः यह दकिनी शैली की देन है।[4] जबकि किशनगढ़ शैली में चित्रकारों ने स्त्री-पुरुष दोनों ही आकृतियों को अधिक लम्बा पतला एवं छरहरा बनाया है। किशनगढ़ शैली के चित्रों में अंकित मानवाकृतियां अपनी मुखाकृति नेत्र तथा अधिक लम्बे कद के कारण स्वतः ही दूसरी शैलियों से पृथक हो जाती हैं और आसानी से पहचान में आ जाती है। [चित्र फलक - 104, 105, 110, 114, 124, 125, 127, 128, 133, 151]

वेशभूषा तथा आभूषण

विभिन्न राजस्थानी शैलियों में चित्रित मानवाकृतियों के समान ही अलग-अलग प्रकार की वेशभूषा तथा आभूषणों का चित्रांकन हुआ है। यदि कुछ शैलियो मे प्रयुक्त वेशभूषा तथा आभूषणों में समानता है तो कुछ शैलियों में रंगों, रेखाओं, आलेखन डिजाइनों द्वारा भिन्नता भी प्रदर्शित होती है।

---

1 रामगोपाल विजयवर्गीय- *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 20

2 पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ, खण्ड-2, पृ0 180 मोहनलाल गुप्त-*किशनगढ़ की प्रेरणा-बणीठणी*

3 ब्रजेश कुलश्रेष्ठ - *ललित कला अकादमी*, जयपुर, पृ0 73

4 *कलानिधि*, अंक 5 वर्ष 2, पृ0 29

मेवाड़ शैली के चित्रों में स्त्रियों को लूगड़ी, घाघरे और ठेठ राजस्थानी आभूषणें से सुसज्जित किया गया है।[1] घाघरे, कंचुकी व ओढ़नी को ज्यामितीय व फूल पत्ती से बने डिजाइनों द्वारा विभिन्न रंगों से अलंकृत किया गया है। स्त्रियों को ओढ़नी या दुपट्टा बहुधा ऊपर से ओढ़ा हुआ अंकित किया गया है। यद्यपि किशनगढ़ शैली में स्त्रियों की वेशभूषा में लहंगा, कंचुकी व ओढ़नी के साथ-साथ स्त्रियों को कहीं-कहीं साड़ी पहने भी चित्रित किया गया है। मुगल प्रभाव के कारण उन्हें पेशवाज पहने अंकित किया गया है जो पुरुषों के जामे के समान ऊपर से नीचे तक एक ही पोशाक होती थी। मेवाड़ी पुरुषों को उदयपुरी पगड़ी, लम्बा साफा, कमर में पटका तथा सामान्य अलंकारों से आवृन्त किया है।[2] मेवाड़ के प्रारम्भिक चित्रों में पुरुषों को पारदर्शी चार नोकों वाला जामा पहने चित्रित किया गया है। मेवाड़ी पुरुषों के पैरों में अधिकतर जूतियों का अंकन मिलता है जबकि स्त्रियों के पावों में जूतियों का अंकन प्रायः नहीं मिलता है। किशनगढ़ के चित्रों में राजसी पोशाक के साथ जूतों का अंकन मिलता है। किशनगढ़ व मेवाड़ी दोनों ही शैलियों में स्त्रियों के हाथ पैरों में आलता तथा महावर का प्रयोग किया गया है। [चित्र फलक - 116, 118, 119, 14, 17, 32, 35]

जोधपुर शैली में नारी को मारवाड़ी वेशभूषा में ही चित्रित किया गया है। नारी को लूगड़ी, लहंगा तथा कांचली पहने हुये बनाया गया है। लूगड़ी को विशेष रूप से चित्रित किया गया है जो सिर के ऊपर लहराती हुयी चित्रित की गयी है और यह इस शैली की मौलिकता को परिलक्षित करती है।[3] लूगड़ी में अंलकरण का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार की लूगड़ी का अंकन किशनगढ़ शैली के चित्रों में नहीं दिखायी पड़ता है। यहां नारी की वेशभूषा में स्थानीय प्रभाव परिलक्षित होता है। लहंगे को अर्द्धचन्द्राकार अवस्था में लहराते हुये चित्रित किया गया है। चित्रों में वस्त्रों की किनारी को विशेष महत्व दिया गया है। छोटी कंचुकी जिसमें से वक्ष का आधा भाग बाहर निकला हुआ सा, कसकर बांधी गयी चित्रित है। किसी-किसी चित्र में मुगल प्रभाव के कारण स्त्रियों को चूड़ीदार पायजामा तथा उसके ऊपर से सफेद पतला जामे समान पेशवाज का अंकन तथा पैरो में मखमली जूतियों का चित्रण मिलता है। स्त्रियों के आभूषणों में नथ, झुमके, कुण्डल, मोती, माथे की पट्टी एवं बोरला, केशों में झूमर, कुंकुम, बिन्दी, गल मे पैन्डेंट, मोतियों की अनेक लड़ वाली माला हार, बाहों में बाजूबन्द, हाथ में कड़े,[4] कंगन, चूड़ियां, उँगली में अंगूठियां, पैरों में पायजेब, पैर की उँगलियों में बिछुये आदि सभी प्रचलित आभूषणों का अंकन हुआ है।

---

1 डा. आर. के. वशिष्ठ - मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, पृ0 27

2 डा. जयसिंह नीरज - राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्णकाव्य, पृ0 30 - 31

3 सुन्दर मोहन स्वरूप भटनागर - राजस्थान की लघु चित्र शैलियां, प्रथम खण्ड, जयपुर,1972 पृ0 50

4 मोहनलाल गुप्ता - यात्रा नर-नारियों के नाना रंगी आभूषणों की, राजस्थान पत्रिका, अक्टूबर, 1994, जयपुर, पृ0 1

किशनगढ़ शैली में लंहगे का अंकन जोधपुर शैली के चित्रों के समान अर्द्धचन्द्राकार के रूप में चित्रित न होकर कम घेर में बनाया गया है। जोधपुर व किशनगढ़ दोनों ही शैलियों में लहंगें, कंचुकी, व ओढ़नी को विभिन्न प्रकार के बेलबूटे वाले आलेखनों से विभिन्न रंगों में अलंकृत किया गया है। किशनगढ़ शैली के चित्रों में भी स्त्रियों के आभूषणों में इन सभी का चित्रण मिलता है। विशेष रूप से मोती से बने आभूषणों का प्रयोग हुआ है। जोधपुर शैली में पुरुषों के वस्त्राभूषण में मुख्य रूप से चुस्त पायजामें के ऊपर अर्द्धचन्द्राकार घेर वाला जामा, पटका तथा पगड़ी का अंकन हुआ है। यहां ऊंची नुकीली तथा भारी पगड़ियों का विशेष अंकन हुआ है जो तुर्रा, सिरपैंच, कलंगी, लटकन आदि से सुसज्जित होती थी। जो इस प्रकार की चित्रण शैली की निजी विशेषता को परिलक्षित करता है।[1] पुरुषों को स्वर्ण मोतियों के हार, कानों में स्वर्ण कुण्डल तथा अन्य आभूषणों को पहनाया गया है तथा पैरों में मखमली जूतियों का अंकन हुआ है। पुरुषों को प्रायः ढाल व कटार के साथ ही चित्रित किया जाता था।[2] किशनगढ़ शैली के चित्रों में भी प्रायः जामे-पायजामे, पटका, पगड़ी का ही अंकन हुआ है। परन्तु जामे का फहराव अर्द्धचन्द्राकार न होकर कम है। इसी प्रकार पगड़ी को विभिन्न अलंकरणों से सजाया तो गया है परन्तु वे जोधपुर की पगड़ियों की भांति ऊंची या भारी नहीं हैं। [चित्र फलक - 128, 129, 18, 40, 55]

बीकानेर शैली के चित्रों में पुरुषों को ऊँची पगड़ियां, फैले जामे, कमर में पटका तथा हाथ में खड्ग लिये हुये दिखाया गया है।[3] बीकानेरी शैली में चित्रित वेशभूषा पर जोधपुरी प्रभाव दिखायी पड़ता है। जामे घण्टाकृति आकार के ही बने हैं परन्तु उनका फहराव जोधपुरी जामों से कम है। पगड़ियां ऊँची व शिखराकार ही अंकित की गयी हैं। मुखमुद्राओं के अंकन में मुगल प्रभाव परिलक्षित होता है। बीकानेरी स्त्रियों की वेशभूषा जोधपुर व मुगल शैलियों की नारियों के समन्वित स्वरूपों की झांकियां प्रस्तुत करती हुयी सी प्रतीत होती है।[4] स्त्रियों को लहंगा-चोली व पारदर्शी चुन्नी ओढ़े ही चित्रित किया गया है। कहीं-कहीं साड़ी का भी अंकन हुआ है। महावर से रचे पैर व मेंहदी से रचे हाथ माथे पर झूमर, गले में मोतियों की माला, हाथ व पैरों को पूर्णतया आभूषणों से सुसज्जित किया गया है। बीकानेरी शैली के समान ही किशनगढ़ शैली के चित्रों में स्त्रियों को कहीं-कहीं साड़ी पहने अंकित किया गया है। परन्तु पुरुषों के जामे का घेर बीकानेरी पुरुषों के जामों के घेर से कम है। किशनगढ़ी पगड़ियाँ बीकानेरी पगड़ी की तुलना में अधिक व विभिन्न आभूषणों व रत्नों से सुसज्जित हैं। [चित्र फलक - 110, 112, 114, 20, 26, 35, 47]

बूंदी शैली के चित्रों में पुरुषों को प्रायः चपटी पगड़ियाँ पहने चित्रित किया गया है। घुटनों तक या उससे थोड़ा नीचे तक चककरदार जामे, कमर में पटका तथा पावों में चुस्त पायजामा पहने बनाया गया है।[5] अन्य शैलियों के समान बूंदी शैली के चित्रों में भी पुरुषों को विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित किया है। बूंदी चित्रों में पगड़ियों का अंकन

---

1 मोहनलाल गुप्ता - *मात्रा नर-नारियों में नानारंगी आभूषणों की, राजस्थान पत्रिका*, अक्टूबर 1994 जयपुर, पृ० 7

2 सुन्दर मोहन स्वरूप भटनागर - *मारवाड़ शैली, ललित कला अकादमी*, जयपुर, पृ० 45

3 Harman Goetaze - *The Art Architecture of Bikaner State*, P. 79

4 कुमारसम्भव - *राजस्थान की लघुचित्र शैलियां*, पृ० 67 - 69

5 दैनिक जागरण, कानपुर, 5 फरवरी 1988, *प्रेमचन्द गोस्वामी- बूंदी चित्रशैली*

नीचा व झुका हुआ है जबकि किशनगढ़ शैली में पगड़ियाँ थोड़ी ऊँची हुयी तथा विभिन्न रत्नों से अलंकृत चित्रित हैं। स्त्रियाँ प्रायः काले रंग के लहंगे, लाल चुन्नी व कसी कंचुकी पहने चित्रित की गयी हैं जिसमें से पाँव का कुछ भाग बाहर निकला सा प्रतीत होता है। किशनगढ़ शैली के समान ही बूंदी चित्रों के भी लहंगों में विभिन्न बूटे तथा ज्यामितीय डिजाइनों का अंकन हुआ है। आभूषणों में मोतियो के आभूषण अधिक मिलते हैं। ललाट तक नीचे लटकती जडाऊ बिन्दी, सुनहरे झुमके तथा हथेलियों में हथफूल का अंकन हुआ है।[1] [चित्र फलक - 145, 148, 149, 150, 14, 47, 50, 55]

कोटा शैली में बूंदी शैली की विशेषताओ का प्रभाव होते हुये भी अपनी कुछ मौलिकता है। स्त्रियो को परम्परागत वेशभूषा लहंगा, कंचुकी व चुनरी ओढ़े ही चित्रित किया गया है। लहंगें का फहराव घण्टाकृति के समान है जिस पर विभिन्न आलेखनों का अंकन हुआ है। अधिकांशतः ज्यामितीय पैटर्न के ही आधार पर आधारित हैं और सादे रूप में अलंकृत हैं। स्त्रियो को अन्य शैलियो के समान ही विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित किया गया है। जिसमें मोतियो के आभूषणों की प्रधानता है।[2] किशनगढ़ शैली के चित्रों में भी मोतियों के आभूषणों का भी अंकन अधिक दिखायी देता है। पुरुषों को साफे के समान बनी पगड़ी तथा पारदर्शक व अपारदर्शी जामें में ही चित्रित किया गया है। जामे के नीचे पायजामें का अंकन है। जामे को घुटने तक या उससे थोड़ा नीचे तक ही बनाया गया है जबकि किशनगढ़ शैली में यद्यपि पारदर्शी व अपारदर्शी जामों का अंकन तो हुआ है परन्तु जामों की लम्बाई पावों तक चित्रित की गयी है। [चित्र फलक - 132, 133, 135, 20, 50, 38, 43]

जयपुर शैली में स्त्रियों की वेशभूषा में चोली, कुर्ता, दुपट्टा, लहंगा तथा पावों में जूतियों का अंकन हुआ है जिन्हें वहां की भाषा में मोचाड़िया कहा जाता है।[3] घाघरों पर मोती टंके हुये चित्रित हुये हैं। लहंगों को घेरदार तथा गहरे रंग से ही चित्रित किया गया है। मुगल बेगमों जैसी राजसी वेशभूषा का इसमें अंकन मिलता है। मुगल प्रभाव के कारण इस शैली के किसी-किसी चित्र में स्त्रियों को पेशवाज पहने अंकित किया गया है। पेशवाज के साथ चुन्नी या दुपट्टे का भी अंकन हुआ है जैसाकि किशनगढ़ शैली में भी देखने को मिलता है। स्त्रियों को रत्नजड़ित या मीनाकारी के आभूषणों से सुसज्जित किया गया है।[4] मोतियों की मालायें, मणिबन्ध तथा मोतियों के झुमके आभूषणों में प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुये हैं। पुरुषों की वेशभूषा में पगड़ी बाँधे, घेरदार जामा व ढीले पायजामे व दुपट्टे से कमर कसे पुरुषों का चित्रण मिलता है। पगड़ियों पर कलंगी व तुर्रे का अंकन हुआ है। वस्त्र अनेकों बूटों से चित्रित, घेरदार, फैले हुये तथा श्वेत रंग में चित्रित है। जूते की नोक उठी हुयी तथा पायजामों की मोहरी ढीली अंकित की गयी है। किशनगढ़ में जामे प्रायः सादे तथा चुस्त पायजामों का चित्रण देखने को मिलता है। [चित्र फलक - 104, 105, 107, 20, 30, 50]

---

1 रामगोपाल विजयवर्गीय - *बूंदी शैली, ललित कला अकादमी, जयपुर,* पृ0 566
2 रामचरण शर्मा व्याकुल - *कोटा शैली, ललित कला अकादमी,* जयपुर पृ0 65
3 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थान की चित्रकला,* पृ0 26
4 लोकेश चन्द्र शर्मा - *भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास,* पृ0 87

अलवर शैली के चित्रों पर पूर्णतया जयपुर शैली की विशेषताओं का प्रभाव दिखायी पड़ता है। केवल स्त्रियों की वेणी तथा पुरुषों की पगड़ियों में भेद है। वेणी अत्यधिक ऊँची उठी हुयी गोलाकार तथा पगड़ियों के पेंच जयपुर शैली से भिन्न हैं। स्त्रियों की वेशभूषा में जयपुर शैली के ही समान अधिकतर पायजामा कुर्ता व चोली पहने दिखाया गया है। चित्र में कहीं-कहीं टोपी व साफा पहने और कन्धे पर अंगोछा रखे चित्रित किया गया है। स्त्रियों के आभूषणों में विशेष रूप से नथ व पायजेब पहने चित्रित किया गया है।[1] किशनगढ़ शैली की स्त्रियों को भी नथ व पायजेब पहने हुए दिखाया गया है। पुरुषों को जयपुरी पगड़ी व अंगरखा पहने दिखाया गया है। [चित्र फलक - 30, 47, 160, 161]

उदयपुर शैली में पुरुषों को उदयपुरी पगड़ी, लम्बा जामा, कमर में पटका व पायजामा पहने चित्रित किया गया है। पगड़ी में काले रंग की कलंगी, सिरपेंच व मोती लटकते चित्रित हैं जबकि किशनगढ़ शैली में पुरुषों की पगड़ियां मोती की लड़ियों से युक्त श्वेत या गूंगिया रंग की बनी है।[2] पुरुषों को कानों में मोती, गले में मणियों का हार राजसी वैभव के साथ चित्रित किया गया है। स्त्रियो को राजस्थानी वेशभूषा तथा आभूषणों से सुसज्जित किया है। वस्त्र बूंदी शैली की भाँति पारदर्शक नहीं बने हैं और न ही सुवर्ण आलेखन की अधिकता पायी जाती है। घाँघरे अधिक फैले न होकर पावों से चिपके हुये से और छोटी लूगड़ी जो घाघरे के चारों ओर लिपटी बनायी जाती थी किंचित पारदर्शक होती थी।[3] किशनगढ़ शैली में भी स्त्रियों के लहंगें अधिक फैले न होकर पावों से चिपके हुये से चित्रित किये गये हैं। [चित्र फलक - 14, 17, 55, 152, 153]

इस प्रकार किशनगढ़ शैली के चित्रों की समकालीन अन्य शैलियों से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि कद गठीलेपन, नेत्र, होंठ, नाक, ठोड़ी हाथ पैरों की उंगलियों के आधार पर भी इनमें भिन्नता दिखायी पड़ती है। यद्यपि इन शैलियों में बहुत विशेषतायें समान हैं जैसा कि लगभग सभी शैलियों में प्रायः स्त्रियों की वेशभूषा में लहंगे, चोली व दुपट्टा का अंकन हुआ है। पुरुषों की वेशभूषा में पगड़ी, पटका, जामा, पायजामा आदि का अंकन हुआ है परन्तु इन्हें बनाने के ढंग के आधार पर प्रत्येक शैली में इनका अंकन अलग-अलग ढंग से हुआ है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण का जहां लोक कला वाला स्वरूप जिसका अंकन सभी शैलियों में देखने को मिलता है उन्हें धोती पहने व सिर पर मुकुट लगाये ही चित्रित किया गया है। प्रायः सभी शैलियों में एकचश्मी चेहरों का ही अंकन हुआ है। यद्यपि सभी शैलियों पर एक दूसरी शैलियों का प्रभाव दिखायी पड़ता है परन्तु सभी चित्र शैलियों का अपना-अपना निजस्व है। परन्तु किशनगढ़ शैली में जो स्त्री सौन्दर्य, लावण्य तथा मुखाकृतियाँ, वर्णसंयोजन तथा भावों का अंकन मिलता है वैसा अन्य शैलियों में नहीं प्राप्त होता है। लम्बी मुखाकृति व उच्च नासिका वाले विशाल सुन्दर नेत्र, कमनीय छरहरी काया जो किशनगढ़ शैली के चित्रों की पहचान है, अत्यन्त आकर्षक है। बणीठणी के चित्र में राधा की नासिका दीर्घ, नुकीली, नेत्र खंजन पक्षी के समान चित्रित हुये हैं जो चित्र की प्रामाणिकता के अनुरूप नहीं है फिर भी वह अपने आप में अद्वितीय है। चित्रों में रंग योजना अत्यन्त आकर्षक है जो कला की दृष्टि से उत्तम एवं सराहनीय है। राधा का घूंघट को दाहिने हाथ से पकड़ने का तरीका तथा दूसरे हाथ में कमल की कलियां लिये हुये

1 मोहनलाल गुप्ता - *राजस्थान की लघु चित्रशैलियाँ, ललित कला अकादमी*, जयपुर, पृ0 20- 21

2 प्रेमचन्द गोस्वामी - *किशनगढ़ शैली, ललितकला अकादमी*, जयपुर, पृ0 30

3 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थान की चित्रकला*, पृ0 21

भावपूर्ण मुद्रा में चित्रित की गयी है जो भारतीय चित्रकला की एक सुन्दर कृति मानी गयी है। किशनगढ़ में चित्रित मुखाकृतियां सावन्त सिंह की प्रेमिका बणीठणी को राधा का प्रतिरूप मानकर चित्रित किया गया है[1] जो इसकी अपनी मौलिक विशेषता है, जबकि अन्य शैलियों में मुखाकृतियां साहित्य में उल्लिखित वर्णन पर आधारित है। अतः किशनगढ़ शैली तथा अन्य शैलियों को समानता तथा भिन्नता के आधार पर आसानी से पहचाना जा सकता है। राजस्थानी शैलियों के चित्रकारों ने नारियों को लगभग 32 प्रकार के परिधानों व 27 प्रकार के आभूषणों से सजाया है तथा परिधानों की रंगों की छटा प्रदान करने के लिये लगभग 60 प्रकार के रंगों का प्रयोग किया है। पुरुषों को भी लगभग 15 प्रकार के वस्त्र, 14 प्रकार के आभूषणों से युक्त दिखाया गया है।[2] वेशभूषा, पोशाक तथा आभूषणों के चित्रण में सभी शैलियों में जन्म स्थान, कालक्रम व तत्कालीन परिस्थितियों की झलक स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। यही कारण है कि प्रत्येक प्रान्त को भारत की संस्कृति का प्रतीक माना जाता है।[3]

प्राकृतिक चित्रण

राजस्थानी कलाकारो ने चित्रों की पृष्ठभूमि मे अपनी सूझबूझ तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति सूक्ष्म निरीक्षण की दृष्टि का परिचय दिया है। प्रकृति के विभिन्न रूपों को बड़े ही अनोखे ढंग से अलंकारिक रूप प्रदान किया है, यह अन्यत्र दुर्लभ है। ग्रीष्म ऋतु के चित्रण में उत्तप्त सूर्य की लहराती किरणें, आकाश में छाये लाल नारंगी बादल, प्रातः कालीन धूप में स्नान करते पीले रंग के पर्वत शिखर, पारदर्शी जलाशय, जल में प्रतिबिम्बित वृक्ष और पर्वत श्रेणियां, झुके हुये वृक्षों तथा सरिताओं का चित्रण आदि ऐसे प्रयोग हैं जो राजस्थानी चित्रकारों की सूक्ष्म प्रवृत्ति का द्योतक[4] है। चित्रों की पृष्ठभूमि के चित्रण में प्राकृतिक परिवेश का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः कलाकारों ने अपनी कल्पना के साथ-साथ प्राकृतिक दृश्यों का भी यथावत अंकन किया है। चित्रकारों ने चित्रों की पृष्ठभूमि को सजाने के लिये प्रकृति में फैले अन्य साधनों का प्रयोग किया। लतावृक्ष, पर्वत, सरोवर, पुष्प, चन्द्रमा, तारागण के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों व कीट-पतंगों को चित्रांकित किया गया है। इनका प्रयोग स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार हुआ है।

राजस्थान के कलाकारों ने प्रकृति को अनेक रूपों में चित्रित किया है, आलम्बनगत, उद्दीपनगत, मानव क्रिया-कलाप की क्रीड़ा-स्थली के रूप में तथा अलंकारों के रूप मे प्रकृति चित्रण विशेष रूप से किया है। श्रीकृष्ण की अधिकांश लीलायें प्रकृति के सुरम्य और स्वच्छन्द वातावरण में हुई। इसलिये उनके प्रकृति चित्रण में कटी-छटी फुलवारियों या राजसी ठाठबाट से युक्त उपवन या बागीचे न होकर स्वच्छन्द प्राकृतिक रेखांकन है। अनेक पक्षियों का चित्रण भी स्थान -स्थान पर हुआ है जो प्रकृति के ही अभिन्न अंग हैं। कपि, वानर, कुरंग, मृग, हिरण केहरि, गज, नाग, गाय, बछड़े, तोता, मोर, चकवा, कोकिल, चातक, मराल, सारस, बगुला, सारिका इत्यादि का चित्रण[5] प्रकृति के विराट परिवेश में रेखांकित किया गया है।

---

1 Rooplekha - Vol. XXV, Part II, Benerjee - *Historical Portrait of Kishanargh*, P. 40

2 कुमार सम्भव - *राजस्थान की लघुचित्र शैलियां- राजस्थान ललित कला अकादमी*, जयपुर, पृ0 73

3 Moti Chandra - *Prince of Wales Museum, No. 5111955-755*, P. 33-41

4 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 128

मेवाड़ शैली के कलाकारों ने अपने चित्रों में प्रकृति के विराट परिवेश का अंकन जिस धैर्य के साथ किया वह कला की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है। कृष्ण की लीलाओं तथा कार्यकलापों के लिये चित्रकारों ने पृष्ठभूमि में विशेष रूप से ब्रजमण्डल के प्राकृतिक वातावरण का चित्रण किया है।[1] चित्रों में प्रकृति का संतुलित चित्रण हुआ है जो अलंकारिक ढंग से चित्रित है। चित्रों में गहरी पृष्ठभूमि में वृक्षों की पत्तियों का रेखांकन हल्के हरे रंग, सफेद व पीले रंग से किया गया है जो फूलों के गुच्छों से सुसज्जित है। पर्वतों व चट्टानों के चित्रण में मुगल प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। जहां कहीं भी जल का चित्रण हुआ है। प्रायः लहरदार रेखाओं के माध्यम से दर्शाया गया है। भवनों, महलों तथा प्रासादों के स्थापत्य में मुगल शैली का प्रभाव दिखायी पड़ता है। सादे भवनों पर गुम्बदों की योजना, मुंडेरों, बुर्जों, बड़े चबूतरों आदि की अधिकता दिखायी देती है।[2] पशु-पक्षियों में विशेष रूप से मयूर, हंस, चकोर, हाथी, घोड़ा, कुत्ता, हिरण का चित्रांकन हुआ है, जो प्रारम्भ में बड़े ही अलंकारिक लगते हैं परन्तु बाद में मुगल प्रभाव से अपने यथार्थ रूप में चित्रित हुये हैं। रात्रिकालीन दृश्यों मे चित्रकारों ने गहरे रंगों की पृष्ठभूमि बनायी है। गहरे लाल तथा धुंए के रंग के आसमान में चित्रकारो ने तारों का आभास कराया है। कहीं-कहीं रात्रि के चित्र में तारों के साथ चन्द्रमा का भी अंकन किया गया है। किशनगढ़ शैली में भी मेवाड़ शैली के समान राधा-कृष्ण की लीलाओं का चित्रण ब्रज के प्राकृतिक परिवेश में हुआ है जो सतरंगा है। पृष्ठभूमि में केले व कदम्ब के कुंजो का चित्रण विशेष हुआ है। झील या सरोवर में लाल रंग की नौका का अंकन हुआ है जो अन्य किसी शैली में नहीं हुआ है। किशनगढ़ शैली के चित्रों में भी चन्द्रमा व तारों से शोभित चांदनी रात का चित्रण हुआ है। किशनगढ़ में वृक्ष, पेड़-पौधे या पशु-पक्षी अलंकारिक स्वरूप में नहीं चित्रित है ये काफी हद तक अपने यर्थात् स्वरूप में अंकित है। [चित्र फलक - 14, 32, 33, 35, 36, 116, 119, 120, 124]

मारवाड़ क्षेत्र में रेत के टीले क्षितिज पर एक विशेष प्रभाव उत्पन्न करते हैं। कलाकारों ने क्षितिज रेखा को ऊँचा उठाकर एवं बीच से उठी हुयी वक्राकार रेखाओं द्वारा संयोजनो में प्रभावोत्पादकता उत्पन्न की है।[3] यहां वर्षा कम होने के कारण बादल गोल-गोल छल्ले की भांति घुमड़कर आते हैं। अतः कलाकार को प्रकृति के इस रूप ने बेहद प्रभावित किया, जिनका अंकन जोधपुर शैली की एक रूढ़ि बन गयी। जोधपुर चित्रों की अलग पहचान के लिये ये बादल एक आधार है। किशनगढ़ शैली में छल्लेदार बादलों का अंकन प्रायः नहीं हुआ है। यहां चित्रों में अधिकांशतः सफेद या नीले आकाश का या फिर लाल पीले सुनहरे चमकदार आकाश का चित्रण मिलता है। जोधपुर के कलाकारों ने बारहमासा चित्रों में अपनी अनुभूति एवं प्रकृति का अधिक प्रयोग किया तथा विभिन्न ऋतुओं में मेघ की स्थिति को बारहमासा चित्रों में सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया है। यहां चित्रों में किशनगढ़ शैली के ही समान कलाकारों ने वृक्षो तथा लताओं का अंकन उन्मुक्त रूप से किया है, परन्तु किशनगढ़ शैली में जहां केले व कदम वृक्षों की प्रधानता है, वहीं मारवाड़ में आम, खजूर, खेजड़ी वृक्षों का अंकन हुआ है।[4] खेजड़ी वृक्षों की परस्पर गुँथी हुयी डालियां जो धीरे-धीरे मोटी होती हुयी तने का रूप धारण कर लेती हैं, विभिन्न वृक्षों के साथ-साथ

---

1 डा. जयसिंह नीरज - *ललितकला अकादमी, वार्षिकी*, 63 पृ0 41

2 आर. के. वशिष्ठ - *मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा*, पृ0 50

3 रागिनी मित्तल - *जोधपुर शैली के चित्रो का समीक्षात्मक अध्ययन (अप्रकाशित शोधग्रन्थ)*, पृ0 147

4 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 40

अंकित मिलती हैं। जोधपुर क्षेत्र में दिखायी देने वाली गोलाकार, मानवाकार आदि विभिन्न प्रकार की चट्टानें यहां के चित्रों में परिलक्षित होती हैं।[1] इनके मध्य में उगी झाड़ियों का अंकन कलाकारों के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचायक है। किशनगढ़ शैली में अधिकतर सपाट हरे रंग के विभिन्न तानों में मिश्रित हरे भरे मैदानों का अंकन हुआ है। सुदूर क्षितिज में पहाड़ियों, टीलों इत्यादि का अंकन हुआ है।[2] अधिकांश चित्रों में कलाकार द्वारा स्थानीय पशु,पक्षियों के अंकन को प्राथमिकता दी गयी है। यहां चित्रों में मोर व कुर्जा पक्षी का अंकन विशेष रूप से हुआ है जबकि किशनगढ़ शैली में भ्रमर, सारस मुख्य हैं। पशुओं में हाथी, घोड़े, तोते, चिड़ियों, ऊंट आदि का चित्रण प्रायः दोनों ही शैलियों में मिलता है। [चित्र फलक - 19, 27, 38, 128, 130]

बूंदी शैली की अपनी निजी विशेषतायें हैं और राजस्थानी शैली के अन्तर्गत यह सबसे अधिक सजीव है। इन चित्रों की पृष्ठिका पेड़ व झाड़ियों की हरियाली से भरी हुयी है। उस क्षेत्र के भौगोलिक प्रभाव के कारण चित्रकारों ने इनको अपने चित्रण का आधार बनाया है।[3] चित्रतल के ऊपरी भाग में पेड़ों की कतारों को चित्रकारों ने विशेष रूप से चित्रित किया है। वृक्षों के झुण्ड में केले का अंकन विशेष रूप से हुआ है।[4] वृक्षों के पत्तों को गहरी हरी पृष्ठभूमि पर हल्के रंगों से तथा जहां हल्के रंगों की पृष्ठभूमि है वहां गहरे रंग की पत्तियों का अंकन किया है। वृक्षों को सुन्दर लाल-पीले रंग के पुष्पों व लतिकाओं से आच्छादित बनाया गया है। पत्तों के बीच की रेखाओं का अंकन सुवर्ण से चित्रित है, जिससे चित्र में चमक व सौन्दर्य और बढ़ जाता है और लाली लिये किसलय गुच्छों में एकत्रित झूलती कुसुम मंजरियों की घटा देखते बनती है। रसिकप्रिया तथा बारहमासा पर आधारित बने चित्रों में बनी प्राकृतिक घटा विशेष रूप से दर्शनीय है। सरोवर जो कमल दल से ढके बनाये गये हैं, किसी न किसी रूप में अवश्य चित्रित हैं। जल का आलेखन चांदी के रंग से हुआ है। उसमें कहीं-कहीं नीली झलक मिलती है जो आंखों को शीतलता सी प्रदान करती है। सरोवर में क्रीड़ा करते पक्षी, किनारे पर खड़े सारस, मिथुन तथा भवनों में पालतू मृग, पिंजरे में शुक का अंकन तथा ऊंचे अड्डों पर बैठे कबूतरों का अंकन हुआ है। मयूरों को पंखों में मुख छिपाये अथवा नाचते हुये अंकित किया गया है। वृक्षों तथा पक्षियों की आकृतियों का अंकन अलंकारिक ढंग से ही मिलता है।[5] सगतल रंगों की बड़ी-बड़ी इमारतें विविध प्रकार की हरियाली से युक्त पुष्पित एवं पल्लवित वृक्षों का चित्रण एक प्रकार का वैभव प्रस्तुत करते हैं।[6] पशुओं के चित्रण में विशेषतया हाथी का चित्रण बहुत सशक्त एवं सजीव है। वृक्षों की टहनियों के मध्य झूलते मयूर, फुदकते बन्दर, चहचहाते तोते, दौड़ते हिरण तथा बत्तखों की अंकित आकृतियां प्राकृतिक वातावरण में अद्भुत रहस्य की सृष्टि सी कराते से प्रतीत होते हैं।

---

1 सुरेन्द्र मोहन स्वरूप भटनागर - *राजस्थान की लघुचित्र शैलियां, प्रथम खण्ड, जयपुर*, 1972, पृ० 50

2 M.S. Khandhawal - *Kishngarh Painting*, P. 7

3 कलानिधि, त्रैमासिक पत्रिका, अंक 5, वर्ष 2, *भारत कला भवन*, वाराणसी, पृ० 40

4 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, जयपुर, पृ० 11

5 *शोधपत्रिका*, वर्ष 17, अंक -12, पृ० 109

6 *आकृति*, राजस्थान, वर्ष 12, अंक - 3, पृ० 17

बूंदी शैली के ही समान किशनगढ़ शैली के प्राकृतिक परिवेश का अंकन चित्रकारों ने अपने चित्रों में बड़ी दक्षता व बारीकी से किया है। बूंदी शैली में वृक्षों, झाड़ियों, तथा पुष्पो के अंकन में हरे रंग के साथ लाल व नीले रंग की प्रधानता दिखायी पड़ती है। वहीं किशनगढ़ के चित्रों की पृष्ठभूमि में हरे रंग के विभिन्न टोन दिखायी पड़ते हैं। किशनगढ़ के चित्रों में झील, तालाब या सरोवर में बूंदी शैली के समान ही कमल दलों का अंकन हुआ है परन्तु साथ ही उसमें लाल रंग की नौका का अंकन विशेष रूप से हुआ है[1] जो बूंदी के चित्रों में नहीं दिखायी पड़ता है। बूंदी शैली में जहां बारहमासा पर तथा ऋतुओ की विशेषताओं के अनुसार चित्रों का अंकन हुआ है वहीं किशनगढ़ के चित्रों में बारहमासा पर प्रायः अंकन नहीं हुआ है परन्तु बूंदी के चित्रों के ही समान मयूर, सारस, हिरण व तोते का अंकन किशनगढ़ में हुआ है।

बूंदी शैली के चित्रों में आकाश को विभिन्न रंगों से चित्रित किया गया है। विशेष रूप से गहरे नीले आकाश में घुमड़ते श्याम बादल स्वर्ण व लाल रंग के स्पर्श से युक्त हैं।[2] बादल के साथ बक पंक्तियों का चित्रण भी मेघाच्छादित आकाश के मध्य हुआ है। चित्रकार ने आकाश के प्रतिपल बदलते रंग को अपनी तूलिका से बांधने का प्रयास किया है। सुनहरे लाल, पीले रंग के बिखरे बादलों का अंकन हुआ है जो प्रातः कालीन अरूणोदय का द्योतक है। जबकि किशनगढ़ शैली के चित्रों में आकाश में उमड़ते-घुमड़ते बादलों व वर्षा ऋतु का अंकन प्रायः नहीं मिलता है।

प्रकृति के सतरंगे वैभव में संयोजित वास्तु यहां की मौलिक विशेषता है। भवन निर्माण की कला बूंदी शैली की ऐसी विशेषता है जो स्वयं ही प्रकट हो जाती है। यहां के भवन जैसे चित्रों में अंकित किये जाते थे वैसे ही भवन अभी भी विद्यमान हैं यद्यपि इनकी शोभा समय के साथ-साथ मन्द पड़ गयी है। परन्तु हम अपनी कल्पना को इनके वैभवकाल तक उड़ाकर ले जायें तो प्रतीत होगा कि हम किसी स्वप्न संसार में विचर रहे हैं। केले के कुंजों से ढ़के भवन, आकाश की ओर उठे शिखरों के स्वर्ण कलश, छज्जों के नीचे से अपना सौन्दर्य बिखेरते वातायन, छोटे- छोटे लाल पत्थर की विविध बेलबूटों से काटी गयी जालियां, उस पर रेशमी पर्दो से ढ़के वातायन, भवन निर्माण कला के अद्वितीय उदाहरण हैं। बूंदी शैली के ही समान किशनगढ़ शैली के चित्रों में भी कुजों में मध्य से झांकते हुये छज्जों तथा मण्डपों का चित्रण किया गया है। विभिन्न बेलबूटों से अलंकृत जालियां, रेशमी किमखाब के बने पर्दे तथा यहां की भवन निर्माण कला बूंदी शैली के ही समान विशिष्ट हैं। किशनगढ़ शैली के चित्रों के ही समान बूंदी शैली के चित्रों में भी भवनों व प्रासादों का अंकन विशेष रूप से श्वेत रंग से ही हुआ है। किशनगढ़ व बूंदी शैली के प्राकृतिक परिवेश तथा पशु-पक्षियों इत्यादि के उद्दीपन के रूप में जितना विस्तृत, बारीक व रंगीन चित्रण हुआ है उतना अन्य किसी तत्कालीन भारतीय शैली में नहीं मिलता है।[3] [चित्र फलक 17, 19, 38, 40, 145, 146, 147, 148, 150, 151]

---

1 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme in Rajasthani Miniature Painting*, P.76

2 *कलानिधि*, त्रैमासिक पत्रिका, अंक 5, वर्ष 2, भारतकला भवन, वाराणसी, पृ0 29

3 Pramod Chandra - *Bundi Painting*, P. 40

कोटा शैली में प्रकृति निरूपण में कलाकार का सौन्दर्य से परिपूर्ण मानस चित्रों में स्पष्ट रूप से झलकता है। चित्रकारों ने बहुरूपी पुष्पों, मंजरियों से युक्त पेड़-पौधों को सौन्दर्यपरक ढंग से अत्यधिक संतुलित रूप में प्रस्तुत किया है। कोटा में अधिकतर घने जंगल मिलते रहे हैं। अतः प्राकृतिक परिवेश का चित्रण चित्रों में आकर्षक एवं मनोहारी है। शिकार के दृश्यों में यहां के जंगली वातावरण का अंकन विशेष रूप से हुआ है। इन शिकारी दृश्यों की पृष्ठभूमि में अंकित प्राकृतिक परिवेश इस शैली को अलग ही विशेषता प्रदान करते हैं। कोटा शैली में कमल पत्र केले के वृक्षों का अंकन परम्परागत बूंदी शैली से ही लिये गये हैं। कोटा शैली में विशेष रूप से हाथी, सिंह, मोर आदि पशु-पक्षियों का चित्रण हुआ है। हाथियों के अंकन में अपनी कलात्मक विशेषताओं के फलस्वरूप कोटा चित्र कलाजगत का अमूल निधि बन गया।[1] किशनगढ़ की तुलना में हाथियों का चित्रण कोटा व बूंदी शैली में अनोखा अद्भुत है जो चित्रो में वेग, मस्ती व लय की सृष्टि करते हैं और कोटा शैली को मौलिकता प्रदान करते हैं। आकृतियों का अंकन अभिव्यक्तिपरक है। कोटा में चित्रित हाथियों का अंकन किसी भी प्रकार से अजन्ता में चित्रित हाथियों से कम नहीं है।[2]

कोटा शैली के चित्रों में बादलों का अंकन उमड़ते हुये रूप में किया गया है। ऋतुओं के अनुसार बादलों में घनी विद्युत रेखाओं का अंकन मिलता है जो बूंदी शैली के ही समान है। सरोवर में किशनगढ़ शैली के ही समान कमल पुष्पों का अंकन हुआ है उसमें बत्तखों, जल मुर्गियों को तैरते हुये अंकित किया गया है।

जयपुर शैली के चित्रों की पृष्ठभूमि में नदी, पहाड़ों आदि के दृश्य, दूर -दूर तक दिखते मैदान, जंगल और वृक्षावलियों की पक्तियों का अंकन हुआ है। मीलों दूर तक दिखते नगर मन्दिरों के शिखर तथा बहुत दूर तक दिखते अश्वारोही अंकित करने की प्रथा सी उस समय के चित्रों में चल पड़ी थी। प्रत्येक चित्रों में इस प्रकार के दृश्यों का अंकन अवश्य होता था जिसमें चित्रों में गहरायी, दृष्टिक्रम और अत्यधिक विवरण दिखायी पड़ते रहे। इसी प्रकार के दृश्यों का अंकन किशनगढ़ शैली के चित्रों में भी दिखायी पड़ता है पृष्ठभूमि में दूर नजर आते नगर, अश्वारोही, सपाट मैदान, झील या सरोवर का अंकन तथा पहाड़ियों आदि का चित्रण किशनगढ़ शैली में भी विशेष रूप से मिलता है। चित्रण की यह परम्परा राजस्थानी कलाकारों ने मुगल चित्रकारों से ग्रहण की थी[3] और मुगल चित्रों में यह परम्परा यूरोपीय शैली से आयी थी। मुगल चित्रों में शिकार तथा सवारी के दृश्यों में भी इसी प्रकार का विधान देखने को मिलता है। दूरी पर स्थित नगर के मीनार, शिखर तथा शैल मालायें दिखायी जाती हैं। इस दृष्टि से मुगल चित्रों का प्रभाव जयपुर के चित्रों में अधिक दिखायी पड़ता है। सामान्यतः जयपुर शैली के चित्रों में भवन मुगल शैली में ही बने हुये हैं। किशनगढ़ चित्रों में भी बने भवन, प्रासाद, प्रांगण इत्यादि मुगल शैली से प्रेरित हैं। जयपुर शैली के कलाकार उद्यान चित्रण में काफी कुशल थे। उन्होंने उद्यानों में तरह-तरह के पेड़, पशु तथा पक्षियों को बड़ी बारीकी से चित्रित किया है। पेड़ों में विशेष रूप से केले के वृक्षों का प्रयोग मिलता है।[4] पशु-पक्षियों में बतख, कौआ, घोड़े, मयूर आदि का चित्रण हुआ है

---

1 बी. एन. वर्मा - *कोटा भित्ति चित्रांकन परम्परा*, पृ0 101

2 वही, पृ0 101

3 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 24

4 *कलानिधि*, त्रैमासिक पत्रिका, अंक 5, वर्ष 2, भारतकला भवन, वाराणसी, पृ0 28

जबकि किशनगढ़ शैली में कदम्ब, कदम आदि वृक्षों के चित्रण में कलाकारों ने अधिक रूचि प्रदर्शित की है। इसी प्रकार तोता, मृग, हिरण आदि पशु-पक्षियों का अंकन किशनगढ़ के चित्रों में अधिक हुआ है। वृक्षों, लताओं व पौधों आदि को फलों तथा पुष्पों से युक्त बनाया गया है। किशनगढ़ शैली के समान ही जयपुर शैली में भी पशु-पक्षियों को लघुचित्रों में सम्मिलित रूप से बनाया गया है परन्तु उन्हें किसी किसी चित्र में अकेला भी चित्रित किया गया है। सवाई प्रतापसिंह के समय विशेष रूप से देखने को मिलता है कि किशनगढ़ शैली के अधिकतर चित्रों में आकाश में जहां चटक लाल, पीले तथा नारंगी रंगों का प्रयोग किया गया है वहीं जयपुर शैली में नीले व शुभ्र बादलों का अंकन हुआ है। [चित्र फलक - 27, 40, 48, 103, 104, 106, 107]

बीकानेर शैली के चित्रों में प्राकृतिक दृश्यों का अंकन अत्यन्त आकर्षक एवं मनोहारी है। पश्चिमी राजस्थान मे स्थित बीकानेर में वर्षा कम होने के कारण बादल घुमड़-घुमड़ कर गोल छल्ले की भांति आते हैं। अतः जोधपुर के कलाकारों की भांति बीकानेर के कलाकारों ने भी चित्रों मे इसका अंकन किया है। हरी पृष्ठभूमि में फूलों से लदी झाड़ियां, आकाश में घुमड़ते मेघों के बीच सर्पाकार विद्युत का चित्रण चित्रों में हुआ है। नीचे की ओर झालर की तरह झूलते छल्लेदार बादलों का चित्रण सफेद नीले रंग में विशेष रूप से हुआ है जो या तो खण्ड के रूप मे चित्रित किये गये हैं या सम्पूर्ण आकाश में बिखरे दिखायी देते हैं। भवनो तथा गुम्बदों का चित्रण विशेष रूप से मिलता है। चीनी और ईरानी चित्रकला के प्रभाव से युक्त मेघ मण्डल तथा पहाड़ों की छटा एवं फूल-पत्तियों का आलेखन उल्लेखनीय है।[1] बीकानेर शैली के चित्रों में अधिकतर स्थानीय बालू के टीले हरितिमाविहीन पहाड़ियों तथा पशु-पक्षियों में विशेष रूप से ऊंट, भेड़, बकरी, गाय, कुत्ता, सारस आदि का चित्रण हुआ है।[2]

किशनगढ़ में घुमड़ते बादलों का अंकन कम ही हुआ है। बादलों का अंकन विभिन्न रंगों से सपाट रूप में हुआ है। किशनगढ़ शैली में प्रायः भेड़, बकरी आदि का चित्रण नहीं हुआ है। [चित्र फलक - 3, 5, 48, 35, 110, 113, 114]

अलवर शैली के चित्रों की पृष्ठभूमि में प्रायः सफेद बादल, शुभ्र आकाश तथा विभिन्न पशु-पक्षियों से युक्त वन-उपवन, नदी, नाले, पर्वत का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। वृक्षों में पीपल व वड़ और पशु-पक्षियों में घोड़े व मयूर का अंकन मिलता है। जबकि किशनगढ़ शैली में प्रायः पीले, नारंगी व नीले रंग से आकाश का चित्रण हुआ है व वृक्षों मे कदम्ब व कदली वृक्ष का चित्रण अधिक हुआ है। [चित्र फलक - 27, 29, 33, 160, 161]

इस प्रकार विभिन्न शैलियों के तुलनात्मक अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि राजस्थान में प्रकृति की अपार वन-सम्पदा होने के कारण और जगह-जगह तालाबों, झीलों, पहाड़ियों तथा वनों की अधिकता के कारण यहां के लघुचित्रो में इनका चित्रण अधिकाधिक हुआ। यहा जंगली जानवरो की अधिकता रही है। हाथी, चीता, हिरन, सुअर, आदि जंगलों में भागते हुये या बैठे हुये चित्रित किये गये हैं। इनके भवन भी जंगलों में बने दिखाये गये हैं। मकानों के चारों तरफ जंगल, तालाब तथा झीलें दिखायी देती हैं तथा चित्रों का रूपांकन सरलता से किया गया है।

---

1 ब0 पी0 व्यास - *राजस्थान की चित्रकला*, पृ0 20

2 पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2, प्रकाश चन्द्र भार्गव-*बीकानेर चित्र-शैली के उस्ताद रूक्नुद्दीन एवं उनके वशंज*, पृ0 162

विषयगत सरंचना, प्रकिया की भाव श्रृंगार तथा कलात्मक पक्ष के सन्दर्भ में तुलना

राजस्थान का सांस्कृतिक परिवेश अपना निजस्व रखते हुये राजस्थान की मूल सांस्कृतिक धारा के साथ जुड़ा हुआ है। इतिहास, धर्मकला तथा जनजीवन संस्कृति की इन चारों दिशाओं के बीच राजस्थान विशाल मरुभूमि पर अपना स्थान बनाये हुये है। राजस्थानी शैली के लघुचित्रों के विषय में अनेक चर्चायें हैं जिसमें भक्ति परम्परा, रीति परम्परा तथा आधुनिक परम्परा के अतिरिक्त लोककला का समावेश है। यहां प्राचीन काल से ही चित्रण कार्य होता चला आ रहा है। जिसमें मानव ने अपनी अभिव्यक्ति द्वारा भौगोलिक तथा प्राकृतिक दशाओ के आधार पर अनेक प्रकार की वस्तुओं को अपने चित्र का विषय बनाया। कलाकारों ने जीवन के लगभग समस्त पक्षों को चित्रांकित किया है। राजस्थानी विषयों में प्रेम की अभिव्यक्ति अत्यन्त सुन्दर ढंग से हुयी है। प्रेम को यहां के कलाकारों ने संवेदना की चरम् सीमा तक ग्रहण किया है तथा प्रणय सम्बन्धों को पवित्र रूप प्रदान किया गया है। यदि कवियों ने प्रणय को कविता का विषय बनाया है तो चित्रकारों ने अपनी तूलिका से उसके सजीव चित्रों का अंकन किया। जिस पर विशेषरूप से कृष्ण की माधुरी लीला ने प्रभाव डाला। कृष्ण राधा का प्रेम जो एक दैवीय प्रेम था, के प्रेम प्रंसगों का चित्रण कलाकारों का प्रमुख विषय था। राजपूतों के हिंसक स्वभाव को अहिंसक बनाने में इन चित्रों का पूर्ण योगदान रहा है। यही कारण है कि राजस्थान की लगभग प्रत्येक शैली में राधा कृष्ण का किसी न किसी रूप में अंकन अवश्य हुआ है। जिसमें कृष्ण के लोक रक्षक एवं मंगलकारी स्वरुप का ही चित्रण हुआ है।[1] राजस्थानी चित्रकला के कुछ विषय रागरागिनी, बारहमासा, ऋतुवर्णन, संगीतरचना, नायिका भेद इतने सराहनीय हैं कि लगभग सभी शैलियों में इन पर चित्र बने। रागरागिनी, बारहमासा, ऋतुवर्णन आदि विषय भक्ति कालीन काव्य में निरपेक्ष एवं सापेक्ष दोनों ही रूपों में उपलब्ध होते हैं जिनका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृष्ण चरित्र से ही सम्बन्ध रहा।[2] इसके अलावा गीतगोविन्द, सूरसागर, भगवतपुराण, रामायण, रसराज, नागरसमुच्चय, बिहारीसतसई आदि ग्रन्थों के आधार पर लगभग सभी शैलियों में चित्रण कार्य हुआ।[3]

वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य, चैतन्य महाप्रभु आदि महात्माओं तथा आचार्यों ने अपने सिद्धान्तों के आधार पर जनता में एक नवीन धार्मिक प्रेरणा जागृत की। जिसका प्रभाव भारतीय कला व संस्कृति पर पड़े बिना न रह सका। वल्लभाचार्य तथा रामानुजाचार्य ने धार्मिक क्षेत्र में एक ऐसी सगुण धारा को प्रभावित किया जिसमें कृष्ण के लोकरंजक व लोकरक्षक स्वरुप ने भारतीय जनमानस को मोह लिया। इस नवीन हिन्दू धर्म से प्रेरणा लेकर चित्रकार की तूलिका एक बार फिर सशक्त हो उठी।[4] धार्मिक विषय से सम्बन्धित चित्र निर्माण में राजस्थानी शैली ने पूर्णरूप से अपभ्रंश शैली का स्थान ग्रहण किया। वैष्णव सम्प्रदाय की ख्याति में निरन्तर वृद्धि होने के साथ-साथ श्रीमद्भागवतगीता वैष्णव सम्प्रदाय का धार्मिक ग्रन्थ बनी जिसमें भगवान कृष्ण को एक महत्वपूर्ण अवतार के रूप में मान्यता दी गयी। वैष्णववाद के साथ-साथ भक्ति और प्रेम की धारायें जन-जीवन में प्रमुख हो गयी।[5]

---

1 विनय, *अलवर अंक*, पृ0 69

2 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 87

3 डा. नगेन्द्र - *हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, षष्ठ भाग*, पृ0 205

4 एम. के. वर्मा - *कला की ओर*, पृ0 16

5 डा. रामनाथ - *मध्यकालीन भारतीय कलायें एवं उनका विकास*, पृ0 9

वैष्णवों की भक्ति और प्रेम की इन भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिये चित्रकला के सिद्धान्तो और विषयो मे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये और कृष्णभक्ति विषयक चित्र बनने की नयी परिपाटी चल पड़ी तथा प्रेम व भक्ति के माध्यम से चित्रकला में लौकिक विषयों का भी चित्रण सम्भव हुआ। इस प्रकार के धार्मिक चित्रों के निर्माण का कार्य राजस्थान की लगभग सभी शैलियों व उपशैलियों में हुआ। गीतगोविन्द, भागवत पुराण, रामायण आदि के आधार पर चित्रकारों ने धार्मिक भावात्मक चित्रण कार्य किया। सत्रहवीं शती के मध्य रची गयी भागवत पुराण की चित्र सहित अनेक प्रतियां उपलब्ध हैं। गीतगोविन्द के आधार पर भी चित्रकारों ने अनेक चित्रों का निर्माण किया। गीतगोविन्द के आधार पर बने कुछ चित्र प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई में सुरक्षित हैं।[1 अ ब] राजस्थानी चित्रकारों ने गीतगोविन्द के चित्रों में राधा कृष्ण के प्रणय बन्धन को अत्यन्त पवित्र एवं अलौकिक मानकर इतना सुन्दर व सजीव चित्रण किया है कि चित्रकारों के लिये वह स्वयं ही अत्यन्त पवित्र एवं लोकप्रिय विषय बन गया। कहीं-कहीं राधा को कृष्ण के रूप में और कृष्ण को राधा के रूप में दर्शाते हुये इस श्रृंगारिक-प्रक्रिया को व्यक्तकर मानव मन की रति रंग प्रेम भावना को समरूप दर्शाने का प्रयास किया है। वैष्णव धर्म के आधार पर कृष्ण के साथ-साथ भगवान राम, शिव-पार्वती, दुर्गा आदि के रूपों ने चित्रकारों को मोहित किया। इसमें कृष्ण स्वयं भगवान होते हुये मानव के रूप मे गोप जीवन के चित्रण के आधार रहे। इस प्रकार एक नयी धारा का जन्म हुआ जिसमें न केवल वैष्णव विषयों का ही चित्रण होता था अपितु सर्वथा लौकिक विषय भी बनाये जाते थे। तत्कालीन धार्मिक भावना ने काव्य को व चित्रमाला को मूलरूप से प्रभावित किया। काव्य और चित्रमाला का यह पारस्परिक समन्वय विशेष रूप से दृष्टव्य है क्योंकि दोनों ही मनुष्य की सौन्दर्यानुभूति से प्रेरित थे।

केशवदास के काव्य ने दो परिपाटियों को जन्म दिया। उन्होंने सोलह श्रृंगार व स्त्री के सोलह प्रसाधनों का वर्णन किया परन्तु रसिकप्रिया में राधा कृष्ण की प्रेम लीला का मुख्य रूप से वर्णन है जिसे राजस्थान की लगभग सभी शैलियों में चित्रित किया गया है। केशव के सामने कृष्णचरित्र की दो परम्परायें विद्यमान थीं[2] - प्रथम जयदेव और विद्यापति की परम्परा, जिसमें नायक और नायिका के रूप में कृष्ण राधा का उल्लेख किया जाता था। द्वितीय सूरदास, नन्ददास आदि भक्त कवियों की परम्परा, जिसमें कृष्ण के विशिष्ट जीवन लीलाओं को उदाहरण रूप में चित्रित किया गया है। नायक-नायिका भेद सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ होने के कारण रसिकप्रिया में प्रथम परम्परा का ही निर्वाह अधिक हुआ है। रीतिकालीन वैभवपूर्ण सामन्ती विलासमय दरबारी जीवन का कलाकारों ने राधा-कृष्ण के बहाने खुलकर चित्रण किया है। कृष्ण चरित्र सम्बन्धी ग्रन्थ बिहारीसतसई के आधार पर भी अनेक चित्रों का अंकन हुआ है। इसमें रसिकप्रिया ग्रन्थ के समान ही श्रृंगार रस की ही प्रधानता है। बिहारीसतसई में उपलब्ध कृष्ण सम्बन्धी दोहों को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं, जिसे कलाकारों ने भी अपनी तूलिका का विषय बनाया।[3]

---

1 अ रामकुमार विश्वकर्मा - *भारतीय चित्रकला*, पृ0 1

ब डा0 रेखा कक्कड़ - *राजस्थानी चित्रकला, कलालेख, प्रतियोगिता दर्पण*, जनवरी 1990, पृ0 603

2 डा. राम सागर त्रिपाठी - *मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी*, पृ0 434

3 डा. नगेन्द्र - *हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास*, पृ0 518

1 स्तुतिपरक- जिसमें कवि अपनी दीनता, विनय मुमुक्षा, मानमर्षता का विश्लेषण करता है।

2 जीवनलीलापरक - जिसमें कृष्ण की लीलाओं को आधार बनाकर संक्षिप्त रूप में विस्तृत भावों को अभिव्यक्त किया गया है। इन दोहों को भी तीन भागों में रख सकते है - बाललीला सम्बन्धी, प्रेमलीला सम्बन्धी तथा अलौकिक लीला सम्बन्धी।

3 नायक-नायिका भेदपरक - जिन दोहों में राधा कृष्ण के बहाने नायक-नायिका की श्रृंगारिकता का चित्रण किया गया है। यथा-दर्शन, आकर्षण, उत्कण्ठा की तीव्रता, संकेत व अभिसार, हास्य-विनोद, भावगोपन, दूतीसम्प्रयोग, खण्डिता वर्णन, वियोग वर्णन इत्यादि।

सूरसागर भक्तकवि सूरदास द्वारा ब्रजभाषा में रचित एक महत्वपूर्ण रचना है। सूर का वर्ण्य विषय कृष्ण का प्रिय व प्रेमी रूप ही रहा है, इसलिये कृष्ण के शील, शक्ति और सौन्दर्य गुणों में उनका मन लीला विहारी कृष्ण के सौन्दर्य पक्ष में ही रमा है। माधुर्य भाव की विभिन्न लीलाओं को आधार बनाकर सूरदास ने वात्सल्य एवं दाम्पत्य रति के असंख्य चित्र प्रस्तुत किये। भगवान कृष्ण की अलौकिक लीलाओं, बाल चेष्टाओं तथा राधा और गोपियों के संयोग और वियोग पक्ष के विशद निरूपण से सूरसागर ओतप्रोत है। इनको अपने चित्रों का विषय आधार बनाकर राजस्थानी चित्रकारों ने अनेकों चित्रों का निर्माण किया। दशमस्कन्ध सूरसागर का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय है। इस स्कन्ध के पूर्वार्द्ध में कृष्ण जन्म से लेकर पूतनावध, कागासुरवध, नामकरण, अन्नप्राशन, वर्षगांठ, बाल छवि वर्णन, क्रीड़ा, माखन चोरी, गोदोहन, गोचारण, कालीदह, जलपान, दावानलपान, चीरहरण, गोवर्धन लीला, रासलीला, दानलीला, राधा कृष्ण की अनन्य प्रेम लीलायें तथा कृष्ण के मथुरा आगमन के उपरान्त माता यशोदा व गोपियों आदि के विरह का विस्तार से वर्णन हुआ है। चित्रकारो ने अधिकांशतया दशम स्कन्ध के इसी भाग का ही चित्रण किया है। किशनगढ़ के शासक नागरीदास के नागरसमुच्चय में राधा कृष्ण की श्रृंगारपरक भावनाओं का ही अधिक चित्रण हुआ है।[1] उत्सवों, विहार, दैनिक कार्य-कलापों आदि के माध्यम से नागरीदास ने राधा कृष्ण का जो अंकन किया है, वह किशनगढ़ शैली मे चित्रण के लिये विशेष आधार रहा है। बणीठणी के संसर्ग से उन्होंने राधाकृष्ण के युगल स्वरूप के अनेक चित्र प्रस्तुत किये। उनका काव्य चित्रमय है जिसका कारण है उनका स्वयं चित्रकार व कला प्रेमी होना है। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि नागरसमुच्चय पर आधारित चित्र केवल किशनगढ़ शैली में ही बने हैं।

राजस्थानी कलाकारों ने रसिकप्रिया, बिहारीसतसई तथा रसराज को आधार बनाकर विभिन्न नायिकाओं का चित्रण किया है। सौन्दर्य की खोज में रत इन कलाकारों ने प्रकृति का आत्मा से ऐक्य स्थापित कर सर्वत्र सौन्दर्य ही सौन्दर्य देखा। इन चित्रकारों ने मनुष्य के विभिन्न भावों का सरलीकरण कर रस निष्पत्ति में बहुत सहायता पहुँचायी।

---

1 फैयाज अली खान - *भक्तवर नागरीदास* पृ0 19 (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), जयपुर

यही कारण है कि राजस्थान की विभिन्न शैलियों में नायिका भेद वाले चित्रों में अपरिमित सौन्दर्य, प्रेम की आन्तरिक अनुभूति तथा लौकिक चेतना के दर्शन होते हैं। वस्तुतः प्रकृति एवं चेतना के बीच का आवरण रसिक व्यक्ति के लिये अत्यन्त हलका होता है और इस प्रकार रसिक जो कुछ भी ग्रहण करता है वह हर्षातिरेक होता है जो गूंगे के गुड़ के समान वाणी वर्णन से परे है। प्रेम का प्रवाह नेत्रों से उमड़ता है और बहुत कुछ दृश्यात्मक है। यही कारण है कि इस अपरिमित सौन्दर्य के चित्रण में कवि से चित्रकार कहीं आगे पहुंच गया है। इन कवियों ने जो विषय चित्रकार को चित्रांकन के लिये दिये, उसे वे अपनी सजग कल्पना एवं बहुमुखी प्रतिभा से चित्रित कर हमें उस लोक में पहुंचा देते हैं जहां अपरिमित सौन्दर्य के आलोक में रस का सार हिलोरें लेता है। चित्रकारों ने नायिका भेद के विभिन्न रूपों को बहुलता से अंकित किया है। जिसमें प्रमुख रूप से राधा और गौण रूप से अन्य गोपियों को आलंबन व आश्रय बनाकर चित्रण किया है।[1] यह विभिन्न नायिकायें भिन्न रूपों में चित्रित की गयी हैं - स्वाधीनपतिका नायिका, उत्का (उत्कण्ठिता) नायिका, वासक सज्जा नायिका, अभिसन्धिता नायिका, खण्डिता नायिका, प्रोषितपतिका नायिका, विप्रलब्धा नायिका, अभिसारिका नायिका, शुक्लाभिसारिका नायिका इत्यादि।[2]

भारतीय संगीत का आधार राग है। शारंगदेव ने अपने संगीत रत्नाकर में ध्वनि की उस विशिष्ट रचना को जिसमें स्वर तथा वर्ण द्वारा सौन्दर्य प्राप्त हुआ है और जो श्रोताओं के चित्त को प्रसन्न कर सके राग माना है।[3] अधिकतर संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों एवं कृष्ण भक्ति काव्य में 6 रागों एवं 36 रागनियों का उल्लेख मिलता है।[4] काव्य एवं संगीत का परस्पर सम्बन्ध होने के कारण राग-रागनियों में बद्ध काव्य भक्ति काव्य की विशेष देन है। अमूर्त का मूर्तिकरण करने की प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति की विशेष देन रही है। देवी - देवताओं में कल्पित मूर्त स्वरूप के समान ही राग-रागनियों की मूर्त्तता का जो कलात्मक चित्रण एवं उत्कीर्णन क्रमशः चित्रकला व मूर्तिकला में हुआ है, वह संगीत एवं अमूर्त्तता के मूर्तिकरण का प्रत्यक्ष उदाहरण है। राग-रागिनी के स्वरूप चित्रण में काव्य विशेष रूप से आधार रहा है। राग-रागनियों के स्वतंत्र ग्रन्थों के अतिरिक्त देवी-देवताओं, नायक-नायिकाओं राधाकृष्ण आदि से सम्बन्धित काव्य की चित्रोपयोगिता तथा अष्ट नायिकाओं के विविध रूपों ने राग-रागनियों के चित्रण में विशेष योग दिया। कुछ ऐसे कथानक जिनका सम्बन्ध राग से है तथा ऐसे महीनों और ऋतुओं का चित्रण जिनमें वे राग गाये जाते हैं। राग के भाव-रस आदि का चित्रण रागमाला में विशेष रूप से हुआ है।[5] कुछ राग-रागनियों के स्वरूप का सम्बन्ध कृष्ण चरित्र से जोड़ने के कारण कृष्ण काव्य उनके अंकन का आधार रहा है।[6] राजस्थानी की सभी शैलियों में किशनगढ़ के अतिरिक्त राग-रागनियों पर बहुलता से चित्रों

---

1 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme in Rajasthani Miniature Painting*, P. 70

2 A. K. Swamy - *Rajput Painting*, P. 43

3 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राग-रागिनी संयुक्त राजस्थान*, अक्टूबर-नवम्बर 1957, पृ0 31

4 उषा गुप्ता - *हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत*, पृ0 176

5 डा. राम कुमार विश्वकर्मा - *भारतीय चित्रकला में संगीत तत्व*, पृ0 44

6 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 106

का निर्माण हुआ है। इस प्रकार राजस्थानी कलाकारों ने नायिका भेद, रागमाला आदि के चित्रण में भगवान कृष्ण को नायक तथा उनकी प्रेमिका राधा को नायिका के रूप में चित्रित किया है। राधा कृष्ण को आदर्श प्रेमी-प्रेमिका का रूप दिया गया है। इस प्रकार समस्त राजस्थानी शैली में राधा कृष्ण ही सर्वत्र दिखायी देते हैं।

धर्म से अलग तत्कालीन सामाजिक व दैनिक जीवन से सम्बन्धित विविध पक्ष भी राजस्थान चित्रण के विषय आधार बने। यहां के रीति-रिवाज, प्रथायें, परम्परायें, विवाह, त्यौहार, उत्सव, मेले आदि का प्रभाव यहां की चित्रकला पर पड़ा जो कि तात्कालिक समाज के ढांचे को संभालने में सहायक सिद्ध हुआ। यहां के लोक साहित्य को लोक सम्पत्ति कहा जाता है। इसमें सम्पूर्ण समाज का हास - विलास एवं उल्लास - उच्छवास निहित है। लोकमानस के सुख-दुख की अनुभूतियों का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण लोक साहित्य की विशेषता है।[1] यहां के लघुचित्रों में सामाजिक जन-जीवन के दोनों पक्ष लोकपक्ष एवं निजीपक्ष का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक विषयों में भी राजस्थानी समाज के दोनों पक्षों का चित्रांकन सामने आता है।[2] अधिकांश चित्रों में राजपूतों के जीवन व उनकी संस्कृति का भी चित्रण मिलता है। राजा-महाराजाओ के व्यक्ति चित्र, दरबारी दृश्य तथा आखेट दृश्य आदि का चित्रांकन राजस्थान की प्रायः सभी शैलियों में हुआ है।[3]

सामाजिक प्रतिष्ठा एवं समाज की दृष्टि से नरेशों के बाद सामन्तों व जागीरदारों का स्थान होता था।[4] राजस्थानी चित्रों में आरम्भ से अन्त तक समाज की मनोदशाओं के आधार पर विभिन्न भावनाओं का चित्रण हुआ है। यही कारण है कि सभी प्रकार के चित्रो में धार्मिक, सामाजिक, सात्विक एवं लोकतथ्यों का प्रदर्शन हुआ है जो तत्कालीन सरल सामाजिक व्यवस्था का सही प्रतिबिम्ब है।[5]

प्रणय का महत्व मानव जीवन के आदिकाल से ही रहा है। चित्रकारों ने न केवल बारहमासा, ऋतुचित्रण, नायिकाभेद तथा राग-रागिनियों के चित्रों में प्रणय को मुख्य विषय के रूप में चित्रित किया वरन् लोक तत्वों से परिपूर्ण विभिन्न लोक कथाओं हीर-रांझा, लैला-मजनूँ, रूपमती- बाजबहादुर, चम्पावती-बिल्हण आदि की प्रेम कथाओं को कलाकारों ने अत्यन्त सजीव व सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। चन्दवरदाई कृत पृथ्वीराजरासो का आधार लेकर चित्र बनाये गये। जिसमें सेना, अस्त्रागार, युद्ध की तैयारी, युद्धाभ्यास, दरबारी जीवन से सम्बन्धित, हुक्का पीते हुये, नृत्य देखते हुये, उत्सव मनाते हुये सम्राटों का अंकन विशेष रूप से मिलता है। राजस्थानी चित्रों का वृहद अंश व्यक्ति चित्रों के रूप में निखरा है।

राजस्थानी कलाकारों ने विभिन्न ऋतुओं की व बारहमासा के मनोवैज्ञानिक पक्ष का सूक्ष्म व गम्भीर अध्ययन चित्रों में देखने को मिलता है। कलाकारों ने नायक और नायिकाओं के श्रृंगारिक विरह और मिलन की क्रियाओं को बारहमासा के चित्रों में दर्शाने में महान सफलता प्राप्त की है।[6] श्रावणमास के हरे भरे वातावरण, नायक-नायिका की

---

1 कालूराम शर्मा - *उन्नीसवीं शती का राजस्थान का सामाजिक व आर्थिक जीवन*, पृ० 105

2 Rooplekha - Vol. XXVII, Benerjee - *Romanticism in India*, P. 36

3 रघुबीर सिंह - *पूर्व आधुनिक राजस्थान*, पृ० 135

4 जगदीश सिंह गहलौत - *राजस्थान का सामाजिक जीवन*, पृ० 28

5 डा. शिखा रानी गुप्ता - *राजस्थानी चित्रकला में समाज का रूप (अप्रकाशित शोध ग्रन्थ)*, पृ० 137

6 *बारहमासा चित्रावली* - जोधपुर कुँवर संग्राम सिंह संग्रहालय

काम-वासना को जागृत करते हैं। वर्षा में भीगते हुये मेघाच्छादित आकाश के नीचे नायक-नायिका एक-दूसरे को आलिंगन करते हुये[1], ग्रीष्म में वैशाख एवं ज्येष्ठ मास की गरमी से व्याकुल नायक-नायिका[2] तथा पंखे से नायिका द्वारा नायक को हवा करते दर्शाया गया है।

यद्यपि उपरोक्त विषयों का अंकन प्रायः सभी शैलियों में हुआ है परन्तु प्रत्येक शैली अपनी स्थानीय विशेषताओं से प्रभावित रही है जिसके आधार पर कुछ भिन्नतायें भी पायी जाती हैं। यदि किसी शैली में बारहमासा का चित्रण अधिक हुआ है तो किसी शैली में व्यक्ति चित्रण व आखेट चित्रण की अधिकता है। जैसे कि मेवाड़ शैली में सूरसागर पर आधारित कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन अन्य शैलियो की तुलना में अधिक हुआ है। सूरसागर को चित्रित करने में मेवाड़ शैली की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। राजस्थान की सर्वप्रथम वास्तविक चित्रशाला महाराणा जगतसिंह (1628 ई - 1652 ई) के राज्यकाल में उदयपुर में प्रारम्भ हुई थी। जिसे चित्रकारों की ओवरी के नाम से जाना जाता है।[3] 1650-51 ई0 के मध्य चित्रित सूरसागर कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है जिसके अनेक पदांकित सचित्र पन्ने गोपी कृष्ण कनोडिया कलकत्ता के निजी संग्रह में उपलब्ध है। मेवाड़ शैली के ये चित्र कलात्मक व अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के हैं। भ्रमरगीत प्रसंग पर आधारित मेवाड शैली मे 1659 ई में चित्रित अनेक पन्ने राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित है। गोवर्धनधारण प्रसंग पर अनेकों चित्रों का संग्रह जो बड़ौदा म्यूजियम में उपलब्ध हैं।[4] में पत्रों के चारों ओर पद लिखे हैं तथा बीच में पदों के भाव के आधार पर चित्र अंकित हैं। सूरसागर सम्बन्धी अनेक चित्र ऐसे हैं जिन पर केवल कृष्ण के लीला सम्बन्धी शीर्ष ही अंकित हैं। अधिकतर चित्र बाललीला, अलौकिक लीला व श्रृंगारपरक लीला से सम्बन्धित है।

सत्रहवीं शती के मध्य तक रसिकप्रिया राजस्थान की सभी शैलियों में प्रमुख विषय बन गया। मेवाड़, मारवाड़, बीकानेर, बूंदी, कोटा शैलियों में चित्रित रसिक प्रिया पर आधारित चित्र कला की दृष्टि से उत्कृष्ट उदाहरण है। [चित्र फलक - 110, 118, 149, 152] परन्तु अन्य शैलियों की तुलना में बूंदी शैली में रसिकप्रिया का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से बूंदी ओरछा के समीप रहा है तथा बूंदी के कलात्मक परिवेश और काव्यात्मक वातावरण ने केशव के प्रभाव को अधिक ग्रहण किया है। अट्ठारहवीं शती में चित्रित बूंदी शैली के रसिकप्रिया के अनेक चित्र विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। [चित्र फलक - 149, 156] राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित 48 पन्नों की अपूर्ण रसिक प्रिया कला की उत्कृष्ट धरोहर है।[5] प्रत्येक चित्र के ऊपरी भाग में रसिकप्रिया का शुद्ध छन्द कलात्मक ढंग से लिखा है। सभी चित्र गहरे लाल हाशिये से परिवेष्ठित हैं। उनमें अधिकतर सुनहरा, लाल, हरा, नीला, गुलाबी आदि रंगो का प्रयोग किया गया है। अट्ठारहवीं शती के मध्य में बने यह चित्र राधा कृष्ण की लीलाओं के परिवेश के आधार पर तीन भागों में विभाजित किये जा सकते है।[6]

---

1 चित्र संख्या 15-552, *बूंदी शैली, अट्ठारहवीं शती, विक्टोरिया अल्बर्ट संग्रहालय,* लन्दन

2 ज्येष्ठ मास, बीकानेर, *अट्ठारहवीं शती, चित्र संख्या 51 60/3 राष्ट्रीय संग्रह,* नई दिल्ली

3 भंवर लाल शर्मा - *राजस्थान के भित्ति चित्र, संस्कृति,* वर्ष 7, अंक 1-2, पृ0 39

4 O.C. Ganguly - *Critical Catalogue of Miniature Painting in the Baroda Museum,* P. 7

5 Lalit Kala, Vol. 3-4, A. Banerjee - *Illustrations to the Rasikpriya from Bundi & Kota*, P. 67

6 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य,* पृ0 96

काम-वासना को जागृत करते हैं। वर्षा में भीगते हुये मेघाच्छादित आकाश के नीचे नायक-नायिका एक-दूसरे को आलिंगन करते हुये[1], ग्रीष्म में वैशाख एवं ज्येष्ठ मास की गरमी से व्याकुल नायक-नायिका[2] तथा पंखे से नायिका द्वारा नायक को हवा करते दर्शाया गया है।

यद्यपि उपरोक्त विषयों का अंकन प्रायः सभी शैलियों में हुआ है परन्तु प्रत्येक शैली अपनी स्थानीय विशेषताओं से प्रभावित रही है जिसके आधार पर कुछ भिन्नतायें भी पायी जाती हैं। यदि किसी शैली में बारहमासा का चित्रण अधिक हुआ है तो किसी शैली में व्यक्ति चित्रण व आखेट चित्रण की अधिकता है। जैसे कि मेवाड़ शैली में सूरसागर पर आधारित कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन अन्य शैलियों की तुलना में अधिक हुआ है। सूरसागर को चित्रित करने में मेवाड़ शैली की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। राजस्थान की सर्वप्रथम वास्तविक चित्रशाला महाराणा जगतसिंह (1628 ई - 1652 ई) के राज्यकाल में उदयपुर में प्रारम्भ हुई थी। जिसे चित्रकारों की ओवरी के नाम से जाना जाता है।[3] 1650-51 ई0 के मध्य चित्रित सूरसागर कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है जिसके अनेक पदांकित सचित्र पन्ने गोपी कृष्ण कनोड़िया कलकत्ता के निजी संग्रह में उपलब्ध है। मेवाड़ शैली के ये चित्र कलात्मक व अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के हैं। भ्रमरगीत प्रसंग पर आधारित मेवाड़ शैली में 1659 ई में चित्रित अनेक पन्ने राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित है। गोवर्धनधारण प्रसंग पर अनेकों चित्रों का संग्रह जो बड़ौदा म्यूजियम में उपलब्ध हैं।[4] में पत्रों के चारों ओर पद लिखे हैं तथा बीच में पदों के भाव के आधार पर चित्र अंकित हैं। सूरसागर सम्बन्धी अनेक चित्र ऐसे हैं जिन पर केवल कृष्ण के लीला सम्बन्धी शीर्ष ही अंकित हैं। अधिकतर चित्र बाललीला, अलौकिक लीला व श्रृंगारपरक लीला से सम्बन्धित है।

सत्रहवीं शती के मध्य तक रसिकप्रिया राजस्थान की सभी शैलियों में प्रमुख विषय बन गया। मेवाड़, मारवाड़, बीकानेर, बूंदी, कोटा शैलियों में चित्रित रसिक प्रिया पर आधारित चित्र कला की दृष्टि से उत्कृष्ट उदाहरण है। [चित्र फलक - 110, 118, 149, 152] परन्तु अन्य शैलियों की तुलना में बूंदी शैली में रसिकप्रिया का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से बूंदी ओरछा के समीप रहा है तथा बूंदी के कलात्मक परिवेश और काव्यात्मक वातावरण ने केशव के प्रभाव को अधिक ग्रहण किया है। अट्ठारहवीं शती में चित्रित बूंदी शैली के रसिकप्रिया के अनेक चित्र विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित है। [चित्र फलक - 149, 156] राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित 48 पन्नों की अपूर्ण रसिक प्रिया कला की उत्कृष्ट धरोहर है।[5] प्रत्येक चित्र के ऊपरी भाग में रसिकप्रिया का शुद्ध छन्द कलात्मक ढंग से लिखा है। सभी चित्र गहरे लाल हाशिये से परिवेष्ठित हैं। उनमें अधिकतर सुनहरा, लाल, हरा, नीला, गुलाबी आदि रंगों का प्रयोग किया गया है। अट्ठारहवीं शती के मध्य में बने यह चित्र राधा कृष्ण की लीलाओं के परिवेश के आधार पर तीन भागों में विभाजित किये जा सकते है।[6]

---

1 चित्र संख्या 15-552, *बूंदी शैली, अट्ठारहवीं शती, विक्टोरिया अल्बर्ट संग्रहालय, लन्दन*

2 ज्येष्ठ मास, बीकानेर, *अट्ठारहवीं शती, चित्र संख्या 51 60/3 राष्ट्रीय संग्रह, नई दिल्ली*

3 भंवर लाल शर्मा - *राजस्थान के भित्ति चित्र, संस्कृति,* वर्ष 7, अंक 1-2, पृ0 39

4 O.C. Ganguly - *Critical Catalogue of Miniature Painting in the Baroda Museum*, P. 7

5 Lalit Kala, Vol. 3-4, A. Banerjee - *Illustrations to the Rasikpriya from Bundi & Kota*, P. 67

6 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य,* पृ0 96

1 महलों का परिवेश - जिसमें केशव की विलासपूर्ण अभिव्यक्ति के अनुरूप बारहदरियां, रंगबिरंगा प्रांगण, परकोटा तथा बड़े-बड़े कमरे, मुगल शैली मिश्रित व घुमावदार राजपूत छतरियां तथा धवल भवन चित्रित हैं। अट्टालिकाओं के परिवेश में राधा कृष्ण की रंगरेलियां अंकित हैं। वैभव का वातावरण, रंग बिरंगा फर्श, चित्रित स्तम्भ, सुनहरी कामदार पृथक पर्दे व चिकें आदि राजसी ठाठबाट से सुशोभित सारा वातावरण बड़े मनोयोग से चित्रित किया गया है।

2 कुंज और वनों का परिवेश - कुछ चित्रों का आधार कुंज और वन हैं जहां राधा कृष्ण की लीलाओं का चित्रण किया गया है। लता-गुल्मों से आच्छादित उपवन, कमलों से सुशोभित सरोवर, अनेक फूलों तथा पेड़-पौधों की पृष्ठभूमि में राधा-कृष्ण को नायक-नायिका भेद के रूप में रंगरेलियों का सुन्दर चित्रण किया गया है।

3 कुछ चित्रों में राधा कृष्ण की श्रृंगार लीलाओं का क्षेत्र गलियाँ या खुला हुआ परिवेश चुना गया है।

जोधपुर शैली मे विभिन्न प्रकार के ऐतिहासिक लोक कथाओं के प्रेम प्रसंगों का चित्रण अधिक हुआ है। ढोलामारू, मागूलदे, निहालदे आदि लोक कथाओं पर आधारित अनेक चित्रों का निर्माण हुआ है। जोधपुर शैली में राजाओं के व्यक्ति चित्र का अंकन भी विशेष रूप से हुआ है।[1] [चित्र फलक - 127] जबकि बीकानेर शैली में मुगल चित्रों की आखेट प्रतिलिपियां, दरबार दृश्यों का अंकन अधिक हुआ है।[2] जयपुर शैली में रामायण, महाभारत, कृष्णलीला, दुर्गा पाठ तथा वात्स्यायनकृत कामसूत्र पर आधारित कामोत्तेजक विषय पर भी चित्रों का अंकन विशेष रूप से हुआ है। [चित्र फलक - 103, 106]

अलवर शैली में राधाकृष्ण के अलावा वेश्याओं पर भी चित्र बने मिलते हैं। जिन पर अंग्रेजी शैली का प्रभाव दिखायी पड़ता है।[3] कोटा शैली में आखेट पर आधारित चित्रों का निर्माण अधिक हुआ। रेखाचित्र, कृष्णचित्र, बीजासोरण, मधुमालती की कथा व ढोलामारू के प्रेम प्रसंगों को भी विशेष रूप से चित्रित किया गया है। [चित्र फलक - 132, 136, 139]

किशनगढ़ शैली में राधा कृष्ण के श्रृंगारिक पक्ष का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। राधा कृष्ण के प्रेम पर आधारित यह चित्र अधिकांशतः नागरसमुच्चय ग्रन्थ पर ही आधारित थे जबकि अन्य शैली में इस ग्रन्थ पर आधारित चित्र नहीं मिलते हैं। किशनगढ़ के कलाकारों ने नागरीदास व उनकी प्रेमिका बणीठणी को राधा कृष्ण के आदर्श रूप में कल्पना कर उसे चित्रांकित किया जो किशनगढ़ शैली की मुख्य विशेषता रही जबकि अन्य किसी शैली मे इस प्रकार की विशेषता नहीं मिलती है। किशनगढ़ शैली में रागमाला पर आधारित चित्र नहीं प्राप्त होते हैं जबकि अन्य शैलियों में रागमाला पर आधारित असंख्य चित्रों का निर्माण हुआ है।

---

1 सुन्दर मोहन स्वरूप भटनागर - राजस्थान की लघुचित्र लोककला शैली, ललित कला अकादमी, जयपुर, पृ0 49

2 श्री कुमार सम्भव - ललितकला अकादमी, जयपुर, पृ0 68

3 मोहन लाल गुप्ता - ललित अकादमी जयपुर, पृ0 19

राजस्थानी लघुचित्रों में टेम्परा तकनीक का प्रयोग किया गया है। अधिकतर चित्रों में सपाट रंग भरे गये हैं और रेखाओं द्वारा उभारा गया है। चित्रों में बारीकी बहुत अधिक देखने को मिलती है। राजस्थानी चित्रकारों ने बहुत ही बारीक ब्रुशों का प्रयोग किया तथा चित्रण पद्धति में लकड़ी के ठप्पों आदि का भी प्रयोग हुआ है जो लकड़ी के ब्लाक जैसे होते थे। रंगांकन के बाद ये आकर्षक लगते थे। इसी प्रकार से पिछवाई पेन्टिंग कपड़े पर बनायी जाती थी जिसमें कच्चे तथा पक्के दोनों प्रकार के रंगों का समावेश किया जाता था। राजस्थानी चित्रों में जल रंगों की अधिकता है। अंडे की जर्दी का प्रयोग उन्होंने अपने चित्रों के रंगों को स्थिर रखने के लिये किया। लघुचित्रों में प्रयुक्त कागज का निर्माण परत दर परत कई लेयर लगाकर किया गया। चटकीले रंगो का विधान शैली में, टैम्परा शैली में अपारदर्शी रंगो का प्रयोग हुआ।[1] थोड़े चटक रंगों में ही चित्रकारों ने चित्रों में वांछित प्रभाव उत्पन्न कर दिया है। इस प्रकार राजस्थान की सभी शैलियों बूंदी, कोटा, किशनगढ़, मारवाड़, अलवर, बीकानेर आदि में चित्रित विषय वस्तु हर पक्ष से सम्बन्धित रही है। चाहे वह राजदरबार का अंकन हो, जनजीवन हो या रागमाला, चाहे ऋतुओं का अंकन हो या व्यक्तिचित्र हो, चाहे समूह चित्रों का अंकन हो या भक्ति सम्बन्धी हो या श्रृंगार सम्बन्धी चित्र हो, सभी विषयो पर चित्रकारों की तूलिका ने गति पायी है। वास्तव में यह कला मध्यकालीन साहित्य का प्रतिबिम्ब है।

1 डा. जी. के. अग्रवाल - *कला और कलम*, पृ0 124

चतुर्थ अध्याय

(a) किशनगढ़ शैली के चित्रों का विकास

(b) किशनगढ़ चित्रशैली के भावाभिव्यंजना के मूलाधार-

  (i) विषयवस्तु

  (ii) रंग योजना

  (iii) रेखांकन

  (iv) आकार योजना

  (v) अलंकरण

  (vi) पृष्ठभूमि

  (vii) चित्रों में भावों की अभिव्यक्ति

चतुर्थ अध्याय

किशनगढ़ शैली के चित्रों का विकास

प्राकृतिक दृष्टि से सम्पन्न किशनगढ़ नगरी सदैव ही साहित्यकारों व कलाकारों को आकर्षित व प्रेरित करती रही है। इसकी संस्कृति ने अतीत में चित्रकारों को भावात्मक संसार प्रदान किया जिसके फलस्वरूप अनेक कृतियों का सृजन हुआ। इस कलात्मक नगरी ने केवल सामान्यजनों को ही आकृष्ट नहीं किया अपितु देश-विदेश के प्रतिष्ठित कलामर्मज्ञों एवं विद्वानों जैसे ऐरिक डिकिन्सन, कार्ल खण्डेलवाला, रामगोपाल विजयवर्गीय, एम0 एस0 रन्धावा, जयसिंह नीरज आदि को भी यहां बारम्बार आने को प्रेरित किया।[1]

---

1 आज, *साप्ताहिक विशेषांक*, 15 फरवरी 1998, पृ0 5

यद्यपि राजस्थानी शासकों का अधिकांश समय राजनैतिक समस्याओं का समाधान करने मे ही बीता फिर भी उन्होंने साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को विकसित करने की यथासाध्य चेष्टा की।[1] जहां एक ओर वास्तु कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण इनके प्रेम का स्मरण दिलाते हैं। वहीं दूसरी ओर साहित्य व कला के क्षेत्र में भक्ति, श्रृंगार भाव तथा रस से ओत-प्रोत काव्य तथा चित्र प्रेम व भक्ति के सुन्दर उदाहरण यह स्पष्ट कर देते हैं[2] कि राजनैतिक संघर्ष काल में भी इन राजपूत शासकों ने सांस्कृतिक विकास पर पूरा ध्यान दिया। यहां के शासकों ने न केवल कवियो और चित्रकारों को आश्रय देकर कला साधना के लिये प्रोत्साहित किया वरन् स्वयं साहित्यिक रचनायें कर अपनी कलात्मक साहित्यिक अभिरुचि का परिचय दिया है।[3] किशनगढ़ के ऐतिहासिक स्वरूप की जानकारी हमे विभिन्न राजाओं के काल एवं चित्रों के माध्यम से मिलती है। चित्रकला के इतिहास ने अपनी खोज के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि मानव हृदय में चित्र रचना की भावना आदिकाल से ही रही है।[4]

भारतीय चित्रकला की परम्परा अपने सूक्ष्म रूप में ग्रन्थ चित्रों में विकसित हुयी। पुस्तक चित्रों को छिन्न रूप से ही भारतीय लघु चित्रों का रूप सामने आने लगा। आकार मे लघु होने के कारण इन्हें लघुचित्र नाम से अभिहित किया गया तथा अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होने के कारण इन्हें पुस्तक चित्रों से पृथक लघुचित्र का नाम दिया गया। हिन्दी के 'लघुचित्र' शब्द को अंग्रेजी शब्द 'Miniature' का ही अनुवाद माना गया परन्तु यह 'मिनियेचर' के सही अर्थ को नहीं अभिव्यक्त करता है। मूलरूप से 'मिनियेचर' शब्द का प्रयोग धार्मिक ग्रन्थों के पृष्ठ के लिये होता था।[5] यूरोप कला जगत के उन चित्रो को 'मिनियेचर' कहा जाता था जिनको रैडलेड के रंग से चित्रित किया जाता था।[6] भारतीय लघु चित्र ग्रन्थों मे सूक्ष्मता से बने चित्रों के लिए संस्कृत साहित्य में सूक्ष्मचित्र या सूक्ष्माकार चित्र आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है।

भित्ति चित्रण के अतिरिक्त उपलब्ध उदाहरणों में पुस्तक चित्रण, लकड़ी पट्ट, कपड़े तथा ढालो के चित्रण के बारे में साहित्य ग्रन्थों का उल्लेख तो मिलता है परन्तु चित्रों के उदाहरण नहीं प्राप्त होते हैं। उत्तर-पश्चिम भाग में बाहरी आक्रमण के कारण यहां की संस्कृति अत्यन्त प्रभावित हुयी।[7] बौद्ध धर्म के वापसी तथा नयी सभ्यताओं के मिश्रण से हिन्दू संस्कृति तथा कला नये परिवेश में विकसित हुयी। यह नया वातावरण कला के लिये बहुत संवेदनशील न था। बौद्ध पाण्डुलिपियों तक प्राचीन चित्रण परम्परा समाप्त हो गयी थी[8] तथा पश्चिम में बारहवीं शताब्दी के उपरान्त चित्रकला अधिकतर जैनधर्म से प्रभावित होने लगी। मध्य भारत में यह परम्परा लोक कला के रूप मे वैष्णव मन्दिर की छतों की सज्जा

---

1 Rooplekha - Vol. XXV Part II Benerjee - *Historical Portrait of Kishanargh*, P. 26
2 Philip S. Rawson - *Indian Painting*, P 67
3 वाचस्पति गैरोला - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 162
4 राजस्थान वैभव *श्री रामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ, प्रेमचन्द गोस्वामी-किशनगढ़ शैली* पृ0 96 भाग-2
5 C. Shivaram Murti - *Indian Painting*, P. 85
6. R. Das Gupta - *Indian Miniature Painting: An Introduction*, P.1
7 Basil Gray - *Rajput Painting*, P 5
8 वही, पृ0 6

के रूप में सामने आयी। बौद्ध पाण्डुलिपियों तथा जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में चित्रित असंख्य ग्रन्थों में स्वतन्त्र रूप से चित्रण का कोई उदाहरण नहीं प्राप्त होता।[1] वास्तव में पुस्तकों में बने चित्रों का उद्देश्य ग्रन्थ सज्जा था जिससे चित्रित ग्रन्थ में चित्रानुरंजन पक्ष अधिक प्रबल हो सके।[2] लिपि के बीच शेष स्थान की सज्जा ही चित्रों का पूर्ण उद्देश्य था। ताड़पत्रीय ग्रन्थों में बने चित्र शुद्ध अलंकारिक हैं।

इस प्रारम्भिक रूप के बाद ग्रन्थों में उन चित्रों की परम्परा दिखायी देती है जिसमें लिपि चित्र के ऊपर, नीचे अथवा बीच में लिखी जाती थी।[3] इस प्रकार चित्र तथा लिपि दोनों पृष्ठ के संयोजन में महत्वपूर्ण अंग होते हुये भी चित्रों को अधिक महत्व दिया जाने लगा। साथ ही ग्रन्थों मे चित्रित शैलीबद्ध व्यक्तिचित्रों के स्थान पर स्वतन्त्र व्यक्तिचित्रों को प्रेरणा मिली।[4] इस प्रकार चित्रित ग्रन्थों तथा स्वतन्त्र व्यक्तिचित्र ने स्वतन्त्र लघु चित्रों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। यदि यह माना जाये कि मुगल चित्रकला ने राजपूत शैली के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया, तब यह स्वीकार किया जा सकता है कि मुगल शैली के चित्रों में लिपि को चित्र संयोजन में स्थान देने की जो परम्परा बनी उससे स्वतन्त्र लघु चित्रण शैली का विकास हुआ।[5] ताड़पत्रीय ग्रन्थों के उपरान्त कागज पर लिखी गयी पुस्तकों में वे ग्रन्थ सेतु का काम करते रहे जिनका एक-एक पृष्ठ लिपिबद्ध शीर्षक पर बना है।[6] ऐसे ग्रन्थ एक ओर पुस्तक चित्रण परम्परा में दिखायी देते है तो दूसरी ओर उनका प्रत्येक पृष्ठ अपने में सम्पूर्ण है। हम्जानामा, चौरपंचाशिका, गीतगोविन्द, महापुराण, रसिकप्रिया, बिहारी सतसई, आदि ग्रन्थों के चित्र इसी प्रकार के बने हैं। दरबारों में विभिन्न चित्रों के संग्रह ग्रन्थ बनाने की प्रथा से पहले ग्रन्थ विशेष होने के कारण सभी चित्रों में विषयवस्तु की एक सूत्रता थी।

उत्तर भारत में पन्द्रहवीं शती के आस-पास चित्रण का विकास बहुत तेजी से हुआ जिसमें दो कारक प्रमुख माने जा सकते हैं-कागज का प्रयोग तथा साहित्य का विकास।[7] रामानन्द ने भक्ति के सरल व सहज रूप को अपनाकर जनता के सामने उसे प्रस्तुत किया। इनके अनुयायियो ने उत्तर भारत में इसका प्रचार-प्रसार किया। सोलहवीं शताब्दी तक इस आन्दोलन को बढ़ाने में कवियों ने भी बहुत योगदान दिया। तुलसी के राम, चैतन्य, मीरा तथा सूर के कृष्ण भगवान ने सामान्य जन से लेकर दरबारीगण तक को अपने प्रेम रस में निमग्न कर लिया।राधा कृष्ण को माध्यम बनाकर प्रेम माधुर्य की ऐसी रस

---

1 C. Shivaram Murti - *Indian Painting*, P. 80
2 W. G. Aher - *Indian Painting: Introduction & Notes*, P. 40
3 रामनाथ-मध्यकालीन- *भारतीय कलायें व उनका विकास*, पृ0 33
4 Basil Gray - *Rajput Painting*, P.46
5 बी. एन. वर्मा - *कोटाभित्ति चित्रांकन परम्परा*, पृ0 20
6 A.K. Swamy - *Rajput Painting*, P. 81
7 C. Shivaram Murti - *Indian Painting*, P. 93

वर्षा हुई कि साहित्य तथा कला इस प्रेमानुराग से आप्लावित हो गये। न तो चित्रों का विवरण काव्य के रूप में रहा और न ही काव्य का दृष्टिगत रूप चित्र रहा, यहां दोनों एकाकार हो गये।[1]

पुस्तक चित्रण अधिकांशतः धर्म से प्रभावित रहा। हिन्दू संस्कृति के अंगों में केवल साहित्य एवं धर्म का ही समावेश नहीं था वरन् सौन्दर्यशास्त्र, संगीत, लोकोत्सव तथा सामान्य व्यक्ति भी उससे सम्बन्धित थे। मूलरूप से लघु चित्रों की विषय वस्तु तीन भावनाओं से प्रभावित रही है-भक्ति, श्रृंगार और संगीत। इसके अतिरिक्त चित्रकारों ने दरबारी वैभव तथा शौर्य के चित्रण में भी रूचि ली। अधिकतर राजपूत शासकों ने अपने तथा आस-पास बिखरे विषयों को ही प्रोत्साहन प्रदान किया, जिसमें संगीत, पौराणिक तथा प्रेमालाप के विषयों का अकंन प्रमुख था। यही कारण है कि लघुचित्रों में कला काव्य सहित संगीत का संगम दिखलायी पड़ता है।[3] परन्तु समयानुसार चित्रकारों ने परम्परागत परिपाटी को तोड़कर यथार्थ की तरफ कदम बढ़ाने का प्रयास किया, उन्होंने अनेक ऐसे व्यक्तिचित्रों का अंकन किया जो रूढ़िबद्ध व्यक्तिचित्रों से सर्वथा भिन्न थे। कलाकारों ने राग रागनियों, ऋतुचित्रण तथा श्रृंगार सम्बन्धी अनेक चित्रों का अकंन किया और यही विकास मुगल शैली, राजस्थानी शैली तथा मध्य भारत की अन्य शैलियों तक विस्तृत हुआ।[4] भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना होने के पश्चात् भी भारत की संस्कृति अपने मुख्य केन्द्र पर ही विकसित व पल्लवित होती रही। इसी कारण लघुचित्रों का जो विकास-क्रम राजस्थान व मध्य भारत में दिखलायी पड़ता है, वहीं मुगल चित्रण में भी देखने को मिलता है। व्यक्तिचित्रण, पुष्पचित्रण, पशु-पक्षी चित्रण इत्यादि को सुन्दर लघु चित्र के रूप मे चित्रित करने मे मुगल शैली का सर्वाधिक योगदान रहा। परन्तु यह मुगल शैली की तुलना में कम दरबारी थी तथा इसकी पृष्ठभूमि में हिन्दू संस्कृति की जड़ें विद्यमान थीं।[5] हिन्दू संस्कृति से ओत-प्रोत राजस्थानी चित्रों में धर्म के अतिरिक्त संगीत, साहित्य व लोक तत्वों का भी मिश्रण था।[6] अतः राजस्थानी शैली में विशेष रूप से कृष्ण भक्ति, लालित्य, श्रृंगार और प्रेम आख्यानों एवं संगीत की विभिन्न रागरागनियों के रूप में चित्र दिखायी पड़ते हैं। इन प्रधान तत्वों के अतिरिक्त विलासप्रिय शासकों ने अपनी शौर्यवृत्ति के प्रदर्शन में व्यक्तिचित्र एवं शिकार का अकंन करवाया।

वैष्णव धर्म के मुख्य चरित्र के रूप में कृष्ण एवं भगवान राम आज भी जन-मानस में आदर्श रूप में लोकप्रिय हैं।[7] भागवत पुराण जो कृष्ण भक्ति का मुख्य स्रोत था तथा राम भक्ति का मुख्य आधार रामचरितमानस तथा रामायण बने। भक्तिकाल तथा रीतिकाल में वैष्णव धर्म की जो धारा बही, उसके प्रभाव में भक्ति से लेकर श्रृंगार

---

1 C. Shivaram Murti - *Indian Painting*, P. 94

2 वही, पृ0 95

3 A) Lubar Hajak - *Miniature from the East*, P. 40
   B) Robert Ruf - *Oriental Miniature*, P. 41

4. Karl Khandelwala - *Rajasthan Painting: An Introduction*, P.11-12

5 A.K. Swamy - *Rajput Painting*, P. 60

6 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 2

7 वी. एन. वर्मा - *कोटाभित्ति चित्रांकन परम्परा*, पृ0 23

और विलास तक में भगवान कृष्ण चित्रकारों के प्रिय नायक रहे।[1] वैष्णव धर्म के इस आन्दोलन की लहर जयदेव के गीतगोविन्द से बंगाल में प्रारम्भ हुयी जो सोलहवीं शती तक अपनी उत्कर्षता पर जा पहुंची।[2] इसके अतिरिक्त सूरदास केशवदास तथा बिहारी के ग्रन्थों के आधार पर अनेकों चित्रों का अंकन हुआ। न केवल किशनगढ़, जयपुर, बूंदी, कोटा, बीकानेर मे ही लघुचित्रों का निर्माण हुआ वरन् राजस्थान के छोटे-छोटे ठिकानों में भी चित्र बने। हजारों की संख्या में बने इन चित्रों में विषयवस्तु की विविधता के साथ कलात्मक रुचि एवं श्रेष्ठता के दर्शन होते हैं।[3] ये तमाम शैलियाँ राजस्थान की भिन्न-भिन्न रियासतों में पनपकर पूर्णता को पहुंची। जिनका न केवल भारतीय चित्रकला के इतिहास में वरन् विश्व कला के इतिहास में विशेष स्थान है। अनेक अनाम कलाकारों ने सामन्तों और राजाओं के कलाप्रेम और संरक्षण के बीच अपना जीवन समर्पित करते हुये रंग शैलियों का एक मोहक संसार रचा जिसके दर्शन हमें लगभग सभी शैली के चित्रों में मिलते हैं।[4] इन शैलियों को रंग योजना, पृष्ठभूमि, बॉडर्स, हाशिये और अंकित स्त्री पुरुषो की पोशाकों, आभूषणों तथा आकृतियों विशेषकर आंखों की बनावट, मुखाकृतियों के आधार पर अलग- अलग जांचा परखा जा सकता है।[5]

राजस्थान की लघु चित्र शैलियों में किशनगढ़ ही एक मात्र ऐसी चित्रशैली है जो कलात्मक दृष्टि से इतनी समर्थ एवं आकर्षक है कि इस शैली में बने चित्र दर्शकों की दृष्टि बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। अपनी रसमय मनोहारी रंग योजना, आकर्षक एवं गतिमान रेखा सौन्दर्य तथा लावण्य संयोजन वैशिष्ट्य के कारण किशनगढ़ शैली के चित्र विश्व प्रसिद्ध हैं।[6] काव्य व कला का जो अद्वितीय संगम इस शैली में है वह अन्यत्र नहीं मिलता है। किशनगढ़ राज्य का सैन्य प्रदर्शन में तो कोई विशेष महत्व नहीं था परन्तु चित्रकला के क्षेत्र में यह राज्य अद्वितीय साबित हुआ।[7] इस शैली को उत्कृष्ट रूप में पहुंचाने का श्रेय तीन व्यक्तियों को दिया जा सकता है - प्रथम कवि चित्रकार तथा कृष्णभक्त प्रेमी नागरीदास जिनके आश्रय में चित्रकला पुष्पित एवं पल्लवित हुई।[8] दूसरी उनकी प्रेमिका पासवान बणीठणी जो अपने अद्वितीय सौन्दर्य के कारण तत्कालीन राधा के चित्रों के अंकन के लिये आदर्श प्रेरणा का स्रोत बनी।[9] तीसरा व्यक्तित्व निहालचन्द का था जिसके द्वारा बनाये गये सैकड़ों चित्र इस शैली के आधार बने हैं। नागरीदास के काव्य को आधार बनाकर बणीठणी के रूप सौन्दर्य को चित्रित करने का श्रेय निहालचन्द की सूक्ष्म व रंजक तूलिका को ही है।[10]

---

1 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme In Rajasthani Miniature Painting* , P.76
2 वी.एस. वर्मा - *कोटाभित्ति चित्रांकन परम्परा,* पृ0 23
3 M.K. Beach - *Rajput Painting at Bundi & Kota*, P.29
4 A. Topsfield - *Painting From Rajasthan in National Gallery*, P. 40
5 ए.पी. व्यास - *राजस्थान की चित्रकला -:- एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण,* पृ0 15
6 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला,* पृ0 2
7 M. S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 1
8 प्रेमशंकर द्विवेदी - *राजस्थानी लघुचित्रों में गीतगोविन्द,* पृ0 75
9 प्रभुदयाल मित्तल - *ब्रज की कलाओं का इतिहास,* पृ0 37
10 आर. ए. अग्रवाल - *भारतीय चित्रकला का विवेचन,* पृ0 111

कृष्ण भक्ति की अजस्र धारा से प्रभावित भक्तकवि नागरीदास की रसिकता एवं मधुरता से सम्पन्न और वणीठणी के अथाह रूप सौन्दर्य की प्रेरणा से पल्लवित किशनगढ़ शैली के चित्रों के विकास का स्वरूप बहुत पहले से ही प्रचलित हो चुका था किन्तु उसे विधिवत क्रियाशीलता देने तथा उत्कर्षता पर पहुंचाने का श्रेय सावन्तसिंह एवं उसके पिता राजसिंह के संयुक्त कार्यकाल को मिला।[1] राजसिंह व सावन्तसिंह दोनों ही महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टिमार्ग के अनुयायी थे तथा उनके सिद्धान्तों का पालन करना और उसे मानना उनका ध्येय था। दोनों ही उत्कृष्ट साहित्यकार एवं कलाकार थे। अतः उनके अथक परिश्रम से किशनगढ़ की चित्रकला की आशातीत प्रगति हुयी। विशेषकर सावन्त सिंह के समय में सर्वोत्तम लघुचित्रों की रचना हुयी।[2]

किशनगढ़ के संस्थापक किशनसिंह ने यद्यपि अपने छोटे भाई के शासनकाल में कलात्मक कार्यों को स्वस्थ संरक्षण प्रदान किया।[3] मुगल शासकों से अच्छे सम्बन्ध होने के कारण महाराज किशनसिंह (1600 ई0 - 1615 ई0) ने यहां के कलाकारों का कार्य अवश्य देखा होगा और उनके सम्पर्क में भी आये होंगे। लेकिन अपने सीमित शासनकाल में उन्होंने चित्रकला के उत्थान के लिये कुछ विशेष कार्य किया होगा ऐसा नहीं प्रतीत होता और न ही कोई ऐसा साक्ष्य उपलब्ध होता है कि जिससे यह पता चले कि उस समय किशनगढ़ में अपनी किसी निजी शैली का प्रादुर्भाव हुआ होगा। जो भी चित्र प्राप्त होते हैं उनका समय लगभग एक शताब्दी के बाद का सिद्ध होता है।[4]

किशनगढ़ शैली के प्रारम्भिक चित्रों में आखेट दृश्यों का अंकन अधिक मिलता है। इस समय व्यक्तिचित्रण को भी प्रमुखता मिली। यद्यपि यह शैली दरबार में विकसित हुयी, फिर भी इस शैली के विषयों में विविधता है।[5] राजा साहसमल का जंगली हंसों के साथ शिकार करते एक लघुचित्र (चित्रफलक - 34) नेशनल म्यूजियम, नयी दिल्ली में सुरक्षित है। इसमें इस राठौर राजकुमार की सुडौल आकृति का अंकन है, जिसके हाथ में एक स्लेटी रंग का बाज है। राजकुमार को घुटनें तक लम्बा एक घेरदार जामा पहने चित्रित किया गया है जो सुनहरे हरे रंग के किमखाब से बना है, साथ में अन्य सहायक आकृतियां अंकित हैं। सम्पूर्ण दृश्य घुमावदार नहरों में विभाजित है। पृष्ठभाग में गुण्डालाव झील के तट पर बसी किशनगढ़ नगरी अंकित है।[6] इस समय तक रूपनगर की स्थापना नहीं हुयी थी। चित्र में गोधूलि का समय है और दाहिनी ओर दीवार से घिरे प्रासाद की ओर एक विशाल अश्वारोही जुलूस धीमे-धीमे आगे बढ़ रहा है। राजा साहसमल ने (1615 ई -1618 ई) तक शासन किया था, परन्तु सम्भवतः यह समकालीन चित्रण न होकर किसी चित्र की अनुकृति थी।[7] या फिर काल्पनिक चित्र भी हो सकता था या किसी मुगल कलाकार द्वारा किये गये साहसमल के रेखाचित्र अथवा रंगचित्र पर भी आधारित हो सकता है क्योंकि बहुत से राजपूत राजकुमार मुगल दरबार में जाया करते थे। सम्भवतः वे वहां अपना चित्र अवश्य बनवाते

1 *Indian Miniature Painting*, P. 96

2 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P.82

3 राजस्थान वैभव श्री रामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2 प्रेमचन्द गोस्वामी *किशनगढ़ शैली* भाग 2 पृ0 94

4 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme In Rajasthani Miniature Painting*, P.73

5 राजस्थान वैभव- *श्री रामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ*, पृ0 33 भाग-दो

6 Rooplekha, Vol. XXV, Part II Benerjee - *Historical Portrait of Kishanargh*, P. 14

7 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 33

होगें। यह निश्चित रूप से किशनगढ़ दरबार में नियुक्त भवानीदास की रचना है[1] जो एक कुशल चित्रकार थे। इस चित्र में इनकी कल्पना का पुट दिखायी पड़ता है। चित्र में औरंगजेब के उत्तरकाल तथा फर्रुखसियर काल का प्रभाव स्पष्ट है। विशेषकर पोशाकों और अत्यधिक लम्बी मानवाकृतियों में तथा किले व झील की पृष्ठभूमि पर। इस चित्र में युवराज का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा है 'महाराजा किशनसिंह के पुत्र साहसमल'।[2] यद्यपि यह चित्र नागरीदास के समय की वैष्णव चित्रकला से तनिक भी सम्बद्ध नहीं है परन्तु फिर भी इसमें 1725 ई0 में किशनगढ़ में मौजूद उच्चस्तरीय कला के दर्शन होते हैं।[3] राजा हरिसिंह (1629 ई0-1643 ई0) का एक लघुचित्र (चित्र फलक 73) प्राप्त होता है, जिसमें उन्हें अधेड़ व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है तथा मूंछे बड़ी -बड़ी अंकित की गयी हैं। ये सफेद रंग का घेरदार जामा, जूते व कमरबन्द पहने हैं। उस समय की परम्परा के अनुसार दो तलवारें उनके कमर में दायें बायें लटक रही हैं। उनकी पगड़ी राजा साहसमल जैसी ही अंकित की गयी है। इसी प्रकार के साफे शाहजहाँ के शासनकाल में बने चित्रो में दिखायी पड़ते हैं।[4] पृष्ठभूमि में सबसे ऊपर दाहिनी ओर नगर की ओर कूच करती हुयी एक सेना है। इस चित्र के ऊपर स्वर्णाक्षरों में लिखा है 'महाबाहु श्री हरिसिंह पत्रगद' (अट्ठारवीं शती पूर्व)। यह व्यक्तिचित्र भी समकालीन चित्र नहीं है वरन् यह भी किसी कृति की अनुकृति ही प्रतीत होती है।[5]

1720 ई0 में बने इस चित्र में (चित्र फलक 4) जिसमें कुछ स्त्रियां संगीत द्वारा अपना मनोरंजन कर रही हैं।[6] चित्र मे मुगल कला की विशेषताओं की छाप स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है। चित्रों में अंकित स्त्रियो की आकृतियां मुगल आकृतियों के समान हैं। वे उनके समान ही पेशवाज व दुपट्टा लिये हुये हैं।[7] सिंहासन पर बैठी स्त्री के समीप हुक्के का अंकन है जिसका सिरा स्त्री के हाथ में है। पीछे बने विशाल भवन की बनावट, जालियां, खम्भे, चिक तथा पर्दे मुगल शैली में बने हैं। गुम्बदों व चिकों पर लाल रंग से महीन आलेखन का अंकन है।

कला संगीत सुनते हुये महारानी 1730 ई0 मे बना यह चित्र (चित्र फलक 58) निश्चित रूप से मुगलकला में पारंगत चित्रकार द्वारा बनाया गया है जो नये वातावरण में कार्य कर रहा था। सम्भवतः यह भवानीदास की कृति है। 1719 ई0 में जब अनेक कलाकार दिल्ली से यहां आये थे तो भवानीदास भी उनमे से एक थे।[8] चित्र में रानी को एक ऊँचे चबूतरे पर मसनद पर टेक लगाकर बैठे हुये दिखाया गया है। सामने की तरफ महिला संगीत कलाकारों का एक समूह बैठा है। यद्यपि इस पर मुगल प्रभाव है [9] फिर भी यह चित्र अपनी पृष्ठभूमि को उससे पृथक करते हुये अपनी निज की विशेषताओं को परिलक्षित करती है।[10] झील में लाल रंग की

---

1 Rooplekha, - Vol. XXV, Part II, Benerjee - *Historical Portrait of Kishanargh*, P. 9

2 वही, पृ0 9

3 Marge, Vol. III, Part IV, - *The Way of Pleasure: The Kishangarh Painting*, P. 15

4 P. Pal - *Court Painting of India*, P. 254

5 वही, पृ0 255

6 छवि - 2 - *भारतीय कला भवन*

7 Jameela Brijbhushan - *The World of Indian Miniature*, P. 42

8 वहीं, पृ0 50

9 डा0 सुमहेन्द्र - *राजस्थानी रागमाला परम्परा*, पृ0 55

10 रामचरण शर्मा 'व्याकुल' - *राजस्थान की चित्रशैलियां*, पृ0 30

नौकाओं का अंकन हुआ है जो केवल किशनगढ़ शैली के चित्रों में ही देखने को मिलता है। इसके अलावा 'राजकुमारी का फूलझड़ी का आनन्द लेते हुये' नामक चित्र 1740 ई० [चित्र फलक 16] में मुगल प्रभाव बहुत अधिक दिखलायी पड़ता है जिससे प्रतीत होता है अभी तक किशनगढ़ शैली मुगल प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाई थी।[1] परन्तु सावन्त सिंह के समय तक यह काफी हद तक मुगल प्रभाव से मुक्त हो चुकी थी तथा चित्रों के अंकन की एक निश्चित परम्परा बनने लगी थी।[2]

किशनगढ़ शैली के जन्म या मूल में भक्तहृदय विधानुरागी राजा रूपसिंह का योगदान रहा। इन्होंने 1643 ई० - 1658 ई० तक शासन किया था। राजारूप सिंह के नाम पर ही रूपनगर की स्थापना हुई थी। ये प्रसिद्ध वैष्णव गुरु गोपीनाथ के शिष्य थे।[3] अतः वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार कल्याणराय किशनगढ़ के शासकों के आराध्यदेव बन गये। रूपसिंह ने कल्याण राय की मूर्ति की स्थापना करवायी ये किशनगढ़ शासकों के पारिवारिक गुरु भी थे { चित्र फलक 2} रूपसिंह काव्य कला तथा भक्ति में विशेष श्रद्धा रखते थे। शक्ति व आराधना को एक साथ कला में उतारकर रूपसिंह ने अपने कलात्मक व्यक्तित्व का परिचय दिया था।[4] मुगल शासक शाहजहाँ ने रूपसिंह के वल्लभाचार्य के प्रति श्रद्धा देखकर उसे वल्लभाचार्य का एक चित्र भेंट किया।[5] ये राधा कृष्ण के युगल स्वरूप के उपासक थे। यही कारण है कि इस समय चित्रकारो ने अपने स्वामी को अधिकांशतः राधा कृष्ण की मनोहर लीलाओं का चित्रो के माध्यम से दर्शन कराने का प्रयास किया। रूपसिंह के काल के चित्रो का कल्पनालोक एक साधना और भक्ति भावना का संकेत देता है।[6]

वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्त किशनगढ़ शैली के उत्कृष्ट चित्रों के पीछे निहित प्रेरणा से अत्यन्त गहराई से जुड़े हैं। उनकी छाप चित्रो पर स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है।[7] यह चित्र उस काल से सम्बन्ध रखते हैं जब वैष्णव भक्ति का पुर्नजागरण काल कला, संगीत साहित्य व नृत्य की मुख्य प्रेरणा बन चुका था। वल्लभ सम्प्रदाय में आस्था रखने वाले व्यक्ति कृष्ण भक्ति के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति में विश्वास रखते थे। अतः वे श्रीकृष्ण की मोहक बाल स्वरूप, नटखट किशोर रूप व गम्भीर युगलरूपो के अतिरिक्त उनके जीवन की सभी लीलाओ का चिंतन, मनन द्वारा श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन रहना पसन्द करते हैं। राजसिंह भी इसी सम्प्रदाय मे दीक्षित होने के कारण श्रीकृष्ण की लीलाओं का श्रवण कीर्तन किया करते थे। अतः उन्हें प्रसन्न रखने के लिये उनकी भक्ति भावना को प्रोत्साहित करने के लिये तत्कालीन चित्रकारों ने राधा कृष्ण की अनेक लीलाओं को लघुचित्र के रूप में साकार करने पर बल दिया।[8] चित्रकारों द्वारा चित्रित कृष्ण के रासविलास अन्य भक्तों को

---

1 सुरेन्द्र सिंह चौहान - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 97

2 डा0 सुमहेन्द्र - *राजस्थान की रागमाला परम्परा*, पृ0 56

3 राजस्थान वैभव श्रीरामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2 प्रेमचन्द गोस्वामी *किशनगढ़ शैली* पृ0 96

4 वी. ए.पानगडिया - *राजस्थान का इतिहास*, पृ0 362

5 अविनाश बहादुर वर्मा - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 203

6 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 2

7 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme In Rajasthani Miniature Painting*, P.74

8 डा0 जय सिंह नीरज-*राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 10

भी प्रिय लगने लगे। उनकी भावनाओ मे लीन रहने का मार्ग लोगों को कृष्ण भक्ति के मार्ग के रूप में लक्षित हुआ।[1] कालान्तर में तो चित्र दर्शन ही प्रत्यक्ष दर्शन का माध्यम प्रतीत होने लगा।[2] वल्लभाचार्य स्वयं चित्रकार एवं कला प्रेमी थे। अतः चित्रकला में निपुण होना आचार्य परम्परा के अनुकूल आचरण हो गया था। आचार्यों द्वारा लिखित कृष्णलीला सम्बन्धी अनेक चित्र वल्लभकुल सम्प्रदाय के मंदिरों में आज भी उपलब्ध हैं। किशनगढ़ के शाही परिवार के लगभग सभी राजकुमार वल्लभाचार्य मत के महान अनुयायी थे और चित्रकला, कविता, साहित्य आदि किशनगढ़ के उत्तरवर्ती शासको की रुचि बन गयी थीं। सावन्तसिंह के पिता राज सिंह के समय मे चित्रकला का विकास देखने को मिलता है। एक लघु चित्र में (चित्र फलक 25) में राजा राजसिंह एक भैंसे का शिकार करते अंकित किये गये हैं।[4] अग्रभाग में झील या जलकुण्ड है। शिकार भैंसा गम्भीर रूप से घायल है जो अश्व पर आरुढ़ सवार पर हमला कर रहा है

राजसिंह तलवार से भैंसे पर आक्रमण कर रहे हैं। भैंसे के पीछे एक अन्य आकृति का अंकन है जिसके दोनों हाथों में एक भारी तलवार है। उससे वह पागल भैंसे पर प्रहार कर रहा है। पृष्ठभूमि मे बनी नदी के पार घुड़सवारों व अन्य पशुओं का अंकन है। बायीं ओर पहाड़ियों की एक श्रृंखला है और गुण्डालाव झील का अंकन है जिसमे नौकायें चल रही है। एकदम बायीं ओर राजा के अन्य सेवको को अंकित किया गया है और दायीं ओर की पृष्ठभूमि में सबसे पीछे नगर दिखायी पड़ रहा है। सूर्य पश्चिमी क्षितिज पर अंकित है व गोधूलि का वातावरण है। राजा गहरे हरे रंग का किमखाब का बना घेरदार जामा पहने अंकित किया गया है। उनकी पगड़ी रत्नों से जड़ी हुई है, जिसका एक सिरा पीछे लहरा रहा है और सामने सिरपेंच है। इस चित्र में मुख्यतः हल्का पीला, भूरा, स्लेटी, हरा, नीला, सफेद व गहरे लाल रंग का प्रयोग है। कार्ल खण्डेलवाला के अनुसार यह किशनगढ़ की चित्रकला की एक भव्य कृति है जिससे प्रतीत होता है कि इस समय तक चित्रकला में प्रगति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे हैं।[6]

राजसिंह व सावन्तसिंह का कार्यक्षेत्र किशनगढ़ नहीं वरन् किशनगढ़ से 20 कि. मी. दूर उत्तर दिशा में स्थित रूपनगढ़ था, जिसे किशनगढ़ की राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। रूपनगर अपने नाम के ही अनुरूप सिद्ध हुआ।[7] किशनगढ़ के राजाओं का पारिवारिक गुरुओं से जुड़ाव अनवरत दिखायी पड़ता है। राजसिंह ने 33 ग्रन्थों की रचना की थी जिसका प्रभाव तत्कालीन चित्रों पर दिखलायी पड़ता है। राधा कृष्ण लीला पर आधारित प्रेम प्रसंग इस काल के मुख्य विषय हो गये।[8] राजसिंह ने वृन्दा नामक विख्यात कवि को अपना गुरु बनाया तथा कविता करनी सीखी। वैष्णव सम्प्रदाय के भक्त होने के कारण अनेक भक्तिमार्गीय कविताओ की रचना की। इस समय के कुछ चित्रो का आज भी किशनगढ़ के भण्डार मे विद्यमान होना बताया जाता है।[9] इन्होंने प्रसिद्ध चित्रकार सूर्यध्वज

---

1 Krishan Chaitanya - *A History of Indain Painting: Rajastham Tradition*, P. 128

2 सुरेन्द्र सिंह चौहान - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 96

3 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme In Rajasthani Miniature Painting*, P. 72

4 वही, पृ0 74

5 *Essence of Indian Art*, P. 81

6 M. S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 2

7 प्रेमचन्द गोस्वामी - *राजस्थान की लघुचित्र शैली*, पृ0 40

8 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P.83

9 Dr. Jai Singh Neeraj - *Splendour of Rajasthan*, P. 28

निहालचन्द्र को अपनी चित्रशाला का प्रबन्धक बनाया। डा0 फैयाज अली खान ने इनके समय के कुछ चित्रकारों के नामों का उल्लेख किया है जिसमें भवानीदास, अमरचन्द, सूरतराम व निहालचन्द के नाम मुख्य हैं[1], जो 1719 में दिल्ली से यहां आये थे और इन कलाकारों ने विशेषकर निहालचन्द ने किशनगढ़ शैली की सर्वोत्तम कृतियों की रचना की थी।[2]

किशनगढ़ के शाही घराने की युवतियां भी वल्लभ सम्प्रदाय की अनन्य भक्त हुआ करती थीं तथा काव्य एवं कला के प्रति भी उनका रुझान था। राजसिंह की पुत्री सुन्दरीबाई ने कृष्ण भक्ति पर अनेक कविताओं की रचना की है।[3]

इस समय तक किशनगढ़ शैली अपनी मौलिकता व प्रभाव के कारण एक स्वतन्त्र चित्रशैली के रूप में स्थापित हो चुकी थी और मुगल प्रभाव से भी काफी हद तक मुक्त हो चुकी थी। किशनगढ़ शैली की इस समय तक एक निश्चित दिशा बनने लगी थी। चित्रों में मानवाकृतियां लम्बी, तीक्ष्ण, नयननवश वाली बनने लगी थी तथा पृष्ठभूमि का अंकन हरे भरे वातावरण के रूप मे होने लगा था जो कि इसकी अपनी निजी विशेषता है।[4] राजसिंह के उत्तराधिकारी युवा सावन्त सिंह जिन्होंने व्यापक क्षेत्रों का अध्ययन किया था अन्य शैक्षिक प्रशिक्षणों के साथ - साथ चित्रकला का भी उन्होने प्रशिक्षण लिया था।[5] परन्तु इस शैली की प्रतीकात्मकता का विकास राजसिंह के ही काल में हो चुका था। उस समय चित्रकारों के प्रमुख विषयों के रूप में व्यक्तिचित्र, दरबार के दृश्य तथा आखेट के चित्रों का अंकन होता था।[6] यद्यपि कृष्णलीला से सम्बन्धित विषय भी चित्रित किये जाते थे परन्तु चित्रों में कल्पनाशीलता एवं सृजनात्मकता का विकास सावन्तसिंह के ही काल में मिलता है। [चित्र फलक 30, 29, 35, 36]

सावन्तसिंह के काल में चित्रकारों ने एक नयी दृष्टि एवं चित्रण की नयी शैली प्रदान की।[7] भवानीदास के बाद निहालचन्द को किशनगढ़ के प्रमुख कलाकार के रूप में जाना जाता है।[8] विशेषकर कृष्ण लीला से सम्बन्धित चित्र बनाने में दक्ष निहालचन्द ने राजसिंह व सावन्तसिंह के समय कार्य किया।[9] 1745 ई0 में बना सावन्त सिंह का एक व्यक्ति चित्र (चित्र फलक 72) प्राप्त होता है। इसके लिखे विवरण के अनुसार यह चित्र मोहम्मद शाह के शासन काल के पच्चीसवे साल मे बनाया गया था।[10] इस व्यक्ति चित्र मे राजा के सिर के पीछे गोलाकार युक्त तेज का अंकन है। सावन्तसिंह ने दायीं तरफ एक तलवार धारण कर रखी है तथा बायीं तरफ एक ढाल लटकती अंकित की गयी है। पृष्ठभूमि में एक झील दर्शायी गयी है जिसमे लाल रंग की नौका का अकन है। राजा के सामने की ओर

---

1 डा0 फैयाज अली खान - *भक्तवर नागरीदास*, पृ0 38

2 Stella Kramrich - *Painted Delight*, P. 17

3. Dr. Sumhendra - *Spledid Style of Kishangarh*, P. 28

4 M. S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 15

5 डा0 सुमहेन्द्र - *राजस्थानी रागमाला चित्र परम्परा*, पृ0 55

6 वही, पृ0 82

7 Krishan Chaitanya - A *History of Indian Painting: Rajasthani Tradition*, P. 124

8 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 3

9 प्रभुदयाल मित्तल - *ब्रज की कलाओं का इतिहास*, पृ0 437

10 M. S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 9

वनी वाल्कनी में उसकी प्रेमिका पर्दे के पीछे बैठी है। इस चित्र में सावन्त सिंह को नायक के रूप में प्रदर्शित किया गया है तथा किशनगढ़ की राधा को नायिका के रूप में उनका इन्तजार करते दिखाया गया है। इस चित्र में किशनगढ़ शैली की विशेषताओं के दर्शन होते हैं।

अट्ठारहवीं शताब्दी में किशनगढ़ शैली अपने नये रूप में लोगो के समक्ष सामने आयी। जिसे हम किशनगढ़ शैली का स्वर्णयुग मान सकते हैं।[1] चित्रकला को उच्चता के शिखर पर पहुंचाने का श्रेय शासक सावन्तसिंह को ही है जो राधाकृष्ण की भक्ति में लीन रहते थे। सावन्त सिंह के स्वभाव में एक सघन धार्मिकता का पुट था और यही शनैः-शनैः उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर छा गया। यद्यपि उनमें आदर्श शासक के सभी गुण विद्यमान थे। परन्तु उनके हृदय की अन्तरतम अनुभूतियो में यह राजसी भोगविलास त्याग कर श्रीकृष्ण की प्रेम भक्ति में लीन हो जीवनयापन करने की अदम्य व अतृप्त कामना थी। किशनगढ़ के उत्कृष्ट चित्रो में सावन्तसिंह के इसी द्विपक्षीय व्यक्तित्व का प्रभाव मिलता है। चित्रकला से विशेष प्रेम होने के कारण उन्होंने अपने प्रिय राधाकृष्ण को चित्रित करने हेतु सर्वथा नवीन शैली का विकास किया था।[2] वे अपनी काव्य साधना के आधार पर पवित्र प्रेममय भक्ति रस की गंगा बहा देने में समर्थ रहे। परिणामतः उनकी तरंग मालायें किशनगढ़ के वे चित्र हैं जो राधा कृष्ण की युगललीला के रूप में उल्लेखनीय हैं। चित्र फलक 1, 4, 38, 39, 52 आदि चित्रों में उसकी सहज ही अभिव्यक्ति दिखायी पड़ती है। जनता ऐसे ही शासक को जो सब तरह से योग्य हो, प्रजावत्सल हो, उसे ही ईश्वर तुल्य मानती थी। नागरीदास अपनी प्रजा के पूजनीय थे। यहां तक कि वे स्वयं कृष्ण स्वरूप में चित्रकारों की तूलिका से चित्रित किये जाते रहे हैं।[3] इस समय के बने लघुचित्र अन्य राजाओं के काल में बने लघुचित्रों से कोई मुकाबला नहीं रखते हैं। तमाम चित्र विभिन्न अनुभूतियों तथा संवेदनाओं को समेटे अपने आप में जीवन्त कृतियां हैं।[4] इन्हें किसी भी प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इन चित्रों में अंकित प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक आकृति प्रेम की अभिव्यक्ति करती सी प्रतीत होती है जो चित्रों में एकलयता का आभास देते है जैसे कि चित्र फलक 1, 18, 32, 35, 38 आदि चित्रों से अभिव्यंजित हो रहा है।

अपने पूर्वजों की भांति वल्लभ सम्प्रदाय के प्रति रुचि होने के कारण सावन्त सिंह भी अपने गुरु रड़छोड़दासजी से आजीवन प्रेरणा ग्रहण करते रहे।[5] सावन्तसिंह को बाल्यकाल से ही कविता सृजन में अत्यधिक रुचि थी। अपने पिता राजसिंह के समय से वे रेखांकन किया करते थे। किशनगढ दरबार में सुरक्षित रेखाचित्र सम्भवतः उस समय के हैं जब वे चित्रकला का अभ्यास करते थे। किशनगढ़ संग्रह में उपलब्ध कुछ अन्य चित्र जो पूर्णतः विशिष्ट शैली और भावना के परिचायक हैं और वे समस्त चित्रों से भिन्न हैं। इन्हें भी नागरीदास की कृतियां माना जाता है।[6]

---

1 एम0 पी0 व्यास - *राजस्थान की चित्रकला*, पृ0 28

2 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme In Rajasthani Miniature Painting*, P.74

3 Dr. Jai Singh Neeraj - *Splendour of Rajasthan*, P. 28

4 डा0 आर.के. वशिष्ट - *राजस्थानी चित्रकला व चित्रकार*, पृ0 24

5 राजस्थान वैभव श्रीरामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-दो, प्रेमचन्द गोस्वामी *किशनगढ़ शैली* पृ0 96.

6 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 19

यद्यपि विद्वानों ने इनके तूलिका कौशल की प्रशंसा की है परन्तु इसका एक अन्य कारण किशनगढ़ दरबार में संग्रहीत अनेकों उत्कृष्ट चित्र हैं जो इनके काल में बनाये गये थे। इन चित्रों में पायी जाने वाली गुणवत्ता व सूक्ष्मता इन्हें अन्य चित्रों से पूरी तरह विलग करती है[1], जो अनेक चित्रकारों के हस्तकौशल का परिणाम है। इन चित्रों में निहित सशक्त प्रेरणा सावन्तसिंह के जीवनदर्शन से निष्ठापूर्वक जुड़ी हुयी थी जो गोपाल कृष्ण के प्रेम व भक्ति को ही मोक्ष का साधन मानते थे।[2] इस प्रेरणा ने न केवल सावन्तसिंह को ही वरन् दरबारी चित्रशाला को भी प्रभावित किया।

सावन्त सिंह ने नागरीदास के नाम से लगभग 75 ग्रन्थों की रचना की। इनके ग्रन्थों में मनोरथ मंजरी, उत्सवमाला, पदमुक्तावली, ग्रीष्मविहार, वर्षा के कवित्त, रसिक रत्नावली तथा चन्द्रिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[3] इन ग्रन्थों के पदों के आधार पर अनेक उत्कृष्ट चित्रों की रचना हुयी। चित्र फलक 32, 33, 37 आदि। सावन्तसिंह की रचनायें वैष्णव सम्प्रदाय में बड़े आदर व चाव से पढ़ी व सुनी जाती हैं।

यद्यपि इस शैली में लोक कला के तत्व विद्यमान थे परन्तु मुगल कला की भाँति यह भी राजदरबार से प्रेरित थी। सावन्तसिंह ने अपने कलाकारों में सौन्दर्य के प्रति प्रेम जगाने तथा सुन्दर चित्रांकन के लिये उन्हें प्रेरित किया। कलाकारों द्वारा निर्मित चित्रों में इनकी प्रेरणा का प्रभाव दिखायी पड़ता है। किशनगढ़ के इतिहास में सावन्तसिंह व उनके चित्र पर निहालचन्द को वही स्थान प्राप्त था जो काँगड़ा शैली में महाराज संसारचन्द व उनके कलाकारों को प्राप्त था।[4] सावन्तसिंह ने पारलौकिक युगल प्रेमी के प्रति अपने प्रेम व भक्ति भावना की तीव्रता को प्रदर्शित करने के लिये आकार व रंगों के माध्यम से अनेक कृतियों का सृजन करवाया।[5] अलग राज्य की स्थापना हो जाने के पश्चात् किशनगढ़ में राजाओं ने अपने पड़ोसी समृद्ध एवं शक्तिशाली राज्यों के बीच अपना अस्तित्व कायम रखने के लिये कलाकार निहालचन्द की शैली की मूल विशिष्टता के रूप में चित्रों को निर्मित करने का कार्य सौंपा।[6]

राधा कृष्ण के भक्त होने के साथ-साथ सावन्तसिंह की प्रेमानुरक्ति कहीं और भी थी। वे अत्यन्त रूपवती स्त्री से प्रेम करते थे जो उनके प्रति प्रेम प्रदर्शित करने में मण्डू की रानी रूपमती या कमलसुन्दरी से किसी भी प्रकार कम नहीं थीं[7], जिसे उनकी माता दिल्ली से लेकर आयी थी। राजमहल में इसने अन्य दासियों के साथ कला व साहित्य का अध्ययन किया।[8] इसे 'बनीठनी' के नाम से जाना गया है, जिसका अर्थ है रूपवती, सुरुचिपूर्ण व स्वच्छ वस्त्र पहनने वाली।[9] वह एक रूपवती स्त्री थी जो स्वयं रसिकबिहारी उपनाम से कविता करती थी। उसका सौन्दर्य न केवल लोगों को आकर्षित करता था वरन् किशनगढ़ के चित्रकारों के लिये प्रेरणा स्रोत था।[10] बणीठणी के रूप की प्रशंसा कवि युवराज

---

1 Eric Dickinson -*Kishangarh Painting*, P. 19
2 Dr. Daljeet - *The Glory Of Indian Miniature*, P. 23
3 डा0 जय सिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य* पृ0 100
4 वाचस्पति गैरोला - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 163
5 वही, पृ0 164
6 प्रेमचन्द गोस्वामी - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 [illegible]
7 Dr. Sita Sharma - *Krishan Leela Theme In Rajasthani Miniature Painting*, P.75
8 Anjana Chakrawati - *Indian Miniature Painting*, P. 64
9 M. S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 4
10 Dr. Sumhendra - *Spledid Style of Kishangarh*, P. 22

तथा बणीठणी (चित्र फलक 28) के चित्र से होती है। जिसमें राजकुमार सावन्त सिंह पूजा पर बैठे हैं और बणीठणी स्नान कर ताजगी से परिपूर्ण होकर पूर्ण श्रद्धा व भक्ति के साथ हाथों में फूल लेकर आंगन में प्रवेश कर रही है। जिसमें बणीठणी को खूबसूरत नवयौवना के रूप में पीली साड़ी पहने अंकित किया गया है जो उनकी सौन्दर्य वृद्धि में चार चाँद लगा रहा है। बणीठणी मंथर गति से सावन्त सिंह की ओर पग बढ़ाती अंकित की गयी है।

इसी बणीठणी का मोहक सौन्दर्य किशनगढ़ की चित्रकला व नागरीदास के काव्य दोनों में राधा के सौन्दर्य वर्णन के आधार रहे।[1] इस समय के बने चित्रों में नारी आकृतियां किसी अन्य शैली से प्रभावित नहीं हैं, न ही ब्रजभाषा के कवियों द्वारा राधा के आदर्श रूप का ही वर्णन है। किशनगढ़ शैली की नारी मुखाकृति जीवित नारी का ही एक प्रेरित आदर्श रूप था जो निश्चय ही बणीठणी का सौन्दर्य था।[2] राधा के चित्र चित्र फलक 30 में इसका रूप सौन्दर्य स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ रहा है। घूंघट का दाहिना किनारा सामने की ओर खींचती हुयी राधा की यह छवि बहुत प्रभावित करती है। इस कृति में रंगों व रेखाओं द्वारा इतना सटीक चित्रण किया गया है कि राधा का व्यक्तित्व वास्तविक रूप से कहीं ज्यादा उभरकर काली पलकों व अर्द्धनिमिलित नयनों के माध्यम से सामने आया जो निःसन्देह बणीठणी के मॉडल का ही प्रतिरूप है। यह चित्र राजपूत स्त्री का प्रतिनिधित्व करता है।[3] इस सौन्दर्य वर्णन का आधार नागरीदास की यह पदावली रही है[4]-

''प्रीति सांझि काज कीनी, काम,
कही कवि छवि आवाछी और साछी को है वाकी सब सखियां
फूली वयः सन्धि सांझ, राधा रूप बाग माझ
डोले आप फूल भरी नागर की अंखियां''
सांझी उत्सव 3 सांझी के कवित्त।[2]

इस पद्य से संकेत मिलता है कि बणीठणी के वयःसन्धि के समय से ही दोनों परस्पर आकर्षित हो गये थे। इस प्रकार किशनगढ़ शैली में जिस आकृति का उद्‌भव हुआ वह पूर्ववर्ती कला के रूप का केवल विकासमात्र नहीं था बल्कि बणीठणी के शारीरिक सौन्दर्य से प्रेरित था।[5] इस प्रकार बणीठणी की लम्बी मुखाकृति, सुडौल लम्बी देहयष्टि ने नारी के आदर्श रूप को चित्रित करने के लिये प्रेरित किया जो सम्पूर्ण राजस्थानी चित्रकला श्रृंखला में अद्वितीय अस्मिता व सौन्दर्य का अभिनव प्रयास है। मुखस्वरूप की यह अपूर्वता केवल राधा के चित्रों में ही नहीं वरन् कृष्ण के चरित्र अंकन में भी दिखायी पड़ती है।[6]

1 Dr. Sumhendra - *Splendid Style of Kishangarh*, P. 23
2 वही पृ0 23
3 M. S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 10
4 डा0 जय सिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 169
5 कादम्बनी, जनवरी 1986, पृ0 131
6 Rooplekha - Vol. XXV, Part II, Benerjee - *Historical Portrait of Kishangarh*, P. 22

चित्र फलक 18 यह चित्र निहालचन्द द्वारा निर्मित है राधा के व्यक्तिचित्र में लम्बा मुखमण्डल, कमान की तरह भवें, कमल के समान नेत्र जो हल्का गुलाबीपन लिये हुये हैं, नुकीली नाक, पतले कोमल संवेदनशील होंठ तथा तीखी चिबुक का अंकन हुआ है। कृष्ण का मुखमण्डल राधा के मुखमण्डल के ही समान अंकित किया गया है। कृष्ण के चेहरे को नीले रंग मे अंकित कर उसे अन्य आकृतियों से पृथक किया गया है।[1] यही विधि काँगड़ा शैली के चित्रकारो द्वारा बनाये गये चित्रो में प्रयुक्त विधि से काफी मिलती है।[2] किशनगढ़ शैली के चित्रों मे लम्बे तीखे नेत्रो का अंकन मौलिक विशेषता है जो इन पद्माक्षी या कमल नयनी के समान है जिनकी संस्कृत की प्रेम कविताओं में व्याख्या की गयी है। इसी प्रकार के नेत्र हम इस चित्र मे देखते हैं। चित्र में राधा का मुखमण्डल इतना कोमल, सूक्ष्म, प्रभावपूर्ण और गरिमापूर्ण है कि वह साधारण युवती न लगकर राजदरबार की स्त्री लगती है।[3]

कला जगत में शारीरिक मुद्राओं के हृदयग्राही चित्रण तो प्राप्त हैं किन्तु शरीर के किसी पृथक अंग-प्रत्यंग से किसी कलाशैली की प्रसिद्धि के उदाहरण सीमित हैं। इस शैली के चित्रों में नेत्रों को अभूतपूर्व रूप में संजोया है। भावमय विशाल आकार के नेत्र जो बड़े ही कलात्मक ढंग से अंकित किये गये हैं, निहालचन्द द्वारा बनाये गये सभी चित्रों में देखने को मिलते हैं। संस्कृत व हिन्दी के कवियों ने श्रृंगार रस का वर्णन किया है और इस भाव को चित्रकारों ने नेत्रों द्वारा बड़ी बखूबी व्यक्त किया है।[4] किशनगढ़ शैली की यह विशेषता निश्चित रूप से अपनी ओर आकर्षित करने वाली है जो सावन्त सिंह के समय विकसित हुयी।

वास्तव में नागरीदास ने राधाकृष्ण का मानवीयकरण मनुष्य की आदिम भावना के रूप में, पुरुष का नारी के प्रति और नारी का पुरुष के प्रति भावना को बड़ी ही स्वाभाविक रूप में व्यक्त किया है।[5] वास्तव में इस श्रृंगार व कथानकों का आदि स्रोत द्रविड़ आभिर आदिम जाति की असीमितता में विश्वास स्वर्ग के संरक्षक कृष्ण को पुरुष के रूप मे तथा उनकी संगिनी राधा का निरूपण प्रकृति के रूप मे था[6] जिनका नागरीदास द्वारा विभिन्न रूपकारो तथा कथानकों का निरूपण दो हजार वर्ष पश्चात् रसमय कविताओं मे हुआ।[7]

यह वैष्णवधारा उस समय भारतीय जनमन की आध्यात्मिक अनुभूति सिद्ध हुयी क्योंकि मानवीय भौतिक आयामों पर आधारित पूर्णता की यह वैष्णवधारा ईश्वरीय अनुभूति की धारणा के पूर्ण निकट थी। निर्गुण धर्म की जो अनुभूतियां साधारण जन के लिये शान्तिपूर्ण थीं, सगुण भक्ति की यह धारा उनका दिशा-निर्देश बनी।[8] वैष्णवी सहज

---

1 M S Randhawa - *Pahari Miniature Painting*, P. 40

2 वही, पृ0 41

3 M. S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 11

4 डा0 प्रेमचन्द गोस्वामी - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 98

5 दयाकृष्ण विजयवर्गीय - *राजस्थान काव्य मे श्रृंगार भावना*, पृ0 25

6 वही, पृ0 26

7 Mulkraj Anand - *The Best Lovers of Krishan Leela Theme of Wonder & Beauty in Indian Heritage*, P. 22

8 डा0 रेखा निगम - *गढ़वाल शैली के चित्रकार मोलाराम का अध्ययन*, पृ0 18 (शोध प्रबन्ध)

साधना पर तान्त्रिको तथा बौद्ध सहजयानियों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। बौद्ध सहजयानियों की साधना में जो स्थान प्रज्ञा व उपासक का है और शाक्त तान्त्रिकों की उपासना में जो स्थान शक्ति एवं शिव का है, वही स्थान वैष्णव की सहज साधना में राधा व कृष्ण को प्राप्त है। सम्पूर्ण संसार में नारी मात्र राधा तत्व तथा पुरुष मात्र कृष्ण तत्व का प्रतिनिधित्व करता है।[1] कृष्ण रस है तथा राधा रति है। कृष्ण मदन है और राधा मादन है। इसी प्रकार राधा चिरभोग्या है तो कृष्ण चिरभोक्ता है। वैष्णव सहज साधना का चरम लक्ष्य इसी राधा तत्व एवं कृष्ण तत्व की समस्त लीला विलास तथा आमोद-प्रमोद के साथ सम्पूर्ण सहयोग सम्मिलित है।[2]

निहालचन्द ने सावन्तसिंह के काल मे अनेक अद्वितीय चित्रों की रचना की। निहालचन्द के जीवन का लक्ष्य चित्रकारी करना ही था। यद्यपि उनका काल शांतिपूर्ण न था फिर भी वे महत्वाकॉक्षी व आशावान थे। उन्होंने अपने भावों को रंगों, शेड्स, दृश्य चित्रण, समस्वरता और आध्यात्मिकता के माध्यम से कागज पर उतारा और इन सभी का उस बीते युग में न केवल किशनगढ़ में वरन् समस्त राजस्थान में अभाव था।[3] उनके लिये वास्तविक अर्थों में व्यक्तिगत कला बन गयी थी और गहराई से जिया जाने का वह साधन, जिससे आत्मिक मोक्ष और उस एक मात्र अनन्त अनादि शक्ति से एकाकार होना सम्भव था। उनकी जीवन वृत्ति उनके गहन भावनात्मक पक्ष की याद दिलाता है और किशनगढ़ शैली में तेजी से विकसित होते स्वरूप और नयी सम्भावनाओ की ओर इंगित करता है। चित्रफलक 27 जो निहालचन्द की एक अद्वितीय कृतियो में एक है को 1735 ई0 से 1751 ई0 के मध्य चित्रित किया था।[5] इस लघु चित्र में गांव की एक गोपी व गोपिका को क्रमशः एक बहादुर, आकर्षक राजकुमार के रूप में तथा राजकुमारी के रूप में विभिन्न वस्त्राभूषणों से सुसज्जित अंकित किया गया। आस-पास के वातावरण का दृश्य राजदरबार के वातावरण के समान है। यह एक राजमहल का दृश्य है इसमें राजकुमार या श्रीकृष्ण को नीले रंग से प्रदर्शित किया गया है। इस कलाकृति में त्रिआयामी प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। चित्र में गोपियों को अलग-अलग समूहों में प्रदर्शित किया गया है जिनकी भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्राओं का अंकन मिलता है। इस चित्र का वाह्य वातावरण अर्थात् वास्तु अलंकरण पर मुगलकला का प्रभाव झलकता है[5] परन्तु इसकी विषयवस्तु पूर्णतया किशनगढ़ शैली से सम्बन्धित है। जिसमें राधा कृष्ण एक विशिष्ट आकार लिये हुये हैं। चित्र के मध्य भाग में बैठी कुछ गोपियां वाद्ययंत्र बजा रही हैं तथा अग्र भाग में अंकित कुछ स्त्रियां पानी के साथ किल्लोल करती आपस में बातें कर रही है। इन सबके मध्य श्रीकृष्ण व राधा एक दूसरे के प्रेमभाव में लीन

---

1 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P. 82
2 डा0 रमाशंकर तिवारी - *श्रृंगार व साहित्य परम्परा*, पृ0 35
3 Rooplekha - Vol. XXV Part II Benerjee - *Historical Portrait of Kishangarh*, P. 17
4 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 11
5 *वही*, पृ0 12
6 P. 40

हैं। वातावरण का ऐश्वर्य पूर्ण वैभव मानो एक स्वर्गीय दरबारी वातावरण प्रस्तुत कर रहा है जिसमें एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। मण्डपों का विशिष्ट आकार व उसमें बैठे राधाकृष्ण की प्रेममयी लीला मानो अन्य प्रकार की दुनिया का भाव प्रदर्शित कर रहे हैं। जहां पर मानो हवा का प्रत्येक झोंका प्रेम की एक अलौकिक अनुभूति लेकर आता है। यह चित्र प्रेम रस में लीन एक चित्र है।

चित्र फलक 37 में दीपावली का दृश्य है। यह अत्यन्त आकर्षक और एक असाधारण चित्र है जो काले एवं सुनहरे रंग में है। इस चित्र की संरचना एक विलक्षण प्रतिभायुक्त आविष्कारिक मस्तिष्क का परिचय तो देती है। साथ ही यह वास्तविक सौन्दर्य की कृति भी है। यद्यपि चित्र पर किसी भी कलाकार का नाम नहीं मिलता है परन्तु यह अपनी गुणवत्ता, उच्चता तथा विशिष्टता के कारण निहालचन्द की कृति प्रतीत होती है।[1] यह चित्र दो भागों में विभाजित है। जलाशय के ऊपरी छोर पर एक श्वेतमण्डप है, वहीं प्रेमीयुगल अपनी दासियों सहित दीपावली मना रहे है। चित्र के निचले हिस्से में जलाशय के मध्य एक सिंहासन पर दोनों दिव्य प्रेमियों को रत्नाभूषणों से सुसज्जित किया गया है। यह सिंहासन मण्डप के अन्दर है और मण्डप जलाशय में मध्य की ओर कुछ दूर तक निकला हुआ है। जलाशय के किनारे एक अत्यन्त लावण्यमयी नर्तकी स्वर्ण वृक्षों और दमकती अग्नि की सुन्दर सुनहरी चिंगारियो के प्रकाश में नृत्य करती अंकित की गयी है।

चित्र फलक 39 किशनगढ़ शैली की सर्वोत्तम कृतियों में से एक है। यह चित्र 1742 ई. में सावन्तसिंह द्वारा लिखित ब्रजसार रचना के पद के आधार पर निहालचन्द द्वारा बनाया गया है।[2] मण्डप मे प्रेमीयुगल पास -पास बैठे हैं उनकी सेवा के लिये अन्य दासियों का भी अंकन है जो पान और सुवासित मसाले अथवा ताजे तोड़े गये चमेली के हार पेश करने के लिये तत्पर हैं। कृष्ण राधा के सौन्दर्य का पान कर रहे हैं। चित्र में श्वेत संगमरमरी मण्डप में जो मुगलकालीन शैली में बने स्तम्भों पर टिका है और जिन पर बारीक रुपहला काम हो रहा है। मुगल शैली में बने महीन पच्चीकारी से बने मण्डप व स्तम्भ किशनगढ़ शैली में बराबर दिखायी पड़ते हैं। इसी तरह मण्डपों की रुपहली सजावट भी अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रासाद वास्तुशिल्प में काफी दिखलायी पड़ते हैं।[3] पत्तियों तथा वृक्षों का वृत्ताकार समूह का घना झुरमुट और सदैव उपस्थित कदली वृक्ष इत्यादि निहालचन्द शैली में ही हैं। उसी तरह थोड़ी - थोड़ी दूर क्षितिज पर सीधे तने भालेनुमा सरो के वृक्षों का अंकन हैं। रुपहली सज्जा स्लेटी रंग में अंकित पानी, हल्के नीले रंग का आसमान और छरहरी दासियों के मध्य सजे यह श्वेत मण्डप किसी काल्पनिक लोक के प्रासादो का सा आभास देती है।

---

1 Rooplekha - Vol. XXV Part II Benerjee - *Historical Portrait of Kishangarh*, P. 14
2 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 16
3 P. Banerjee - *The Life of Krishan in Indian Art*, P. 40

चित्र फलक 35 सावन्तसिंह की रचना विहारीचन्द्रिका पर आधारित है इसमें सांझ के समय का यमुनाविहार का दृश्य है जिसमे श्रीकृष्ण अन्य गोपियो के साथ विहार कर रहे हैं। दूर बीच की पहाड़ी पर एक झुण्ड पर कृष्ण एवं गोपिकाओं का चित्रण है। सम्भवतः यह उस बात को इंगित करता है कि प्रेमीयुगल वनप्रान्त में भ्रमण करते हैं और फिर नदी विहार द्वारा उस विश्रामगृह पर आते हैं जहां वे रात्रि बितायेंगे।

यह चित्र दो भागों में विभाजित है-ऊपरी भाग में यमुना जल में मंथर विहार का चित्रण है और निचले भाग मे कुंज में वे वृक्षों के मध्य एक दूसरे के सामने खड़े हैं। चित्र का सम्पूर्ण दृश्य किशनगढ़ शैली की विशिष्टता से पूर्ण है।[1] संध्या बेला के रंगों से रंगा आकाश, घने प्रचुर संख्या में बने वृक्ष, सुनहरे रंग से जगमगाते दमकते प्रखर सूर्यास्त के प्रति निहालचन्द का लगाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है परन्तु यहां निचले फलक का उत्कृष्टतम् लयात्मक भाव सबसे अधिक आकर्षित करता है।[2] कृष्ण झील से कमल एकत्रित करते हुये (चित्रफलक 21) नामक चित्र में राधा नीले वस्त्रों को पहने हुये चटाई पर बैठी संगीत सुन रही हैं। उनके सामने संगीत के विभिन्न वाद्ययन्त्रों के साथ कुछ स्त्रियां बैठी हुयी हैं। राधा के साथ बैठी अन्य स्त्रियां भी रंगीन वस्त्र धारण किये हैं जो कि बालकनी के श्वेत धरातल पर खिल रही हैं। स्लेटी रंग से दर्शाये गये आकाश में पूरा चाँद निकलता दिखलायी दे रहा है जो राधा व उसकी सखियों की सुन्दरता मे और अधिक वृद्धि कर रहा है। श्रीकृष्ण को पृष्ठभाग में बनी झील मे कमल पुष्पो के मध्य तैरते हुये अंकित किया गया है। उनके शीर्ष के पीछे प्रभा मण्डल को दर्शाया गया है जो इस चित्र की गुणवत्ता में स्वर्णिम वृद्धि कर रही है। यह चित्र सांवन्त सिंह की कविता पर आधारित है।[3]

चित्र फलक 20 यह चित्र भी जिसमें कृष्ण राधा को पुष्प भेंट कर रहे हैं सावन्तसिंह की एक रचना पर आधारित है। राधा कृष्ण के सामने अपनी सखी के साथ खड़ी हैं। राधा कृष्ण दोनों की मुखाकृतियां किशनगढ़ की विशेष शैली में चित्रित हैं जबकि अन्य गोपियों की मुखाकृतियां मुगल शैली में बनी हैं। चित्र के अग्रभाग में बनी संगमरमर की बालकनी चन्द्रमा के प्रकाश से चमक रही हैं। झील में लाल तथा सफेद रंग की नौकायें तैर रही हैं जो किशनगढ़ शैली का प्रमुख विषय है। झील के पार सफेद रंग में बने भवनों तथा अट्टालिकाओं का अंकन है। बालकनी में एक पलंग बिछा है जिसके पाये चांदी के बने हैं।[4] एक तरफ दीप रखे हैं जिनकी आकृति सारस पक्षी के समान है। बहुमूल्य व स्वच्छ वस्त्र धारण किये राधा अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में अंकित की गयी हैं मानों प्रेम का सम्पूर्ण सुख उसे मिल रहा हो।

---

1 Rooplekha Vol. XXV, Part II, Benerjee - *Historical Portrait of Kishangarh*, P. 21
2 Linda York - *The Indian Miniature Painting & Drawing*, P. 25
3 M. S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 3
4 वही पृ0 15

इस प्रकार इन चित्रों में किशनगढ़ शिल्पशाला की सर्वोत्तम उपलब्धि होती है। यद्यपि इस समय तक भारतीय चित्रकला अपनी अन्तिम अवनति की ओर अग्रसर हो रही थी। परन्तु इसके बाद के भी कुछ चित्रों में आकर्षण मौजूद मिलता है और यही है मुखरित साक्ष्य उस तथ्य का कि वैष्णव पुर्नजागरण की आत्मचेतना से क्या उपलब्धि हो सकती है। यद्यपि यह गौरव बहुत कम समय के लिये ही बना रहा।[1]

चित्रफलक 40 यह लघुचित्र सम्भवतः बणीठणी के पद पर आधारित चित्रांकन है। इस चित्र का अपना सहज सौन्दर्य है। यद्यपि चित्र की पृष्ठभूमि की दृश्यावली एक नाट्यकृति की सज्जा के समान है। हांलाकि मानवाकृतियों में निहालचन्द की विधा की ही अतिरंजना दिखायी देती है परन्तु फिर भी उसमें ह्रास के चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। यह लघुचित्र निहालचन्द के उत्तराधिकारी सीताराम द्वारा बनाया गया प्रतीत होता है। इस चित्र का सबसे आकर्षक पहलू चित्रित हिंगुलों की पंक्ति से बना पार्श्वचित्र है जो स्लेटी रंग से अंकित झील उसकी लाल नौकायें तथा तारायुक्त आकाश के लिये एक सजीव वैषम्य प्रस्तुत कर रहा है।[2] यद्यपि चित्र में वास्तविक रात्रि के दृश्य को अंकित करने का प्रयास नहीं किया गया है फिर भी उसी का आभास देने के लिये ताराजड़ित गहरा नीला आकाश है तथा आधे चाँद का अंकन है। कृष्ण का दीवान कक्ष से बाहर हरे मैदान में रखा है। इससे प्रतीत होता है कि यह राजस्थान की ग्रीष्मऋतु की एक उष्ण रात्रि का दृश्य है। चित्र फलक 36 जो ''चांदनी रात में संगीत की महफिल'' के नाम से जाना जाता है। अट्ठारहवीं शती के मध्य किशनगढ़ दरबार से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण वृत्तचित्र है जो महाराजा सरदारसिंह के समय बनाया गया है। इस लघु चित्र के पृष्ठभाग में लिखा एक लेख अंकित है जबकि चित्र में चित्रित व्यक्तियों के नाम उनके सामने स्वर्णाक्षरों में लिखे हैं। इस चित्र में कलाकार निहालचन्द को राजा के सम्मुख स्थान दिया गया है। लेख से पता चलता है कि यह अमरचन्द द्वारा बनाया गया चित्र है[3] जो किशनगढ़ के अच्छे चित्रकारों में गिने जाते थे, जिन्हें वास्तुगत सज्जा से विशेष लगाव था। नीले वस्त्रों में सुसज्जित दिल्ली की एक प्रमुख गायिका गीत गा रही है। जो यह इंगित करता है कि साम्राज्य की राजधानी में प्रचलित सभी कला स्वरूपों से राजपूत राज्य कितने गहरे से जुड़े थे। चित्र में सरदारसिंह रूपनगर में अपने प्रसिद्धि में चाँदनी रात में संगीत की महफिल का आयोजन करते दिखलाये गये हैं। आँगन में दोनों ओर नीले, हरे कदली वृक्षों की घनी पंक्तियाँ हैं। सम्पूर्ण महल श्वेत चांदनी में चमक रहा है। इस चित्र का रचनाकाल 1760 ई० से 1766 ई० के मध्य का है। इस प्रकार किशनगढ़ चित्रशैली की अधिकतर सर्वोत्तम कृतियां 1735 ई० से 1757 ई० के मध्य ही निहालचन्द द्वारा चित्रित की गयी हैं।[4] विशेष रूप से सावन्त सिंह के काल में।[5]

---

1 डा0 सुमहेन्द्र - *राजस्थान की रागमाला परम्परा*, पृ0 83
2 *राजस्थान की लघुचित्र शैलियाँ*, ललित कला अकादमी, पृ0 32
3 Eric Dickinson, Marge Vol. III, Part-4. - *The way of Pleaser of Kishangarh Painting*, P. 35.
4 Stella Kramrich - *Painted Delight*, P. 28.
5 *वही* पृ0 28.

सावन्तसिंह के वनवास के पश्चात् कुछ वर्षों तक निहालचन्द ने चित्रों का निर्माण कार्य जारी रखा। इन चित्रवृत्तियों में सावन्तसिंह की गठित शैली के दर्शन होते हैं।[1] परन्तु इस महान काल का जादुई स्पर्श अब लुप्त हो चुका था। दानलीला (चित्र फलक 17) चित्र में स्त्री मुखाकृति यद्यपि सुन्दर तो बनी है परन्तु आकृतियां पहले जहाँ लम्बी व छरहरी अंकित की जाती थी वहां अब छोटी-छोटी बनने लगीं। चित्र फलक 7, 12, 13, 31, 50, 51, 56। जो इस समय चित्रित हुये उनमें पहले जैसी मोहकता, संवेदनशीलता का अभाव है। इनका वर्णसंयोजन, पृष्ठभूमि का संयोजन आदि भी उन चित्रों के समान नहीं है। इन चित्रों की बनी मुखाकृतियों में काफी परिवर्तन है। यद्यपि वह मोहक तो लगती हैं परन्तु पहले जैसी सूक्ष्मता, संवेदनशीलता व आकर्षण का अभाव है। ये मुखाकृतियां धीरे-धीरे गोल आकार लेने लगी थीं, नेत्रो मे भी पहले वाला जोर न रहा। कुल मिलाकर इन चित्रों को देखकर स्पष्ट रूप से लगता है कि इसमें पहले के बने चित्रों की अपेक्षा ह्रास के चिन्ह दिखलायी पड़ने लगे है।[2] इस तरह के बने चित्र अपनी समस्त उत्कृष्टता के साथ भी सावन्त सिंह के काल की मोहक और अर्द्धरहस्यात्मक रचनाओं से तुलना नहीं कर सकते हैं।[3] इस प्रकार किशनगढ़ मे अट्ठारहवीं शती तक कुछ अच्छे चित्र बनते रहे परन्तु उनमें उत्तरोत्तर परिवर्तन आता गया। 1820 ई0 में बने गीतगोविन्द पर आधारित कृतियों मे यही परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।[4]

चित्र फलक 56 गोवर्धनधारण में यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। इस चित्र में वर्णित रंग संयोजन, प्राकृतिक पृष्ठभूमि के अंकन में शिथिलता आ चुकी थी। आकृतियां छोटी अंकित की गयी हैं जबकि इसी विषय पर एक संस्करण चित्र जो भारत कला भवन में सुरक्षित है जिसे प्रख्यात चित्रकार निहालचन्द ने बनाया था।[5] चित्रफलक 19 मे प्राकृतिक वातावरण, पर्वत तथा बिजली अंकन निहालचन्द ने बड़ी कुशलता व बारीकी से किया है। नेत्रों मे अपनी मौलिक विशेषता परिलक्षित होती है।

चित्र फलक 50 (1775 ई0) में कृष्ण एक लम्बा श्वेत वस्त्रधारण किये हाथों मे फूल लिये खड़े हैं जबकि राधा शर्माते हुये उनकी तरफ बढ़ रही हैं। चित्र में सामने कमल के फूलों से आच्छादित तालाब है और हरी पृष्ठभूमि में पूजास्थल झील, भव्यमहल तथा चहारदीवारी से घिरा शहर अंकित है। आसमान में गहरे घने बादल है। तीक्ष्ण हरा रंग किशनगढ़ की विशेषता के अनुरूप ही प्रदर्शित है। इस चित्र में धार्मिक पुट नहीं मिलता है फिर भी इस चित्र मे दैवीय प्रेम का मानवीयकरण बहुत खूबसूरती से किया गया है।[6]

---

1 Anjana Chakrawati - *Indian Miniature Painting*, P. 69

2 Marge, Vol. III, Part IV, Eric Dickinson -*The Way of Pleasure of Kishangarh Painting*, P. 35

3 *Indian Miniature Painting*, Ehrenfield Collection, P. 159

4 Anjana Chakrawati - *Indian Miniature Painting*, P. 69

5 भारत कला भवन, वाराणसी में संग्रहीत।

6 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P.83

गीतगोविन्द पर आधारित (चित्रफलक 41) यह चित्र 23 चित्रों की श्रृंखला में से एक है। चित्र पुष्पिका से ज्ञात होता है कि किशनगढ़ के राजा कल्याणसिंह के लिये अट्ठारहवीं शती में यह श्रृंखला चित्रित की गयी थी। इस चित्र में किशनगढ़ नारी आकृतियों की विशिष्टता नहीं दिखायी पड़ती है[1] जबकि इनके तीखे नयननक्श और विशाल नेत्र सम्मोहक हैं। चित्र में छायाकरण बहुत नियन्त्रित है और शरीर रेखांकन पुराकालीन है। यह चित्र इस बात को इंगित करता है कि अब चित्रों में कलात्मक गुणों का ह्रास होने लगा था। फिर भी इस काल के चित्रों में ह्रास के चिन्ह जो भी हों वे इतने मामूली हैं कि इनमें प्रदर्शित एक विशिष्ट स्फूर्ति एवं ऊर्जा के समक्ष अन्य चित्र नहीं ठहर पाते हैं।[2]

सूरध्वज निहालचन्द के कई वंशजों ने चित्रकला को अपना व्यवसाय बनाया। किशनगढ़ में आज भी उनका घर है जहां उनके वशंज रहते हैं। निहालचन्द की तूलिका में जो विशेषता थी उसके पुनः दर्शन नहीं होते।[3] यहां तक कि उनके सहयोगी कलाकारों की कृतियों में भी वह कौशल नहीं है। निहालचन्द के बाद बने चित्रों में अंकित नारी छवियां इसका प्रमाण हैं। निहालचन्द की कला कौशल का प्रमाण दूसरे रजवाड़े में भी पहुंचा। बूंदी महल में बने भित्ति चित्रों में उसकी कलम की स्पष्ट छाप दिखलायी पड़ती है। निहालचन्द के वंशजो में सीताराम व बदनसिंह का नाम प्रमुख है।[4] सीताराम अच्छे चित्रकार थे, उनकी कुछ कृतियां दरबार संग्रह में सुरक्षित हैं।[5] अन्य चित्रकारों में मेघराज, भवानीदास, कल्याणदास, अमरू, सूरजमल, सूरतराम, नानगराम, रामनाथ जोशी, सवाईराम, लाडलीदास इत्यादि जिन्होंने चित्रकला के विकास में अपना सहयोग प्रदान किया।

उन्नीसवीं शती के दौरान पृथ्वी सिंह के काल (1840 ई0-1880 ई0) तक किशनगढ़ दरबार में कुछ चित्रकार अच्छा कार्य कर रहे थे जो निहालचन्द द्वारा रचित मुखाकृतियों को परम्परागत रूप से चलाते रहे।[6] परन्तु इन आकृतियों में कोमलता का स्थान कठोरता ने ले लिया था (चित्र फलक 54) खुदायी में काली स्याही का प्रयोग होने लगा था। इस समय विशेष रूप से कल्याणराय के चित्र बनाये गये। कल्याणराय की पूजा का एक दृश्य दरबार संग्रह में संग्रहीत है। उन्नीसवीं शती की किशनगढ़ चित्रकारी से हमारा अभिप्राय उस कला से है जिसका पूर्ण पतन प्रारम्भ हो चुका था। कुछ महत्वपूर्ण अपवादों के बाद भी इस ऐतिहासिक ह्रास को नहीं बदला जा सका। फिर भी यह एक अपूर्ण व्याख्या है जो इस काल के उपलब्ध भारी मात्रा में चित्र रेखांकनों से स्पष्ट है। अधिकतम रूप से इन चित्रों में तात्कालिकता

---

1 Rooplekha - Vol. XXV Part II, Benerjee - *Historical Portrait of Kishangarh*, P. 22

2 Marge Vol. III Part IV, Eric Dickinson-*The Way of Pleasure of Kishangarh Painting*, P. 36

3 Anjana Chakrawarti - *Indian Miniature Paintiang*, P. 69

4 वाचस्पति गैरोला - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 13

5 Ateliers of the Rajput court - *Lalit Lala Akedami*, P. 60

6 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 17

प्रयोगवाद, चित्रण की गहराई तथा योग्यता प्रदर्शित होती है।[1] जो अधिकांशतः उन चित्रों में अनुपस्थित हैं जो राजसी आदर्श से बने थे। यह सम्भव है कि राज्य के पतन के साथ-साथ इन चित्रों का गम्भीर अध्ययन उनके लिये निरर्थक था। अतः किशनगढ़ की कला का पतन का एक कारण उनके संरक्षकों की असफलता भी कहा जा सकता है।

मोटे तौर पर किशनगढ़ के चित्र तीन विशिष्ट काल से सम्बद्ध लगते हैं[2] -

1 रासलीला और गीतगोविन्द के वे तथाकथित लघुचित्र जिसमें ऊँचे लाक्षणिक सरों वृक्षों का अंकन है। पत्तियों की पृष्ठभूमि गहरी नीली है और लहरों का अंकन टोकरी के बुनायी जैसा नमूना है। यह सत्रहवीं शती के मध्य बने चित्र लगते है।
2 विभिन्न राजाओं के व्यक्तिगत चित्र तथा राजा साहसमल्ल हरिसिंह, राजसिंह, सावन्तसिंह, सरदारसिंह आदि तथा राधा कृष्ण की गाथायें वर्णित करते चित्र।
3 कल्याण सिंह के शासन काल के रुक्मिणी वेला हरण के चित्र ।

यद्यपि सावन्तसिंह व उनके पुत्र का शासनकाल किसी भी दृष्टि से शान्तिपूर्ण नहीं था और यह आश्चर्यजनक लगता है कि कलात्मक गुणों से परिपूर्ण वे चित्र जिनमें रत्नजड़ित आकृतियां चित्रित हैं। किशनगढ़ में सहवर्ती जोधपुर राज्य द्वारा फैलाये षड़यंत्र व अराजकता के वातावरण में रचे गये दर्शनीय हैं। वहां के राजा को भी सन्यास ग्रहण करना पड़ा। अराजकता का एक निश्चित परिणाम होता है जो संस्कृति का नाश में और जीवन के उच्चस्तरीय लक्षणों में बाधक होती है परन्तु यहां ऐसा नहीं दिखता है। राधाकमल मुखर्जी का कहना है कि सभ्यता के इतिहास में प्रायः युद्ध, रक्तपात, भोगविलास और नैतिक दुर्व्यवस्था ने ही संसार की सर्वोत्तम कलात्मक सृजनता को उत्पन्न किया।[3] उदाहरणार्थ - पाँचवीं शताब्दी में चीन ने सिविल वार की दुर्व्यवस्था तथा विदेशी आक्रमण के बीच कला की सर्वोत्तम कृतियों का जन्म हुआ था।[4] जब अफगानिस्तान और पंजाब बर्बर राजाओ के लिये युद्ध क्षेत्र बन गये तभी वहां रोमनों और हेलेनिस्टिक की कला समृद्ध हुई। बंगाल की पाल कला का उद्गम तब हुआ जब पाल व गुर्जरों की सेनायें उत्तरी भारत पर अपना अधिकार जमाने के लिये आपस में संघर्ष कर रहीं थीं।[5] फिडियास और प्राक्जीटिलिस की कला उस समय पनपी जब वहां फेलोपेनिशयन युद्ध का प्रारम्भ हुआ। जब चंगेज खां और उसके उत्तराधिकारियों के हाथों चीन छिन्न-भिन्न हो गया और कुबला खान ने युआनवंश की स्थापना की तो इस राष्ट्रीय लज्जा व अपमान के क्षणों में वहां की शुंग कला सम्पूर्ण एशिया का आदर्श बन बैठी। भयंकर दुर्भिक्ष के समय बंकिमचन्द्र की प्रतिभा उजागर हुयी। टैगोर, मैथिलीशरण गुप्त, सरोजिनी नायडू, टैगोर बन्धु, जैमिनीराय, चुगताई, अमृता शेरगिल, असित कुमार हाल्दार और नन्दलाल बोस उस काल में पनपे जब बंगाल के विभाजन से प्रारम्भ होकर अन्ततः 'रक्त अश्रु एवं परिश्रम' के महासमुद्र को पार करके भारत ने स्वाधीनता प्राप्त की।

---

1 Rooplekha - Vol. XXV Part II Benerjee - *Historical Portrait of Kishangarh*, P. 16
2 वही, पृ0 17
3 G. N Sharma - *The Art Heritage of India*, P. 70
4 W. G Archer - *Indian Painting*, P 100
5 वही पृ0 18

यद्यपि किशनगढ़ के लघुचित्रों में मुगलशैली की तकनीकी प्रभाव दिखलायी पड़ता है परन्तु यह मूलरूप से वैष्णव आदर्शों एवं सिद्धांतों की कृति है जो उस काल के सबल और निर्बल दोनों ही पक्षों का दर्शन बन चुके थे। ईश्वरीय भक्ति का जो मानवीयकरण इन धार्मिक वैष्णव धाराओं ने किया उससे साहित्य ही समृद्ध नहीं हुआ वरन् चित्राभिव्यक्ति में भी इस आध्यात्मिक स्रोत का मानवीयकरण पूर्ण कोमलता व सौन्दर्य के साथ हुआ है[1] और इसे प्राप्त करने में मुगल चित्रकारों की धनाढ्य समृद्धता व अभिव्यंजित सूक्ष्मता भी सफल न हो सकी।

किशनगढ़ शैली की आध्यात्मिक विषयवस्तु मानवीय प्रेम, रागविराग कृष्ण राधा के कथानकों के आधार पर अभिव्यक्त हुये। कुमारस्वामी ने कृष्ण से सम्बन्धित प्रेम विषयों का वर्णन करते हुये कहा है कि प्रेम का जो स्थान यूरोपीय लोगों के हृदय में दांते की प्रेमिका व फान्सिसका की पैट्रीशिया के लिये है, वही स्थान पौराणिक कथाओं में सीताराम, रत्नसेन, पद्मावती, तथा राधा कृष्ण का है। राधा का कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम में डूबकर स्वयं का समर्पण सभी दैवीय प्रेम से सर्वोपरि है। इसमें मानवीय प्रेम का धार्मिकीकरण कर दिया गया तथा आन्तरिक व वाह्य अन्तःकरण में स्थित क्षुद्र मानवीय भावनाओ का कोई स्थान नहीं रहा है।[2] कलाकारों ने प्रेम की इस आध्यात्मिक भावना को नायक-नायिका के माध्यम से जन-जन तक अनुभूत बनाया। यह भावना इतनी सशक्तता से आयी और दृष्टा को उद्वेलित करती गयी कि ये उद्वेलन की प्रवृत्ति टालस्टाय की उच्चकोटि की कलापूर्णता की मीमांसा के निकट पहुंच जाता है।[3]

भावाभिव्यंजना के मूलाधार

विषयवस्तु

किशनगढ़ शैली के चित्र हिन्दू संस्कृति से ओत-प्रोत काव्य, साहित्य तथा संगीत के सम्मिश्रण रहे हैं। चित्रकारों ने चित्रकला की सृजनात्मकता को ईश्वर प्राप्ति का मुख्य ध्येय मानते हुए धार्मिक, पौराणिक विषयक चित्रों को कुशलता से चित्रित करने का प्रयास किया है। साथ ही कलाकारों ने भक्ति, श्रृंगार, प्रेमाख्यानों व राग-रागनियों आदि से सम्बन्धित विषयो को चित्रित करने का प्रयास किया। इन सभी विषयक चित्रों के अलावा महाराजाओं ने अपने शौर्य को दर्शाने के लिए व्यक्तिचित्र तथा आखेट दृश्यों को भी चित्रित करवाया। कलाकारों ने चित्रों में विभिन्न रसों की अनुभूति कराने के लिए निश्चित रंगो, रेखाओं, प्रतीकों एवं अभिप्रायों की रचना अपने-अपने परम्परागत मूल्यों, मौलिक चिन्तन एवं मनन के आधार पर भी की है।[4]

---

1 Rooplekha, Vol-XXV, Part II, Banerjee - *Historial Portrait of Kishangarh*, P. 18

2 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P.82

3 Toles toy - *What is Art*, P. 32-33

4 डा. सुमहेन्द्र - *राजस्थानी चित्रकला में रागमाला परम्परा*, पृ0 82

किशनगढ़ के चित्रों के प्रमुख विषयों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :-

1. *धार्मिक, पौराणिक विषयक चित्र।*
2. *आखेट चित्रण।*
3. *व्यक्ति चित्रण।*
4. *नारी चित्रण।*
5. *श्रृंगारिक एवं नायक-नायिका भेद चित्रण।*
6. *अन्य।*

धार्मिक पौराणिक विषयक चित्र

प्राचीन समय से ही मानव और धर्म का सम्बन्ध नाड़ी और धड़कन के समान रहा है । जिस प्रकार नाड़ी से धड़कन को अलग नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार मानव के व्यक्तित्व से धर्म को अलग नहीं किया जा सकता है। इतना जड़त्व सम्बन्ध होने के कारण उसकी सृजनात्मक गतिविधियों में धर्म का प्रभाव आना स्वाभाविक ही होगा। भारतीय परम्परा के अनुसार कर्म का उद्देश्य पूर्णत्व या मोक्ष की प्राप्ति रहा है और चित्रकला का कर्म भी प्राचीन समय से ही मोक्ष की या पूर्णत्व की प्राप्ति का एक साधन मार्ग था[1] जिनके प्रमाण प्रथम शताब्दी से छठीं शताब्दी तक अजन्ता की गुफाओं में धर्म के प्रचार के लिए किये गये चित्रों के माध्यम से परिलक्षित होता है। यह सृजन केवल प्रभु के लिए साधन रूप में चित्रित हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार कालान्तर में जैन धर्म, हिन्दू धर्म, तथा अन्य धर्मों के प्रचार के लिए हस्तलिखित चित्रित ग्रन्थों का निर्माण हुआ[2] जो परम्परा द्वारा राजस्थानी शैलियों में भी अपनाया गया।

किशनगढ़ में चित्रों का अंकन धार्मिक परिप्रेक्ष्य में ही हुआ है। विशेष रूप से वैष्णव मत से सम्बन्धित चित्रों का अंकन हुआ जिसमें यहां के महाराजाओं की आस्था और धार्मिक चिन्तन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । महाराजा सावन्तसिंह को वैष्णव धर्म के प्रति विशेष आस्था थी। सर्वाधिक उत्कृष्ट चित्रों का निर्माण इन्हीं के काल में हुआ।

चित्रण का विषय कुछ भी रहा हो, यहां कृष्ण को मुख्य नायक के रूप में चित्रित किया गया। चित्र फलक 19 में श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को अपनी एक उंगली पर उठा रखा है। कथा के अनुसार भगवान इन्द्र मथुरा में मूसलाधार वर्षा करते हैं। इस भारी वर्षा व ठन्ड से बचाव के लिये मथुरा निवासी अपनी शरण हेतु स्थान की खोज करते हैं। इसी समय कृष्ण गोवर्धन पर्वत को छोटी ऊंगली पर उठाकर यहां के निवासियों की सहायता करते हैं। कृष्ण निरन्तर सात दिन तक पर्वत को धारण किये रहते हैं और सभी गोप-गोपियों तथा पशु उस पर्वत के नीचे सुरक्षित रहते हैं। चित्र में गोप-गोपियाँ श्रृंखलाबद्ध होकर कृष्ण से प्रार्थना की मुद्रा में खड़े हैं। चित्र में दाहिनी तरफ खड़े ग्वालें पीली पगड़ी पहने हुए हैं। मध्य में गायों को खड़ा प्रदर्शित किया गया है। गायों के शरीर का ऊपरी हिस्सा सफेद तथा नीचे का हिस्सा लाल रंग से चित्रित किया गया है जो कि पृष्ठभूमि में अलग सा चमकता दिखायी पड़ रहा है। इस तरह के चित्र राजस्थान की लगभग सभी

---

1 Vincent Smith - *Fine Art of Indian Cyclone*, P. 87
2 वही, पृ0 87

शैली में मिलते हैं। किशनगढ़ में अट्ठारहवीं शती के अन्त में इसी विषय पर बना चित्र प्राप्त होता है।[1] उसमें तकनीकी गुणवत्ता तथा उच्चता का अभाव है परन्तु इससे यह पता चलता है कि बाद तक इस तरह के चित्रों का निर्माण होता रहा है।

चित्र फलक 41 जो गीतगोविन्द पर आधारित चित्र है राजा कल्याणसिंह के समय में 1798 ई -1835 ई में इस विषय वस्तु पर आधारित चित्रों की श्रृंखला निर्मित की गयी थी। चित्रों में अंकित राधा कृष्ण की मुखाकृतियां निहालचन्द द्वारा चित्रित नारी मुखाकृतियों से मिलती है।[2] चित्र के पीछे काली स्याही से गीतगोविन्द का निम्न श्लोक का अंकन मिलता है[3] -

"चन्दन चर्चित नीलकलेवर पीतवसन वनमाली।"

इस चित्र में छह गोपिकायें एक खुले स्थान में श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा में मग्न हैं। कृष्ण को दो गोपियों ने आलिंगनबद्ध कर रखा है तथा चार गोपियां आनन्दविभोर होकर रासनृत्य करने मे मग्न हैं। साथ ही आकर्षक व्यक्तित्व वाले कृष्ण को क्रियाकलाप करते हुए देख रहीं हैं। चित्र में दाहिनी तरफ राधा व उसकी सखी को बैठा अंकित किया गया है। राधा-कृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र को देखकर दुखित सी बैठीं हैं।[4] इस प्रकार कलाकार ने किशनगढ़ की चित्रविधा का बड़ा ही अलौकिक तथा माधुर्ययुक्त चित्रांकन प्रस्तुत किया है।[5] मानों स्वयं राधा कृष्ण साकार रूप में प्रस्तुत हो अपनी लीलाओं का प्रदर्शन कर रहे हों।

चित्र फलक 2 रुक्मणी हरण पर बना यह चित्र विवाह की विशिष्ट श्रृंखला से सम्बन्धित है।[6] उस समय रुक्मणी के विवाह हरण सम्बन्धी एक विशिष्ट श्रृंखला तैयार की गयी थी। चित्र में रुक्मणी से विवाह के सन्दर्भ में कृष्ण अपने भाई बलराम के कुण्डलपुर के शिविर में बैठे हुये हैं। रुक्मणी मन ही मन कृष्ण को अपना पति स्वीकार कर चुकी है और कृष्ण को रुक्मणी को अपनी पत्नी बनाने के लिये युद्ध करना पडता है। यह चित्र सन्देश देता है कि युद्ध की पूर्व संध्या पर कृष्ण के आने के कारण सैनिकों का उत्साह बढ़ जाता है।[7]

चित्र फलक 42 मे जो रुक्मणी हरण श्रृंखला पर ही आधारित है। चित्र के पृष्ठभाग में अथबने हरे वृक्षों को छोड़कर सम्पूर्ण चित्र एकरंगी प्रतीत होता है। मुगल शासकों के काल में भी इस प्रकार के चित्रों का अंकन दिखायी पड़ता है। यद्यपि बाद में इसका चलन समाप्त हो गया परन्तु अट्ठारहवीं शती के मुगल व राजस्थानी चित्रांकन में कभी-कभी दिखायी पड़ जाते हैं।

---

1 *Indian Miniature Painting*, Ehrenfield Collection, P. 153
2 Eric Dickinson & Karl Khandelwala - *Kishangarh Painting*, P.13
3 जयदेव - गीतगोविन्द काव्य, प्रथम सर्ग, चतुर्थ अष्टपदी, प्रथमगीत
4 प्रेमशंकर द्विवेदी - *राजस्थानी चित्रकला में गीतगोविन्द*, पृ0 75
5 P. Banerjee - *The Life of Krishna in Indian Art*, P. 18
6 W. G. Archer - *Indian Miniature*, P. 59
7 वहीं, पृ0 60

कथा के अनुसार युवराज्ञी रुक्मणी कृष्ण से विवाह करना चाहती है परन्तु उनके भाई उन्हें मात्र चरवाहा समझ कर उनका तिरस्कार करते हैं और उसका विवाह शिशुपाल से करने का निश्चय करते हैं। तब रुक्मणी अपनी इस विपदा का सन्देश कृष्ण को भेजती है। उनके प्रेमी कृष्ण नियत समय पर वहां आकर प्रत्येक विरोध को पराजित करके रुक्मणी को अपनी पत्नी बनाकर वहां से हरकर ले जाते हैं। यही कथानक इस चित्र में चित्रित है। चित्र में वास्तु शिल्पात्मक सज्जा प्रभावशाली है।[1] कृष्ण को गोप के वेश में अंकित करके राजसी वेशभूषा में अंकित किया गया है। मानों वह अभिजात्यवंश के कोई राजपूत राजकुमार हैं। उनका अश्व भी अभिजात्य राजपूत शैली में चित्रित है जैसा कि उस समय अभिजात्य वर्ग में विशेषकर विवाह के अवसरों पर सजाया जाता था। एक ऊँची अलंकृत अटारी से रुक्मणी हाथों में जयमाल लिये कृष्ण के स्वागत में खड़ी है। दासियां कृष्ण के ऊपर पुष्पों की वर्षा कर रही हैं। पूरा रास्ता फूलों से ढका चित्रित है। द्वार पर शुकमण्डप चित्रित हैं जो विवाह के अवसर पर चित्रित किया जाने वाला छोटे शुकों से सजा एक फलक है। चित्र में अंकित वर की शौर्यपूर्ण मुद्रा वधू के लिये उस बहादुरी तथा सैन्य का प्रतीक है जिसे शताब्दियों से राजस्थानी जनश्रुतियों में घोषित किया गया है।[2]

रामायण के आधार पर भी चित्रों का अंकन किशनगढ़ शैली मे मिलता है। राम हिन्दुओं के प्रमुख देवता के रूप में माने जाते हैं।[3] इन्हे मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम के नाम से भी जाना जाता है। चित्र फलक 68 में राम, लक्ष्मण व सीता को वनवास के समय में चित्रित किया गया है।[4] कथा के अनुसार राजा दशरथ ने अपनी पत्नी कैकेयी को प्रसन्न करने के लिये राम को चौदह वर्ष के लिये वनवास दे दिया था। उनका अनुसरण कर उनके प्रिय अनुज लक्ष्मण व पतिव्रता पत्नी सीता ने भी उनके साथ अयोध्या का त्याग कर दिया। इस चित्र में उन्हें एक झील के किनारे बैठा चित्रित किया गया है। झील में कमल के फूलों का अंकन है जिसमें जलपक्षी खेल रहे हैं। चित्र में राम और लक्ष्मण जटायें बांधे हुये हैं। राम के शीर्ष पर एक आभा मण्डल दिखायी दे रहा है। पृष्ठभूमि में ऋषियों के आश्रम दिखायी पड़ रहे हैं। यह उन्नीसवीं शती के प्रारम्भिक दौर में बनाया गया चित्र है।[5]

इसी क्रम में चित्र फलक 69 में राम, लक्ष्मण व सीता को एक घायल पक्षी के साथ चित्रित किया गया है।[7] चित्र फलक 68 तथा चित्र फलक 70 भी रामायण के विषय से ही सम्बन्धित हैं।

किशनगढ़ की चित्रकला का विषय वैष्णवधर्म होने के कारण अन्य मतों का चित्रण कलाकारों ने कम ही किया है। अतः चित्रफलक 71 में राख से पुते एक संत को शेर की खाल पर बैठे हुये तथा शिवलिंग की अर्चना करते हुये दिखाया गया है। पेड़ की शाखाओं के साथ-साथ एक त्रिशूल तथा पवित्र झण्डा भी अंकित है। सामने एक छोटा तालाब

---

1 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 5

2 जयचन्द शर्मा-साजों संग रमते देवी-देवता, *राजस्थान पत्रिका*,जयपुर, जुलाई' 94, पृ० 5

3 N.C. Mehta & Moti Chandra-*The Golden Flute, (Indian Painting & Poetry)*, P. 10

4 M. S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 44

5 वही, पृ० 44

6 Pratapaditya Pal - *Court Painting In India*, P. 230

7. *Indian Miniature Painting*, Ehrenfield Collection, P. 65

बना हुआ है। सन्त के पीछे तीन अनुयायी खड़े हैं जो अपलक शिवलिंग को निहार रहे हैं। सन्त की भक्ति इतनी तीव्र है कि उसके प्रभामण्डल को सुनहरी किरणों से चित्रित किया गया है।

आखेट चित्रण

उस समय महाराजाओं तथा सामन्त वर्ग में आखेट का प्रचलन अत्यधिक था। उस समय आखेट को खेल के रूप में मानकर उसे शिकार की संज्ञा दी गयी। शेर, चीते, भालू, शावक, शूकर, हिरण का शिकार महाराजाओं, जागीरदारों व सामन्तों के प्रिय विषय रहे हैं। किशनगढ़ शैली के प्रारम्भ में आखेट विषयक अनेक चित्र प्राप्त होते हैं।[1] चित्र फलक 10 में राजा अमरसिंह घोड़े पर बैठे हाथ में भाला लिये एक काले रंग के हिरण का पीछा कर रहे हैं।[2] चित्र की पृष्ठभूमि का चित्रण काले, भूरे व पीले रंग से किया गया है तथा पृष्ठभूमि में पीछे दूर शहर व किले का अंकन दिखायी पड़ता है। चित्र फलक 25 में राजा राजसिंह तलवार से एक भैंसे के ऊपर हमला कर रहे हैं। भैंसा अधिकृत रूप से घायल है तथा उसके घावों से खून रिस रहा है। भैंसे के पीछे एक दूसरी आकृति का अंकन है जो जोरदार ढंग से तलवार से भैंसे पर प्रहार कर रही है । इस व्यक्ति के पीछे एक घोड़े का अंकन है। राजा राजसिंह हरे रगं का कीमती किमखाब से बना जामा तथा रत्नजड़ित साफा पहने अंकित हैं। चित्र फलक 34 राजा साहसमल के साथ तमाम सेवकों को खुले मैदानी पृष्ठभूमि में खड़े चित्रित किया गया है। राजा साहसमल के हाथ में एक शिकारी बाज है। राजकुमार एक घेरदार जामा पहने है जो हरे रंग के किमखाब से बना है।[3] साहसमल के साथ खड़े प्रत्येक सहायकों के हाथ में एक-एक पक्षी का अंकन है जिनमें से कुछ का शिकार किया गया है तथा कुछ जीवित हैं। चित्र का सम्पूर्ण दृश्य घुमावदार नहरों से विभाजित है और पृष्ठभाग में गुण्डालोव झील के तट पर किशनगढ़ नगरी का अंकन किया गया है। चित्र फलक 24 में राजा राजसिंह को शिकार के पश्चात् विश्राम करते हुए चित्रित किया गया है। राजा सावन्तसिंह की युवावस्था के समय के शिकार करते हुये दो चित्र प्राप्त होते हैं।[4] (चित्र फलक 93 तथा 95)

व्यक्तिचित्रण

किशनगढ़ के चित्रकार मूलतः दरबारी थे। उन्होंने अपने शासकों की इच्छा अनुसार शाही पुरुषों की दैनन्दिन की क्रिया को अपनी चित्रकला में व्यापक स्थान दिया।[5] व्यक्ति चित्र बनवाने की परम्परा प्राचीन काल से ही मिलती है। महाभारत में ऊषा, अनिरुद्ध कथा प्रंसग में उल्लेख मिलता है कि राजकुमारी ऊषा ने स्वप्न में एक सुन्दर युवक को

---

1 अविनाश बहादुर वर्मा - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 20

2 राजस्थानी चित्रों में शिकार का प्रदर्शन, कैटलाग अप्रैल 1972 पृ0 46, *पुरातत्व व संग्रहालय विभाग*, जयपुर, राजस्थान

3 Rooplekha, Vol-XXV, Part I, Banerjee - *Historical Painting of Kishangarh*

4 Dr. Sumhendra - *Splendid Style of Kishangarh*, P. 31

5 सुरेन्द्र मोहनस्वरूप भटनागर - *राजस्थान की लघुचित्र शैलियां*, प्रथम खण्ड, पृ0 45

अपने साथ वाटिका में विहार करते देखा तो वह उससे प्रेम करने लगी और उसकी स्मृति में व्याकुल रहने लगी। उसकी परिचारिका चित्रलेखा को इस घटना का ज्ञान होने पर उसने देवताओं, महापुरुषों तथा उस समय के युवराजों के छवि चित्र स्मृति के आधार पर बनाकर ऊषा के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। ऊषा ने स्वप्न में देखे राजकुमार का चित्र पहचान लिया। इस प्रकार व्यक्तिचित्रण की परम्परा प्राचीन काल से मिलती है।[1] किशनगढ़ के प्रारम्भिक चित्रण में मुख्यतः व्यक्तिचित्रण का ही अंकन अधिक मिलता है जो मुगल चित्रकला से सम्बन्ध स्थापित करते हैं।[2] व्यक्ति चित्रों में आकृति को किसी उद्यान या सपाट मैदान में खड़ी मुद्रा में तथा हाथों में कोई पुष्प, प्याला, धनुष या तलवार लिये चित्रित किया जाता था। कभी-कभी भूमि को उभरा हुआ या क्षितिजनुमा दिखाते थे। पृष्ठभूमि या अग्रभूमि में छोटी-छोटी झाड़ियों और घास का अंकन होता था। शाही व्यक्तियों के विशेषकर राजाओं के जो चित्र बने उनमें सिर के पीछे प्रभामण्डल का अंकन देखने में आता है जो सम्भवतः उन्हें साधारण व्यक्तियों से पृथक करने के लिये या श्रद्धा स्वरूप अपने को श्रेष्ठ दिखलाने के लिये बनवाये गये।[3]

चित्र फलक 34 में राजा साहसमल के व्यक्ति चित्र में उन्हें एक हाथ में तलवार तथा एक हाथ में बाज लिये चित्रित किया गया है। अन्य आकृतियों से उनकी महत्ता को दर्शाने के लिये उनके शीश के पीछे हल्के हरे रंग के प्रभामण्डल का अंकन किया गया है इस पर मुगल कला की स्पष्ट छाप मिलती है।[4] राजा सावन्तसिंह का व्यक्ति चित्र (चित्र फलक 72) जो 1745 ई में बनाया गया था में सावन्तसिंह की आयु 46 वर्ष के लगभग प्रदर्शित की गयी है। उस समय प्रचलित परम्परा के अनुसार उन्हें तलवार व ढाल के साथ चित्रित किया है।[5] सिर के पीछे तेज गोलाकार का अंकन है। पृष्ठभूमि में बांयी तरफ भवन का थोड़ा सा हिस्सा दिखायी दे रहा है जिसमें बाल्कनी में बणीठणी को किशनगढ़ की नायिका के रूप में उसका इंतजार करते हुये दिखाया गया है। दांयी तरफ झील तथा उसमें तैरती हुयी नावों का अंकन है। चित्र फलक 80 में महाराजा रूपसिंह का कल्याण राय के दर्शन हेतु जाते चित्रित किया गया है। उनकी वेशभूषा भी अन्य राजाओं जैसी चित्रित है। चित्र फलक 103 में एक राजपूत राजकुमार का चित्रण है जो अपूर्ण है। राजकुमार को इस चित्र में पीले साफे में चित्रित किया गया है[6]। सम्भवतः यह चित्र सीताराम द्वारा बनाया गया है। निश्चित रूप से यह चित्रकार कुशल रेखाकार भी था। सौम्य मुखाकृति एवं लम्बी भुजाओं का चित्रण कलाकार ने बड़ी ही संवेदनशीलता के साथ किया है, बड़ी व आकर्षक गोल आखें किशनगढ़ शैली की विशेषताओं के ही अनुसार है। इन व्यक्तिचित्रों के अतिरिक्त सेनापति, सामन्तों तथा साधारण जन के व्यक्तिचित्र प्राप्त होते हैं।[7] (चित्र फलक 91)

---

1 प्रेमशंकर द्विवेदी - *भारतीय चित्रकला में व्यक्ति चित्रण*, पृ0 12

2 वही, पृ0 50

3 बी.एल. वर्मा - *कोटाभित्ति चित्रांकन परम्परा*, पृ0 50

4 Dr. Sumhendra - *Splendid Style of Kishangarh*, P. 20

5 M. S. Randhwa - *Kishangarh Painting*, P. 9

6 Pratapaditya Pal - *The Classical Tradition In Rajput Painting*, P. 46

7 वही, पृ0 46

चित्र फलक- 67 में आनन्द सिंह व जोसीस्यामा को चित्रित किया गया है। इस चित्र में वे दोनों एक छज्जे में आमने-सामने बैठे हुये हैं। दाहिनी ओर आनन्द सिंह को जो कि अपेक्षाकृत मोटापा लिये हुये हैं श्वेत वस्त्र धारण किये हुये तथा हाथ में माला जपते दिखाया गया है। उन्हें अपने साथी को चुनौती देने की मुद्रा में चित्रित किया गया है। जोसीस्यामा को आयुधों से लैस दिखाया गया है। बांयी ओर दो व्यक्तियों की आकृति दृष्टिगोचर होती है जो कि हाथों में तलवार लिये हुये हैं। क्षितिज में एक ऊँट को तेजी गति से दौड़ते हुये चित्रित किया गया है। चित्र में श्वेत नीले रंग का प्रयोग प्रमुखता से हुआ है।[1]

नारी चित्रण

आदिकाल से ही नारी पुरुष के लिये सबसे प्रभावशाली आकर्षण का केन्द्र रही है। एक ओर पुरुष की जन्मदात्री होने का गरिमामय व्यक्तित्व और दूसरी ओर प्रेयसी व अर्द्धांगिनी के रूप में सुख-दुख का साथी बन जीवन सहचरी का आदर्श रूप नारी को प्राप्त हुआ, किन्तु पुरुष की आदिम प्रवृत्ति ने नारी के भोग्या रूप को ही बनाये रखा।[2] दूसरी ओर कलाकारों ने नारी सौन्दर्य से प्रेरणा पाकर महान कलाकृतियों का सृजन किया। भौतिक रूप से इन चित्रों की विषय वस्तु नारी शरीर को ही केन्द्र बनाकर इसी के इर्द गिर्द घूमती रही और दरबारी लोग शरीर सौन्दर्य के भौतिक कलेवर में अपनी तुष्टि करते रहे। किन्तु किशनगढ़ कलाकार उस जगत से ऊपर उठकर परम सौन्दर्य साधक बना। स्त्री सौन्दर्य स्वयं में एक कला है। इस कला को कलाकारों ने बड़ी कुशलता से विभिन्न रूपों में प्रदर्शित किया है, जिसका पहला स्वरूप व्यक्तिचित्रण है।[3] इसके अतिरिक्त कलाकार ने अपनी कल्पना को पुट देकर स्त्री को विभिन्न स्वरूपो मे रुपायित किया है। कलाकारों ने रागमालाओं और प्रेम सम्बन्धी चित्रावलियों में स्त्री को काल्पनिक रूप में प्रदर्शित किया है। उद्यानों या शयन कक्षों में प्रणयी युगल के मिलन आदि की नितान्त व्यक्तिगत घटनाओं के दृश्यों को भी उकेरा है। इसके अतिरिक्त नृत्य, वाद्य, गायन, मदिरा पान करते आदि स्त्रियों के दृश्य भी बनाये गये हैं। यहां कलाकारों ने स्त्री के सौन्दर्य व आकर्षण को विशेष महत्व दिया है।[4] स्त्रियों को लजीली व सजीली अंकित किया तथा उसके सौन्दर्य को विभिन्न प्रकार से परखा व चित्रित किया।[5] उनके चित्रों में स्त्री चरित्र कोमल, लावण्यमय व मदिरा सदृश पारदर्शी रंगत वाले हैं। इनमें मुख्यतः नवयौवनाओं का ही चित्रण अधिक मिलता है। बालिकाओं तथा वृद्धाओं का अभाव है। यदि कहीं कोई बालिका या वृद्धा चित्रित की गयी है तो प्रमुख आकृति का रूप नहीं ले सकी।[6] इसका प्रमुख कारण यही है कि किशनगढ़ शैली की विषयवस्तु मुख्यतः प्रेम पर ही आधारित थी।[7] जिससे प्रेम सम्बन्धी दृश्यों का ही अंकन विशेष रूप से हुआ है। राधा का चित्र (चित्र फलक 30) जो निहालचन्द द्वारा चित्रित है जो बनीठनी के रूप में जगत प्रसिद्ध है।

---

1 *Indian Miniature Painting*, Ehrenfield Collection, P. 71
2 बी.एन. वर्मा - *कोटाभित्ति चित्रांकन परम्परा*, पृ० 50
3 वहीं, पृ० 51
4 W.G. Archer- *Romance & Poetry in Indian Painting* P. 40
5 प्रभुदयाल मित्तल - *ब्रज की कलाओं का इतिहास*, पृ० 55
6 बी. एम. दिवाकर - *राजस्थान का इतिहास*, पृ० 360
7 A. K. Swamy - *Rajput Painting*, P. 4

नारी सौन्दर्य चित्रण में विशेष महत्त्व रखती है। नारी सौन्दर्य की यह सर्वोत्तम व निर्दोष अभिव्यक्ति मुखाकृति का सर्वोच्च प्रतिमान है।[1] चित्र फलक 62 में स्त्री के चित्रण में काफी बारीक कार्य हुआ है। चित्र में हल्के रंगों का प्रयोग किया गया है जो केवल होठों, आभूषणों तथा केश में लगे फूलों तक ही सीमित है। नेत्रों में स्पष्ट रूप से किशनगढ़ शैली की ही छाप है। वस्तुतः इस तरह के खिंचे हुये नेत्र कई भारतीय चित्रशैलियों में देखने को मिलते हैं।[2] परन्तु किशनगढ़ शैली में नेत्रों को काफी बढ़ा-चढ़ाकर दर्शाया गया है। यह रेखाचित्र मुगलशैली से प्रभावित है। चित्र फलक 61 राधा का व्यक्तिचित्र, जो अट्ठारहवीं शती के मध्य चित्रित हुआ है, में उसके नेत्र की सुन्दरता की तुलना कमल से की गयी है।[3] लम्बी नासिका, नाक में नथ, पतले लाल होंठ, कानों में जड़ाऊ झुमके तथा माथे पर बेंदा राधा के सौन्दर्य को और अधिक बढ़ा रहा है।

किशनगढ़ शैली की नायिकाओं के विभिन्न चित्र प्राप्त होते हैं। चित्र फलक 11 में राधा के रूप में चित्रित एक नवयुवती बालकनी में बैठी है। निहालचन्द के कार्यशैली की विशेषता इस चित्र में परिलक्षित होती है।[4] इसमें राधा की मुखाकृति लम्बी, ऊँचा माथा, कमानीदार भौहे, कमल जैसे नेत्र, पतले होंठ तथा नुकीले चिबुक का अंकन हुआ है। राधा को विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित किया गया है। चित्र फलक 44 में नायिका को झील के मध्य चित्रित किया गया जो कमल पुष्पों को तोड़ रही है। दूर झील के पास शहर बसा हुआ दिखायी दे रहा है। चित्र फलक 45 में नायिका राजकुमार का चित्र बनाने में लीन है। चित्र फलक 47 में नायिका को प्रेमी के प्रतीक के रूप में हिरण के साथ चित्रित किया है। इन सभी चित्रों में नायिकाओं की भाव भंगिमायें, नेत्रों का तीखापन, खुले घुँघराले बाल जो पारदर्शी दुपट्टे के नीचे लहराते हुये चित्रित है। इसके अतिरिक्त श्रृंगार करती हुयी स्त्रियों के चित्र भी इस शैली में मिलते हैं। चित्र फलक 48 में राधा अपनी सखियों के साथ प्रसाधन गृह में चित्रित हैं। एक दासी राधा के पैरों में आलता लगा रही है। राधा के सामने एक मोर चित्रित है जो उसकी सुन्दरता को निहार रहा है। मोर की उपस्थिति को कृष्ण के प्रतीक रूप में चित्रित किया गया है।[5] पृष्ठभूमि तथा अग्रभूमि में कमल के फूलों से युक्त झील दिखायी गयी है। पहाड़ी पर कई मंदिरों का होना इस चित्र को वृन्दावन से जोड़ता है। चित्र फलक 46 तथा 60 में भी नायिकाओं को श्रृंगार के परिप्रेक्ष्य के ही रूप में चित्रित किया गया है। किशनगढ़ के चित्रों में नायिका राधा तथा बणीठणी के अलावा अन्य स्त्रियों के चित्र भी प्राप्त होते है। चित्र फलक 14, 17, 100 इत्यादि।

उपरोक्त चित्रों से यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है कि नारी चित्रण का अंकन कभी भी गृहस्थ की परिधि में नहीं हुआ है। चित्रों में नारी को चित्रित करने का उद्देश्य सज्जा तथा नेत्र सुख की प्रमुखता है, जिसने आश्रयदाताओं व चित्रकारों को प्रेरित किया। नारी को केवल सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति मानकर उसे चित्रित किया गया है। धार्मिक चित्रों में नारी चित्रण के अतिरिक्त नारी को सर्वत्र भोग्या रूप में ही प्रस्तुत किया गया है।

---

1 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 27

2 *Indian Miniature Painting*, Ehrenfield Collection, P. 150

3 Hilde Bach - *Indian Painting*, P. 83

4 M. S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 49

5 वहीं, पृ० 50

प्रेम मानव हृदय का कोमल भाव है जो सदा हृदय में शोभायमान रहता है। चित्रकार इस आकर्षण को जो अमूर्त भाव के रूप में हृदय में विद्यमान रहता है, को तूलिका द्वारा मूर्त्तरूप प्रदान करने का प्रयास करता है[1] और अपनी कल्पनाशीलता से सजीव बना देता है। किशनगढ़ के चित्रकार प्रेमाभिव्यक्ति को चित्रित करने में अत्यन्त सिद्धहस्त थे।

श्रृंगार विषयक चित्रों की प्रत्येक वस्तु प्रेम-सुरभि से सुरभित दिखायी देती है।[2] चित्र में एक-एक कण मानो प्रेम की भाषा बोलता सा प्रतीत होता है। चित्रकारों ने श्रृंगार विषयक चित्रों के सृजन में विशेष रुचि प्रदर्शित की है। अपने आश्रयदाताओं राजाओं के मनोभावों को अपनी कल्पना से साकार कर रस सिंचित किया व उसमें गति व लय का समावेश किया। इस समय काव्य तथा साहित्य के आधार पर राजस्थान की लगभग सभी चित्रशैलियों में चित्रों का निर्माण मिलता है। रीतिकालीन साहित्य, गीतगोविन्द, भागवतपुराण आदि पर अनेक चित्रों का निर्माण हुआ।[3] स्वयं सावन्तसिंह जिनका 69 ग्रन्थों का सम्पादित संकलन 'नागरसमुच्चय' के नाम से प्रकाशित है। इस ग्रन्थ की श्रृंगारपरक रचनाओं का अत्यन्त कलात्मक चित्रण निहालचन्द द्वारा किया गया है जो राधा-कृष्ण प्रेमलीला पर ही आधारित है। इसमें मानवीय प्रेम का धार्मिकीकरण कर दिया गया है। वहां आन्तरिक तथा वाह्य अन्तः करण में स्थित क्षुद्र भावनाओं का कोई स्थान नहीं रहा है। प्रेम के इस अलौकिक अनुभव को भारतीय काव्य में राधा के रूप में जो कि गोपियों की नायिका थी तथा कृष्ण भगवान से प्रेम करती थी, के रूप में अभिव्यक्त किया है।[4] एक नृत्य करने वाली लड़की राधा जो उनकी प्रेमिका थी। उसी में उनकी सम्पूर्ण संवेदनायें निहित थी। कृष्ण परमात्मा थे तो राधा उनसे प्रेम करने वाली मानवीय आत्मा थी। कृष्ण की प्रेमलीलाओं ने न केवल काव्य को विषय प्रदान किया वरन् चित्र कला को भी प्रेरणा दी। इस तरह के श्रृंगार विषयक राधा कृष्ण के चित्रों का निर्माण सावन्तसिंह के काल में अधिक हुआ। कलाकारों ने राधा व कृष्ण को तत्कालीन प्रेमी, प्रेमिका का रूप देने का प्रयास किया।[5] स्वयं सावन्तसिंह के ग्रन्थ नागरसमुच्चय के आधार पर कलाकारों ने अनेकों श्रृंगारिक रचनायें की हैं। नागरीदास ने स्वयं को 'कृष्ण' तथा प्रेमिका बणीठणी को 'राधा' के रूप में मानकर प्रेम की अभिव्यक्ति की तथा असंख्य चित्रों का निर्माण कराया। जिसमें प्रेम का उत्कृष्ट भाव दिखायी पड़ता है उसमें कहीं भी अश्लीलता या दैहिक आकर्षण का भाव दृष्टिगत नहीं होता है। चित्र फलक 1, 26, 27, 35, 39, 55 इत्यादि।

प्रणय गाथाओं के चित्रों में मिलन विछोह का अंकन कथानुरूप किया गया सामान्यतः श्रृंगारिक चित्रों में नायिका भेद के अलावा प्रेम के छोटे-छोटे आयामों रूठना, मनाना, प्रायश्चित करना, क्रीड़ायें, प्रिय मिलन की उद्विग्नता, प्रेम की संतुष्टि आदि भावों को व्यक्त किया गया है। चित्रों में राधा कृष्ण का चित्रण मुख्यतः नायक-नायिका के रूप में हुआ है।[6] राधा को कहीं मानिनी तो कहीं मुग्धा के रूप में चित्रित किया गया है। श्रृंगार के

---

1 W.G. Archer-*Romance & Potery in Indian Art.*

2 दयाकृष्ण विजयवर्गीय - *राजस्थान काव्य में श्रृंगार भावना,* पृ0 35

3 *राजस्थान वैभव श्री रामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ,* प्रेमचन्द गोस्वामी- किशनगढ़ शैली पृ0 96

4 Hilde Bach - *Indian Love Painting,* P. 82

5 अविनाश बहादुर वर्मा - *भारतीय चित्रकला का इतिहास,* पृ0 209

6 सन्ध्या श्रीवास्तव- *राजस्थानी चित्रशैलियों में कृष्ण के विविध स्वरूपों का चित्रण,* पृ0 28

दूसरे पक्ष अर्थात् वियोग से सम्बन्धित चित्रों का अंकन इस शैली में प्रायः नहीं मिलता है।[1] इस समय राधा कृष्ण के युगल रूप का जो चित्रण कार्य हुआ, वह परवर्ती किशनगढ़ चित्रशैली का आधार बना। इसके अलावा वैभव विलास तथा अन्य स्वच्छन्द श्रृंगारिक भाव शैली चित्रण का आधार रहे हैं।[2]

प्रेमी-प्रेमिकाओं के चित्र किशनगढ़ शैली में अपने ही ढंग से बनाये गये हैं। प्रायः नायक तथा नायिकाओं को सुन्दर नौकाओं में जल विहार करते दिखाया गया है। चित्र फलक 35, 38 आदि इसके सुन्दर उदाहरण हैं। नौका विहार सम्बन्धी चित्र राजस्थान में अन्यत्र नहीं प्राप्त होते हैं।[3] चित्रकारों ने प्रेमी-प्रेमिकाओं की रतिक्रीड़ा में विशेष रुचि ली है। उनके मिलनस्थली के लिये कुंजों तथा लतिकाओं के झुरमुट या सघन वृक्षों से आच्छादित पीठिकाओं तथा भवनों का अंकन किया। चित्र फलक 26, 35, 38, 39, 49 आदि। 'बणीठणी तथा कवि युवराज' (चित्र फलक 28) नामक चित्र में वैष्णव धर्म की अवधारणाओं को चित्रित किया गया है। प्रेम के अमरत्व, उच्चता, दार्शनिकता, तथा माधुर्यता का जो समावेश किशनगढ़ शैली के चित्रकारों द्वारा अभिव्यंजित हुआ है उसे प्राप्त करने में मुगल कलाकारों की धनाढ्य समृद्धता व अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता भी सफल नहीं हो सकी।[4]

किशनगढ़ के चित्रों में आध्यात्मिक विषय वस्तु के रूप में मानवीय प्रेम के राग-विराग राधाकृष्ण के कथानकों के प्रेम पर आधारित अभिव्यंजित हुये हैं।[5] प्रेम की यह अवधारणा देश, सीमा से बद्ध न होकर पूर्ण सांसारिक प्रत्येक मानव मन की अन्तरतम अवधारणा है। किशनगढ़ के चित्रकारों ने भावना को नायक-नायिकाओं के माध्यम से जनगण तक अनुभूतगम्य बनाया। इसी विषय-वस्तु से ओतप्रोत ताम्बूल सेवा (चित्रफलक 32), नामक चित्र में नदी के किनारे दरबारी तख्त पर आसीन आध्यात्मिक प्रेमीयुगल को आपस में पान देते हुये चित्रित किया गया है जो उस समय प्रेम की प्रचलित कथानक दिनचर्या का एक अंग था। वृन्दावन के वातावरण के अनुरूप गोप-गोपिकायें प्रेमी युगल के आस-पास आध्यात्मिक भावों से रत हैं। गोप वीणावादन करते हुये ग्राम्य वातावरण के साथ-साथ इस कृष्णीय कथानक को अधिक मधुरिमा प्रदान कर रहे हैं। प्रत्येक की भंगिमा में नीलवर्ण कृष्ण के प्रति एक आदर भाव सा दिखायी देता है। प्रेम का आध्यात्मिक भाव श्रद्धा, शक्ति तथा वैष्णव कथानक का मर्म था। यही भक्तिभाव चित्रों में पूर्णरूपेण अभिव्यंजित हुआ।[6]

यद्यपि किशनगढ़ शैली में श्रृंगारिक दृश्यों का अंकन तो बहुलता से हुआ परन्तु रागमाला पर चित्र देखने को नहीं मिलते हैं। इस प्रकार सामान्य स्त्री-पुरुष के प्रसंगों को लेकर राधा व कृष्ण के परमार्थिक और मानवेतर प्रेम को किशनगढ़ के कलाकारों ने बड़ी कुशलता से रूपायित किया है। उन्होंने प्रकृति से प्रेरणा लेकर चित्रों में पृष्ठभूमि का अंकन किया। राधा-कृष्ण के माध्यम से श्रृंगार के विभिन्न रूप को प्रदर्शित किया। संयोग-वियोग के चित्रों की रचना कर मानव हृदय की वीणा को झंकृत किया।

---

1 M. Bussagle- *Indian Miniature*, P. 44
2 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 44
3 गोपीनाथ शर्मा - *चित्रकला और राजस्थान, शोधपत्रिका*, भाग-1, अंक 3-4
4 G. N. Sharma - *Mewar and The Mughal Emperor*, P. 46
5 Philip S. Rawson - *Indian Painting*, P. 35
6 Karl Khandelwala - *Pahari Miniature*, P. 21

वास्तव में ये चित्र राजस्थान की तमाम शैलियों में व्यापक रस सिंचित और प्रेम के विशाल स्वरूप को प्रदर्शित करने वाले थे।[1] इस विषय से सम्बन्धित जितने भी चित्र बनाये गये उनमें प्रेम की अनुभूति और सशक्त अभिव्यक्ति सर्वत्र हुयी है।

- अन्य

किशनगढ़ शैली की विषयवस्तु विशेषतया राधा-कृष्ण लीला से ही सम्बन्धित है और जन सामान्य से सम्बन्धित विषयों का अंकन बहुत कम हुआ है। फिर भी छिट पुट चित्र देखने को मिलते हैं। चित्र फलक 75 में एक मोटे विक्रेता को वृक्ष के नीचे शाक भाजी तथा अन्य वस्तुयें साधुओं को वितरित करते हुये चित्रित किया गया है। एक साधु अपना हिस्सा लेते दृष्टिगत हो गया है जबकि दूसरे अन्य कार्यकलापों में व्यस्त हैं। दो साधु खाना पका रहे हैं, दो खाने की सामग्री जुटाते चित्रित हैं। दो साधु विश्राम करते दिखायी दे रहे हैं। एक साधु पालथी मारे बैठा खाना पकाते देख रहा है। उस विक्रेता का नाम चित्र में 'शाहजी मूलकदासजी सदावृति' अंकित है। चित्र की पृष्ठभूमि में मटमैले पीले रंग की एकवर्णीय तान का प्रयोग है तथा आसमान को हल्के नीले रंग से चित्रित किया है।[2] इसके अलावा एक 'कबीलाई स्त्री' (चित्र फलक 94) का चित्रण मिलता है जो एक हाथ में छोटा जानवर पकड़े है और दूसरे हाथ में अपने बच्चे को गोद लिये हुये है। चित्र फलक 6 में एक सन्त को राजा से बात करते हुये दिखाया गया है। सन्त सोने के सिंहासन पर बैठा हुआ है जो पूर्णरूप से निर्वस्त्र है। सन्त के समक्ष राजा अन्य विद्वानों के साथ भूमि में बैठे हुये हैं। वे जीवन दर्शन के सन्दर्भ में विचार विमर्श कर रहे हैं। चित्र का प्रत्येक चरित्र एवं व्यक्तित्व यथार्थता के साथ चित्रित है।[3]

चित्र फलक 22 मे स्वामी श्री शुकदेवजी महाराजा परिक्षित को पुनः ताज धारण करने की दीक्षा दे रहे हैं। जो अपना राज पाट त्याग कर भिक्षुक बनने आये हैं। राजा अपने बहुत से अनुयायियों के साथ मुनि के सामने बैठे हैं। मुनि के सिर के पीछे आभा मण्डल का अंकन है। वह पूर्णतया नग्न हैं। जैसा कि जैन धर्म के दिगम्बर सम्प्रदाय में इसका प्रचलन था।[4] राजा के दाहिनी तरफ एक संगीतकार वीणा बजा रहा है। चित्र की पृष्ठभूमि में प्राकृतिक दृश्य के रूप मे झील तथा पहाड़ियों का अंकन किया गया है। जिस पर औरंगजेबकालीन मुगल शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है। इस प्रकार यद्यपि किशनगढ़ शैली में विभिन्न चित्रों का निर्माण हुआ है परन्तु सबसे अधिक व उत्कृष्ट कोटि के चित्रो में राधा कृष्ण की श्रृंगारिक रचनायें ही आती हैं। जिनका सबसे अधिक निर्माण सावन्तसिंह के काल में तथा चित्रकार निहालचन्द द्वारा हुआ है।

1 Karl Khandelwala - *Pahari Miniature*, P. 21
2 M.S. Randhawa - *Indian Miniature Painting*, P. 64
3 Francis Brunel - *Splendour of Indian Miniature*, P. 40
4 M.M. Deneck - *Indian Art*, P. 42

रंगयोजना

किसी भी चित्रकार के लिये रंग एक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण कला तत्व होता है। इसका चित्रों मे समुचित उपयोग करने की प्रक्रिया कठिन होती है क्योंकि वह चित्र में सन्तुलन, अनुपात, लय, गति और संगीत आदि को नियन्त्रित करता है परन्तु सार्थक स्वरूप की उत्पत्ति में वर्ण का महत्वपूर्ण योगदान होता है। दर्शक की दृष्टि में भी रंग का विशेष महत्व होता है क्योंकि वह सीधा मन-मस्तिष्क पर प्रतिक्रिया करता है।[1] वस्तुतः रंगो का मनोविज्ञान से गहरा सम्बन्ध है। एक मनोवैज्ञानिक रंगो को इस दृष्टि से देखता है कि नेत्र उन्हें किस प्रकार से ग्रहण करते हैं और उसके माध्यम से मन कैसे स्पन्दित होता है। रंगों का संसार अपने आप में बहुत व्यापक एवं विस्तृत है। यह वस्तु सत्ता के रूप में नहीं अपितु मन पर आंखों के माध्यम से प्रत्युत्पन्न प्रक्रिया के कारण अनुभूत होती है।[2]

रंगों द्वारा विभिन्न प्रकार की रेखाओं रूप आकार का सृजन होता है। काव्य तथा चित्रकला में रेखांकन द्वारा कलाकार मुख्य रूप से आकार चित्रण तथा वस्तु चित्रण कर वाह्य ढांचा खड़ा करता है तथा रंग उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कर सुसज्जित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[3] चित्रों में ऐन्द्रियता का अनुभव रंग योजना द्वारा ही होता है क्योंकि वर्णयुक्त चित्रो से परिष्कृत एवं रुचि सम्पन्न दर्शक एक प्रकार का रोमांच सा अनुभव करता है।[4] यही रोमांच कला का सौन्दर्य तत्व है। भारतीय कला परम्परा में चित्र संयोजन के कई सिद्धान्त निर्धारित किये गये हैं जिसमें से वर्ण एक है जो चित्र को परखने की कसौटी भी है।[5] प्राचीन काल में आचार्यों ने स्वभाव व मनः स्थितियों के निश्चित रंग माने हैं।[6] भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में चार रंगों को महत्वपूर्ण माना है।[7] सफेद, लाल, पीला और नीला। इनके मिश्रण से ही अनेक रंगों का निर्माण होता है जिनकी निर्माण विधि की चर्चा भी ग्रन्थों मे मिलती है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण के चित्रसूत्रम अध्याय में पांच प्रकार के प्रमुख रंग बताये गये हैं।[8] श्वेत, पीत, विलोम, कृष्ण और नील-

> ''मूलरंगाः स्मृताः पंच श्वेतः पीतो विलोमतः
> कृष्णो नीलश्च राजेन्द्र शतशोऽन्तराः स्मृताः।''

अर्थात जहां अभिनय में लाल और हरे रंग को मूल रंग माना गया है। वहां चित्र में विलोम और नील को इनके स्थान पर मूल रंग माना गया है। इन पांच मूल रंगों के पारस्परिक मिश्रण से सैकडों मिश्रित रंग बनते हैं। वर्तमान में किसी भी मिश्रण से प्राप्त न होने वाले रंगो को मुख्य रंगो मे रखा गया है। ये मुख्य रंग है-लाल, पीला, नीला[9] जिनकी मान्यता ओस्टवाल्ड के द्वारा भी प्रतिपादित की गई है। इन रंगों के आपस में मिश्रण से

---

1 M.Gravej - *The Art of Colours & Design*, P. 270
2 डा. श्याम परमार - *हिन्दी काव्य में रंगतत्व तथा आलोचना*, पृ0 51
3 वही, पृ0 51
4 डा. जयसिंह नीरज-पृ0 146
5 राय कृष्णदास - *भारतीय चित्रकला*, पृ0 34
6 वाचस्पति गैरोला - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 55
7 भरत मुनि - *नाट्यशास्त्र*, अध्याय 21
8 वीणा अग्रवाल - *विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला*, पृ0 20
9 रामचन्द्र शुक्ला - *चित्रकला का रसास्वादन*, पृ0 84

प्राप्त होने वाले रंगो को द्वितीय रगों में रखा गया है। इनके मिश्रण से प्राप्त होने वाली रंगों को समीपवर्ती रंगो मे रखा गया है।[1]

जिस प्रकार संगीत में स्वर होते हैं और उन स्वरों के उच्चारण को शुद्धभाव के साथ लयपूर्वक गाया जाता है। उसी प्रकार चित्रों में रंगों की गहरी व हल्की तानों द्वारा चित्रों में सांगीतिक लय को चित्रित किया जाता है । रंग ही उसके मूक भाव द्वारा दर्शकों से संवाद करते है। रंगों पर ई.वी. हैवेल की टिप्पणी अत्यन्त रोचक प्रतीत होती है[2], जिस प्रकार भारतीय संगीत लयात्मकता सम्बन्धी उलझन नहीं बल्कि उसमें वेगयुक्त स्वर माधुर्य का सूक्ष्मतापूर्ण प्रवाह है। उसी प्रकार चित्रकला में भी भारतीय कलाकार गहरे टूटे हुये रंगों का उपयोग नहीं करता। वह तो संगीत की पूर्ण सधी हुयी ताल के द्वारा प्रकाश और वातावरण का प्रभाव उत्पन्न करता है। किशनगढ़ के चित्रों में भी रंगों की सार्थकता को समझने में भावों के साथ इनका सम्बन्ध महत्वपूर्ण है। चित्रों में रंगों की विविधता लयात्मक सूक्ष्मता के साथ परिलक्षित होती है।

किशनगढ़ के कलाकारो ने चित्रों में रंगों को अपनी विशेष शैली के अनुरूप ही सृजित किया है। चित्रकारों ने अपने मनोभावों को विभिन्न रंगों के माध्यम से दर्शक के मन तथा अपने आत्मिक सन्देश के बीच सेतु का रूप दिया है। किशनगढ़ के चित्रकारों ने चित्रों में खिलते रंगों का सुन्दर और सटीक प्रयोग किया है। यद्यपि रंगों के प्रयोग में गहराची उभार या छाया का प्रयोग नहीं है साथ ही रंग एक तार है।[3] किन्तु रंगों का प्रभाव इस प्रकार अभिव्यंजित हुआ कि प्रत्येक वस्तु स्पष्ट हो जाती है और उसका सौन्दर्य क्षीण नहीं होता है। हल्के रंगों का जहाँ प्रयोग है वह स्थान, वस्तु नीरस नहीं प्रतीत होते हैं।[4] वृक्षों के मध्य अंकित लाल, पीले फूल और फल व सितारे वृक्षों के मध्य टंके से प्रतीत होते है। आसमान में भूरे, नीले, पीले, लाल, बैंगनी, हरे विभिन्न रंगों के बादलों से भरा है। ये रंग मिलकर उमड़ती-घुमड़ती घटाओं की रचना करते हैं। रंगों के प्रतीकात्मक प्रयोग से भावाभिव्यक्ति को सहयोग मिला है। दर्शक बिना किसी वर्णन के प्रयुक्त रंगों के माध्यम से चित्र में उपस्थित या व्यक्त किये गये भावों को आसानी से समझ लेता है।

किशनगढ़ के कलाकारों ने चित्रों में निम्न रंगो का प्रयोग किया है[5] -

1 आब रंग - हल्का स्लेटी
2 आसमानी - हल्का नीला
3 बादामी - बादामी गुलाबी
4 रूपा - चाँदी का रंग/रूपहला
5 ईंटई लाल
6 धूम्र-धुयें जैसा रंग
7 गौरी गौर - हल्का पीला/सुनहरा
8 प्योड़ी - गहरा पीला
9 रामरज - यलोऑकर (Yellow ocher)

---

1 M. Gravej - *The Art of Colours & Design*, P. 280
2 E. V. Havell - *The Heritage of India*, P. 94-95
3 C.C. Dutta - *The Culture of India*, P. 160
4 पदमश्री रामगोपाल विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ भाग-2, मोहन लाल गुप्त- *किशनगढ़ चित्र शैली की प्रेरणा*, पृ0 180
5 W. G. - *Archer Indian Collecetion*, P- 21

10 गुलाबी - Rose
11 कारी - काला
12 खाकी - खाकी वफ
13 लाल - सिन्दूरी Crimson
14 नारजी/नौरंगी - नारंगी
15 निल्द - नीला
16 सब्ज/सोजा - हरा
17 हल्का हरा
18 Emerald Green मणिपन्ने वाला हरा रंग
19 तोता हरा रंग Parrot green
20 तरबूजी हरा Melon green
21 गहरा हरा Dark green
22 पिस्ता हरा
23 सुन्द - सुनहरा
24 सुपेद, सुपेदा, 'सपदा, धौले धौली - सफेद
25 बांसती पीला
26 कासनी बैंगनी
27 गहरा बैंगनी
28 हल्का भूरा Light Brown
29 गौर चमकीला रंग Fleon
30 कपूरी सफेद Camphor white

चित्रों में अधिकतर इन्हीं रंगों का प्रयोग मिलता है। आवश्यकतानुसार इसमें गोंद व विभिन्न रंगों का सम्मिश्रण करके हल्के व गहरे रंग के टोन में प्रयुक्त किया है। वास्तव में नागरीदास स्वयं रंगो तथा रंगों के मिश्रण के मामले मे उच्च परिपक्व कलाकार थे। विशेषतया स्वर्णिम रंग और हरे रंग के चित्रण में।[1] उन्हें इस बात का भली-भाँति ज्ञान था कि सतरंगे वातावरण का अंकन करने के लिये किस प्रकार के रंगों की योजना सटीक हो सकती है। उनके काव्यों पर आधारित रेखाचित्र और वर्णचित्र कलाकार निहालचन्द द्वारा बनाये गये हैं जो अत्यधिक भावपरक बन पड़े हैं।[2] नागरीदास का समय किशनगढ़ की चित्रकला का स्वर्णयुग था। उस समय के बने चित्रों में रंगों की आकर्षक योजना मन को मुग्ध कर देने वाली है। जिसका श्रेय नागरीदास के काव्यगत वर्ण चित्रों को जाता है।[3]

चित्रकारों ने विषय की अनुकूलता के आधार के अनुरूप वर्ण संयोजन तथा विरोधी वर्ण संयोजन के आधार पर चित्र रचना की है। वर्ण संयोजन से कलाकारों ने चित्रों को और अधिक प्रभावोत्पादक व संवेदनशील बना दिया है।[5] 'सांझीलीला' नामक चित्र

1 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 8
2 Krishan Chaitanya - *A History of Indian Painting : Rajasthan Tradition*, P. 127
3 डा. फैयाज अली खान - *भक्तवर नागरीदास (अप्रकाशित शोधग्रन्थ)*, पृ0 192
4 R.K. Tondon - *Indian Miniature Painting*, P. 163

में चित्र फलक 33 पृष्ठभूमि में चटक लाल रंग का प्रयोग किया गया है। दानलीला चित्र फलक 17 चित्र में गहरे पीले रंग का प्रभाव अधिक दिखायी पड़ता है। इसके अलावा चित्र फलक 8, 12, 26, 32 आदि में चटक रंगों का ही प्रयोग देखने को मिलता है। कलाकारों ने अपने चित्रों में दो या दो से अधिक रंगों के मिश्रण का प्रयोग भी अत्यन्त आकर्षक ढंग से किया है। सम्मिश्रित रंगों का प्रयोग करने से चित्रों में सहज सौन्दर्य का प्रस्फुटन हो जाता है। इन चित्रों में सम्मिश्रित रंग हल्के धूमिल हैं परन्तु ताजगी लिये हुये हैं जो आज इतने वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी चमकीले प्रतीत होते हैं। चित्र फलक 4, 15, 20, 21, 29, 35, 101 आदि चित्रों में सम्मिश्रित अनुकूल रंग योजना का सुन्दर प्रयोग मिलता है।

यद्यपि इन चित्रों में दोनों तरह के वर्ण संयोजन देखने को मिलते हैं परन्तु चित्रों में रंगों की कोमलता तथा हल्की रंगत के कारण ही अनुरूप वर्णसंयोजन का प्रयोग चित्रों में अधिक मिलता है।[1] रंगो का प्रयोग कलाकारों ने नागरीदास के काव्य से ही ग्रहण किया है। हो सकता है वह आदान-प्रदान पारस्परिक हो। नागरीदास के काव्य में अनुरूप वर्ण संयोजन ही अधिक है इसीलिये यहां चित्रों में वर्णों की अनुरूपता विशेष उल्लेखनीय है। चित्रों में बनी स्लेटी झील उसमें तैरते श्वेत हंस, गेरूये रंग की नौकाओं का सुन्दर अंकन हुआ है।[2] नौकाओं मे सुन्दर तथा सुरूचिपूर्ण वस्त्रों से सुसज्जित प्रेमालाप करते हुये राधा-कृष्ण एक अलग ही आभा प्रस्तुत करते हैं। चित्र फलक 20, 21, 101 आदि

चित्र फलक 15, 29 आदि चित्रों में स्लेटी आसमानी, सफेद रंगों का मिश्रण व कमनीयता दर्शनीय है। इस समय तक मुगल दरबारी संस्कृति से राजस्थान की रियासतों का दरबारी जीवन प्रभावित होने लगा था।[3] मुगल चित्रों में पायी जाने वाली सूफियाना रंगत इन चित्रों में भी देखने को मिलती है। पृष्ठभूमि में वास्तुचित्रण के रूप मे श्वेत रंग का प्रयोग किया गया है जो सम्भवतः संगमरमर का प्रभाव दिखाने के लिये किया गया था। इसके अलावा गुलाबी रंग के प्रयोग का बाहुल्य है।[4] चित्र फलक 2, 4, 11, 29, 39, 49।

किशनगढ़ के प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में अधिकतर हरे रंग की प्रधानता रही है। चित्रकारों ने हरे रंगों के विभिन्न मिश्रण द्वारा चित्र को जीवन्तता प्रदान की है।[5] राधा-कृष्ण की अधिकांश प्रेम लीलायें खुले प्राकृतिक वातावरण या झील के किनारे ही चित्रित हुयी हैं। फूलों के भार से झुके वृक्ष, हरित, पीली भूमि तथा सुवर्ण से आलोपित आकाश चित्रों मे सौन्दर्य के भावों की अभिव्यंजना में रो चार चांद लगाते है। चित्र फलक 3, 22, 32, 38। नौकाविहार नागरीदास का प्रिय विषय रहा है। रूपनगढ़ व किशनगढ़ का प्राकृतिक परिवेश नौकाविहार के चित्रण के लिये विशेष उपयोगी रहे।[6] चित्र फलक 35, 38, 49। प्रकृति के सुरम्य खुले उन्मुक्त रंगीन वातावरण में राधा कृष्ण के नौका विहार के लिये विभिन्न प्रकार का रंगीन वातावरण प्रमुख आधार रहा है[7] -

---

1 P. Pal. S. Markel - *Pleasure Gardens of the Mind,* P. 91

2 डा. फैयाज अली खान - *भक्तवर नागरीदास* (अप्रकाशित शोधग्रन्थ), पृ0 193

3 M. Chandra - *The Technique of Mughal Painting*, P. 40

4 डा. जयसिंह नीरज - *Splendour of Rajasthan Painting,* P. 80

5 Rooplekha, Vol-XXV, Part I, Banerjee - *Kishangarh Painting*, P. 18

6 डा. सुमहेन्द्र - *राजस्थानी रागमाला परम्परा,* पृ0 110

7 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य,* पृ0 52

''वृन्दावन की तलहटी डोले यमुना तीर, जटिल स्वेत नभ नाव पैठि, दोउ सांवल गौर शरीर।''

जिस प्रकार चित्रकारों ने सुन्दर मुखाकृति के अंकन में रुचि ली है, उसी प्रकार गौर वर्ण के प्रति उनका झुकाव प्रतीत होता है। चित्र की नायिका सखियां, बन्धु बांधव यहां तक कि दास-दासियां गौरवर्ण चित्रित किये गये हैं। परिचारिकाओं और सेविकाओं में यदा-कदा कोई सांवली सी सूरत झांक जाती है। चित्र फलक 17 कृष्ण को अन्य लोगो से पृथक करने के लिये नीलवर्ण से चित्रित किया है। गौरवर्ण के अंकन में चित्रकारों ने बहुधा पीतवर्ण का ही प्रयोग किया है।[1] गुलाबी आभा का आभास कम होता प्रतीत होता है। यहां तक कि नायिका के चन्द्रमुख रंग में गुलाबी रंग का अतिसाधारण प्रयोग है और वह भी पीतवर्ण प्रतीत होता है।[2] चित्र फलक 18, 47, 60, 61, 62।

स्त्री-पुरूष की आकृतियों की वेशभूषा तथा अलंकरण के अनुरूप वर्ण संयोजन का पूरा ध्यान कलाकारों ने रखा है। राधा के गौरवर्ण के अनुकूल ही वस्त्राभूषणों में हल्के रंग का प्रयोग दृष्टव्य है। जरीकोर की पारदर्शी चुन्नी, पीत पीताम्बर, चोली, घेरदार विभिन्न रंगों के आलेखन से अंलकृत लंहगा व उसकी किनारी तथा स्वर्णिम वस्त्राभूषणों से उसे सुसज्जित किया गया है। कृष्ण के वस्त्रों में पाग (पगड़ी) 'अलबेले पेचों का लपेटा,' नागरीदास के काव्य व निहालचन्द के चित्रों की विशेष देन है। जिसमें बन्धेज तथा सूफियाना जैसे हल्के रंगों की छटा बड़ी मनोहर है। फेंटे का पीतरंग, रत्नों के पेंच की श्वेत आभा तथा किरण मण्डल का सुनहरा अंकन काव्य तथा चित्रकला में समान रूप से दिखायी पड़ता है।[3] चित्र फलक 15, 18, 50, 55, 64

राधा का गोरा रंग, पतले संवेदनशील होंठ, घनी काली केशराशि, ललाट पर रोली, पावो में महावर, होंठों पर लाली, साड़ी या लहंगे, चोली और आभूषणों से सुसज्जित अंग और इन सब के ऊपर आकर्षक काले नयन राधा के सौन्दर्य को अभूतपूर्व आभा प्रदान करती हैं।[4] चित्र फलक 45, 46, 47, 55। चित्र फलक 98 सद्यः स्नाता नायिका के रूप सौन्दर्य का संवेगात्मक रंगों से ओतप्रोत चित्र है। भीगे बालों से मोती की भांति चमकती जल की बूंदे तथा लाल रंग की साड़ी में लिपटी नायिका की छवि अत्यन्त मोहक है। कृष्ण को नीलवर्ण, पीली धोती, सफेद जामा तथा अलंकृत पीतवर्ण के पटके से चित्रित किया गया है। चित्र फलक 32, 35, 50, 53, 55 आदि।

युवराज तथा शासकों को गौरवर्णीय घेरदार विभिन्न रंगों से अंलकृत जामा तथा विभिन्न रंगो की जूतियों तथा हल्के सफेद रंगो के आभूषण से अंलकृत किया गया। चित्र फलक 24, 34, 72।

---

1 N.C. Mehta & Motichandra - *The Golden Flute - Indian Painting and Poetry,* Lalit Kala Akademi, P. 125.

2 वही, पृ0 156

3 Jameela Brijbhushan - *The World of Indian Miniature Painting,* P. 80

4 Hilde Bach - *Indian Love Painting,* P. 107

किशनगढ़ चित्रों में जहां अनुकूल रंगयोजना का प्रयोग हुआ है वहीं विरोधी रंग संयोजन भी आकर्षक ढंग से किया गया है। रीतिकालीन साहित्य की भाँति राजस्थान के सामन्ती दरबारी जीवन में राधा कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं का प्रभाव अधिक होने के कारण राजा-रानियों, नायक-नायिकाओं, राग-रागनियों, उत्सव, त्यौहारों, जुलूसों, दरबारी चित्रण में विरोधी रंग योजना का खुलकर प्रयोग मिलता है।[1] चित्र फलक 3, 17, 19, 26, 32, 40, 41, 48। नायक को कृष्ण व नायिका को राधा के रूप में चित्रित करने की जो परम्परा चली वह स्वयं विरोधी रंग योजना की प्रतीक है।[2] सांवले नीलवर्ण कृष्ण तथा गोरी राधा जब दोनों गलबाही डालकर चलते हैं तो विरोधी रंगो की छटा खिल उठती है। चित्र फलक 1, 12, 17, 19, 31, 40, 41

राजस्थान के त्यौहार, उत्सव, आदि भी रंगों से भरे होते हैं।[3] इनका चित्रण कवि तथा चित्रकार दोनों ने ही अपने-अपने ढंग से किया है। नागरीदास के दीपोत्सव, सांझीलीला तथा होली के पदों में रंगों की वर्षा सी होती प्रतीत होती है।[4] चित्र फलक 12, 33, 37। दीपावली के चित्रों में वर्ण योजना दर्शनीय है।[5] वसन्त के मादक वातावरण में होली भारतीय जीवन का अत्यधिक रंगीला त्यौहार है। चित्र फलक 12 में राधा कृष्ण व अन्य गोपियां लाल रंग से होली खेल रही है। होली के इस मादक वातावरण में ब्रज का सारा परिवेश मोहक हो गया है। कलाकार निहालचन्द ने अपने स्वामी नागरीदास की कल्पनाओं के अनुरूप रंगों को साकार कर दिया है -

''सुन्दर सुघर स्याम राधा ठकुराइन जू, जोरी जग भूषण सु आनद अगमगी
तारकसी बसन जवाहिर सी जेब लसी बैठ कुरसी पै प्रति नैनन जगमगी
जरवकती समियाने सगे दान किस्त सोच, नागर अगर धूमि धूँधरि रंगमगी
दिपै दीपमाल छवि छूटे आन जन्त्र जाल, अजब जलूस जोति जीनत जगमगी।''

इस प्रकार देखा जाये तो किशनगढ़ के चित्रों में रंगों की अवधारणा पूर्णतः मौलिक है। रंगो के चयन, सम्मिश्रण व ओजस्विता किशनगढ़ के कलाकारों ने पूर्ण तथा मौलिक ढंग से अपनायी है जिसके कारण किशनगढ़ शैली के चित्र राजस्थान की अन्य शैलियों से पूर्णतया विलग हो जाते हैं। किशनगढ़ के चित्रों में मेवाड़ की भांति लोक कलात्मक रंगों का प्रयोग न होकर हल्के संवेगात्मक रंगो का प्रयोग हुआ है। कवि नागरी दास तथा चित्रकार निहालचन्द ने अनुकूल रंग योजना का सुन्दर समन्वय कर भाव व चित्रकला को अत्यन्त आकर्षक बना दिया है। निश्चय ही नागरीदास के वर्ण चित्र अत्यधिक प्रभावशाली हैं जिसके प्रभाव के कारण ही किशनगढ़ की चित्रकला भारतीय चित्र कला में उत्कृष्ट स्थान बना सकी।

---

1 P.Pal - *The Classical Tradition In Rajput Painting*, P. 50
2 राजस्थान वैभव श्री रामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग 2, प्रेमचन्द गोस्वामी *किशनगढ़ शैली* पृ097
3 *राजस्थान की लघुचित्र शैलियां*, ललितकला अकादमी, पृ0 50
4 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 69
5 वही, पृ0 40

चित्र कोई भी हो प्रत्येक चित्र में रेखा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वह रेखा ही है जो चित्र को वाहय आकार प्रदान करती है । यह चित्र का वह तत्व है जो चित्रकार की सृजनात्मक प्रवृत्ति के निपुण होने का प्रमाण देती है।[1] रेखायें चित्रकार की आन्तरिक भावनाओं को अभिव्यक्त करती हैं। रेखायें चित्रों में उसी तरह हैं जैसे मानव शरीर के लिये अस्थियों का ढांचा। रेखा के बिना कोई आकार या बिम्ब चित्र में उकेरना असम्भव सा है।[2] रेखा द्वारा रूप या आकृति की रचना होती है। यह कार्य इसके द्वारा जितनी सफलता से होता है, रंग द्वारा नहीं हो सकता है।[3] रेखा को चित्रकला का आभूषण माना गया है।[4] -

> ''रेखा च वर्तना चैव भूषणम वर्णमेवच
> विज्ञेय मनुज श्रेष्ठ चित्रकर्म सु भूषणम।''
>
> 10/41

साधारणतया दो बिन्दुओं को परस्पर मिलाने से रेखा की रचना होती है। रेखाये सीधी, घुमावदार, लचीली, लयात्मक, प्रवाहपूर्ण आदि कई प्रकार की होती हैं। जिनके भिन्न-भिन्न प्रयोगों से चित्रफलक पर आकार उभरते हैं। इन रेखाओं के प्रयोग से पर्वत, वृक्ष, पुष्प-पत्तियों एवं मानवाकृतियों का अंकन होता है। रेखा द्वारा आकृति की गतिशीलता का आभास मिलता है। रेखायें भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं। गत्यात्मक सौन्दर्य को प्रस्तुत करने वाली वेगवती रेखायें जो कलाकार की तूलिका प्रक्षेप की एक भंगिमा मात्र होती हैं। वस्त्रों को फहराती हुयी विद्युत विलासवाहिनी के समान संकेतों को उकेरती जाती हैं। गोलाकार और लयबद्ध रेखायें यहाँ कोमलता एवं सौन्दर्य की सृष्टि करती हैं, वहीं सीधी रेखायें आदेश संकेत दृढ़ता आदि का बोध कराती हैं। नर्तकी के पैरों की मुद्रा, हाथों की उंगलियों की भंगिमा, सांकेतिक भाषा में वार्ता करते हुये नेत्रों के कटाव और भ्रू की भंगिमा, हल्की स्मित में तिरछे अधरोष्ट, नदियों की लयात्मक गतिशीलता, पर्वतों की क्रमबद्धता इत्यादि सभी कुछ कुशल रेखाओं पर निर्भर करता है।

अलौकिक किशनगढ़ के चित्रकारों ने अदृश्य शक्तियों और अपने मनन में आये विचारों को रेखा के माध्यम से उसे आकार, स्वरूप प्रदान किया है। एक समर्पित चित्रकार आकार रूप को स्पष्ट करने के लिये बारीक घुमावदार कलापूर्ण रेखाओं के प्रयोग द्वारा उसकी इस प्रकार अभिव्यक्ति करता है कि वह कलाकार की बिना शब्दों के कहीं अलौकिक शक्ति का वर्णन प्रतीत होता है। चित्रकारों ने रेखाओं को आकार रूप देने के लिये ही इसका प्रयोग नहीं किया वरन् गति के साथ घनत्व दर्शाने के लिये भी उसका अवलम्बन लिया है। रेखांकन के बारे में राजस्थान में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है [5] -

> ''हाथी हाथ और घोड़ा
> बाकी चित्रा मैं सब थोड़ा-थोड़ा।''

---

1 वाचस्पति गैरोला - *भारतीय चित्रकला*, पृ0 49
2 Fisher & Kiran - *The Design Continuem*, P. 7
3 रामचन्द्र शुक्ल - *चित्रकला का रसास्वादन*, पृ0 92
4 वीणा अग्रवाल - *विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला*, पृ0 16
5 पद्मश्री चित्रकार *कृपालसिंह के अनुसार*

प्रत्येक कला में आकारजनिका रेखा की मूलतः आवश्यकता होती है। उसी के विधान पर कला का सौष्ठव निर्भर है। इस कारण चित्रसूत्र में कहा गया है[1] -

> ''रेखा प्रशंसन्त्याचार्या वर्तना च विचक्षणः''
> स्त्रियो भूषणमिच्छतिः वर्णाढय मितरेजनः

अर्थात वर्ण, रेखा, वर्तना और अलंकरण इन चारों से चित्र का स्वरूप निष्पन्न होता है। इनमें भी रेखा मुख्य है। चित्रविधा के आचार्य चित्र की प्रशंसा में रेखा के प्रधान गुण मानते हैं।

वास्तव में यदि भारतीय चित्रकला में रेखाओं का कौशल यदि कहीं दिखायी पड़ता है तो वह अजन्ता की चित्रकला[1] और अजन्ता की इस परम्परा का निर्वाह करने वाली राजस्थानी शैली के चित्रों में रेखांकन का प्रयोग बड़ा ही लयात्मक, प्रवाहपूर्ण और सधा हुआ है।[2] रेखाओं की आकृतिमूलक रचनाओं से राजस्थानी शैली के चित्रों में घटनाओं का चित्रण, परिस्थिति, वातावरण तथा रूप का अंकन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसलिये किशनगढ़ शैली के चित्रों में कृष्ण लीलाओं से सम्बन्धित उन स्थलों का जो घटना रूप और वातावरण के चित्रण के लिये अधिक उपयोगी रहे हैं, का मुख्य रूप से चित्रण हुआ है। वास्तव में यदि हम किशनगढ़ के चित्रों पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि यहां के कलाकारों को कृष्णलीला से सम्बन्धित विषयों के अंकन में ही विशेष आधारभूमि प्राप्त हुयी है।[4] कृष्ण के रूप तथा उनकी प्रेमलीलाओं की सौन्दर्यानुभूति बड़े ही कोमल तथा भावनात्मक रूप में साकार हुयी है।

यहां के चित्रों में रेखाओं में गति व लय का प्रवाह दृष्टिगोचर होता है, जिसे कलाकारों ने सुदृढ़ रेखाओं द्वारा अभिव्यंजित किया है।

1 वाचस्पति गैरोला - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ० 18
2 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ० 114
3 वहीं, पृ० 115

चित्रों में रेखांकन के लिये पारम्परिक तकनीक का प्रतिपादन नागरीदास द्वारा ही हुआ है। प्रारम्भ में नागरीदास गेरूये से रेखांकन करते थे जिसमें गोंद का मिश्रण नहीं होता था। अतः गेरूये के झड़ जाने के बाद रेखांकन का प्रभाव धुंधला सा रहता था। तत्पश्चात् सरसों के तेल में रूई जलाकर विशिष्ट काला रंग तैयार किया जाता था जिससे वे पूर्ण सक्षम रेखांकन करते थे।[1] खण्डेलवाल के अनुसार हाथी दांत को जलाकर भी काला रंग तैयार किया जाता था।[2]

किशनगढ़ शैली के चित्रों में उच्च कृतियों के निर्माण के लिये तथा उनके अभ्यास के लिये अपनी प्रेमिका बणीठणी को सावन्तसिंह ने मॉडल का रूप प्रदान किया। आकृतियों के रेखांकन के लिये पहले उस आकृति या चित्र को कागज पर रेखांकित करते थे। उस रेखांकित कागज को सुई या किसी भी बारीक नुकीली धातु से बनी वस्तु से रेखाओं के ऊपर छोटे-छोटे छेद करते थे। उस छेदयुक्त रेखांकित कागज को टिपाई द्वारा तैयार कागज पर रखकर ऊपर से गेरू या सूखा काजल बुरक दिया जाता था। इससे छेदयुक्त रेखांकित कागज से नीचे पेपर पर रंग पहुँच जाता था। इस प्रक्रिया के बाद चित्रकार पतली तूलिका द्वारा रेखा से पूरे चित्र को बांध देता था।

यही कारण है कि नागरीदास द्वारा चित्रित चित्रों में जो रागरूप प्राप्त हैं उनकी चित्रण प्रकिया में प्रत्यावर्तन एवं विविधता भी इस प्रकार की रेखांकन पद्धति के कारण आया। इस प्रकार अनवरत अभ्यास के पश्चात् वे किशनगढ़ शैली के सिद्धहस्त चित्रकार हो गये।[3] उनके सृजन के स्वर्णिम युग में कलाकारों तथा स्वयं उन्होंने चित्रसंयोजन में उच्च रेखांकन का परिचय दिया है। यहां के चित्रकारों ने चित्रों में स्त्री पुरुषों के अंग प्रत्यंग का जो सौन्दर्यपूर्ण रेखांकन किया है वह अपने आप में दर्शनीय है। रेखाओं का लावण्य तथा

---

1 अ E. V. Havell - *The Art Heritage of India*, P. 86
  ब Motichandra - *Technique of Mughal Painting*, P. 44
2 Karl Khadelwala - *Painting of Bygone Years*, P. 40
3 डा. फैयाज अली खान - *भक्तवर नागरीदास* (अप्रकाशित शोधग्रन्थ), पृ0 17

रंगों का चमत्कार साहित्य के ऐसे रूप को लिपिबद्ध करता है जिसमें कविता और कला दोनों का ही आनन्द मिल जाता है।[1] किशनगढ़ के चित्रों में रेखाओं के अंकन में प्रवाह एवं गति है। विशाल तथा नुकीले नेत्रों का लयपूर्ण अंकन किशनगढ़ शैली की अपनी निज विशेषता है जो यहां के चित्रकारों का रेखा पर सिद्धहस्तता प्राप्त करने का सूचक है।[2] नेत्रों के रेखांकन द्वारा प्रेमरसी भावों की जो पराकाष्ठा चित्रों में हुयी है। वह इस प्रकार पारम्परिक रूप में पनपी कि वह राजस्थान की अन्य शैलियों से विलग तो हुयी परन्तु साथ विशिष्ट मौलिकता के साथ विकसित हुयी।[3] नेत्रों को सौन्दर्यांकन द्वारा विलक्षणतः प्रदान करना सम्भवतः सावन्तसिंह तथा अन्य कलाकारों का ध्येय बना। नागरीदास ने नेत्रों पर जिस परिमाण से कविता की है, उतनी किसी अन्य कवि ने नहीं की। नेत्र व नागरीदास पर तो स्वतन्त्ररूप से पुस्तक लिखी जा सकती है। नागरीदास की एक कविता जो नेत्रों पर है, का उद्धरण प्रस्तुत है[4] -

> ''अँखियन भाव भरयो हैं रस को
> थुरि-थुरि सन्मुख रहत रसीलो रूप बढयो आरस को,
> आधे-आधे वचन कहत कछु मन्त्र पढ़त मानो पियवस को,
> नागर नवल रसिक नहिं पौढ़त नींद भरी देखन को चसको।''

यह कविता रसीली अलसायी हुयी नींद से भरी आँखों के लिये है जो किशनगढ़ शैली के चित्रों में विशेष रूप से अभिव्यंजित हुई है। चित्र फलक 15, 18, 35, 40, 50 आदि। नागरीदास के ग्रन्थ पदमुक्तावली में उद्धृत ये पंक्तियां नेत्रों के कुछ अन्य भावों को दर्शाती हैं।[5]

> 'निगाह मिलते ही चश्मोपैगाम किया
> रिसवत मुसकाय दिया, दिल को लुभाय लिया'

कलाकारों ने आँखों की बनावट में अपनी सम्पूर्ण मौलिक चेतना के प्रकाश के तेज को परिलक्षित किया है। नेत्रों का अंकन कमल या खंजनपक्षी के आकार में किया गया है जो काली रेखा द्वारा कान तक खिंचे हुये अंकित है।[6] नेत्रों को आकर्षक बनाने में ऊंची मेहराबदार भौहों का रेखांकन भी अत्यन्त सहायक है। सहज न मिलने वाली नीची नजर, नवल रस चखने वाली और अर्न्तहृदय की गूढ़ बात को प्रकट करने वाली आँखें राधा कृष्ण के तमाम चित्रों में अभिव्यंजित हैं।[7] चित्र फलक 1, 11, 15, 18, 30, 38, 40, 46, 55, 66 । किशनगढ़ शैली में अंकित आदर्श आँखें केवल लौकिक दृश्यों को देखने वाली ही नहीं बल्कि उनसे तो प्रिय प्रीतम राधा कृष्ण के परस्पर दर्शन का मुख्य व्यापार भी अपेक्षित था।[8] यह सिद्ध है कि किशनगढ़ के चित्रों में अंकित नेत्र काल्पनिक नहीं है। रस रंजित, नवीनता, छलकती हुयी प्रेमविह्वलता, मिलन की

---

1 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 1
2 डा. जयसिंह नीरज - *रंग और रेखा राजस्थान पत्रिका*, अक्टूबर 1993, पृ0 2
3 डा. अविनाश बहादुर वर्मा - *भारतीय चित्रकला का इतिहास*, पृ0 210
4 डा. फैयाज अली खान - *भक्तवर नागरीदास* (अप्रकाशित शोधग्रन्थ),
5 पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय, अभिनन्दन ग्रन्थ, मोहनलाल गुप्त-*किशनगढ़ चित्रशैली की प्रेरणा बणीठणी*, पृ0 179
6 M.S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P. 10
7 *धर्मयुग पत्रिका*, 7 अप्रैल 1985, पृ0 31
8 रमाशंकर त्रिपाठी - *श्रृंगार व साहित्य*, पृ0 143

आशा से प्रसूत उद्दीप्तता, अपने चिरस्थायी रूप में सगाये रखने की क्षमता की धनी किशनगढ की ये आँखें धन्य हैं।

किशनगढ़ शैली में नारी को अत्यन्त कोमल व आकर्षक रूप में लयात्मक रेखाओं द्वारा चित्रित किया गया है। स्त्री आकृति को कभी राधा के रूप में, कभी नायिका के रूप में तो कभी सेविका के रूप में चित्रित किया गया है।[1] चित्रफलक 14, 44, 45, 46, 57, 61, 62, 63।

1 M.S. Randhawa-*Indian Miniature Painting*, P. 55

2 पदमश्री रामगोपाल विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2, मोहनलाल गुप्त-*किशनगढ़ शैली की प्रेरणा* बणीठणी पृ0 179

नारी मुखपर रेखा के कम और ज्यादा दवाव को पतले और मोटेपन से स्पष्ट किया गया है। नारी के मुख से ललाट तक हल्की रेखा चित्रित करने के बाद नाक तक एक रेखा में प्रवाहपूर्ण तथा लयात्मक चित्रण है। कान के पास से निकली लटों का कम और ज्यादा घुमाव के साथ रेखांकन करने से चित्र का सौन्दर्य और अधिक बढ़ जाता है। प्रमुख चित्रकार निहालचन्द्र ने कुशल रेखांकन में अपना विशेष योगदान दिया। इस शैली की विशिष्ट उत्कृष्ट मुखाकृतियां जिसमें तीखी नुकीली नाक, लाल महीन होंठ, नेत्र कमल पत्र के समान, चिबुक आकार में छोटी व नुकीली व उंगलियां लम्बी पतली व लालित्यपूर्ण ढंग से रेखांकित की गयी है। जो इसे अन्य शैली से विशिष्ट बनाती है।[1]

परन्तु 1798 ई0-1938 ई0 के मध्य गीत गोविन्द के आधार पर बने चित्रों में नारी मुखाकृति में कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि वह मनमोहक तो है परन्तु उनमें पहले के बने चित्रों जैसे सूक्ष्म संवेदनशीलता तथा रेखांकन का अभाव है। चित्र फलक 41, 54, 64, 77। किशनगढ़ के चित्रों में नेत्रों तथा मुखाकृति की इस प्रकार की अभिव्यंजना केवल स्त्रियों के लिये ही नहीं हुयी है वरन् पुरुषों की मुखाकृति व नेत्रों का रेखांकन भी इस प्रकार हुआ है।[2] निहालचन्द द्वारा चित्रित राधाकृष्ण का चित्र (चित्र फलक 20) जिसमें लम्बी मुखाकृति, मेहरावदार भौंहे तथा कमल के समान नेत्रों का रेखांकन है। तीखी पतली नासिका, पतले-पतले संवेदनशील होंठ, नुकीली चिबुक का अंकन है। यही विधि कृष्ण की मुखाकृति में भी प्रयुक्त हुयी है।[3] कृष्ण की मुखाकृति में नीले रंग का प्रयोग कर उन्हें अन्य आकृतियों से पृथक बनाया गया है। यह विधि काँगड़ा में प्रयुक्त की गयी विधि के समान है।[4] मुखाकृति की यह सुन्दरता किसी विशेष व्यक्ति की सुन्दरता न मानकर चित्रकारों द्वारा चित्रित एक आदर्श सुन्दरता है। जिसे लगभग सभी चित्रकारों ने अपनाया।

1 पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2 लेखकः मोहन लाल गुप्त-किशनगढ़ शैली की प्रेरणा वणीठणी, पृ0 179
2. Rooplekha, Vol-XXV, Part I, Banerjee - *Kishangarh Painting*, P. 43
3 M.S. Randhawa *Kishangarh Painting*, P. 66
4 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 726

चित्र फलक 30 में राधा के चित्र मे मुखाकृति के सौन्दर्य की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।[1] जिसमें मुखाकृति के साथ उंगलियों का रेखाकन अत्यन्त लयात्मक और कोमल है। चित्रकार नागरीदास ने राधा के स्वरूप के आदर्शीकरण पर कितना ध्यान दिया है। यह इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने एक ग्रन्थ में नेत्रों के विभिन्न आकारो की चर्चा की है और अनेक प्रकार के नेत्रों का रेखांकन किया है।[2] सौन्दर्यपूर्ण व्यक्तित्व की स्वामिनी राधा के इस चित्रण में जिस तरह रेखाओ का सम्मोहन दिखायी देता है। वह अन्यत्र नहीं मिलता है। उनकी काली बरौनियों से घिरे अर्द्धनिमिलित तिरछे नेत्र कितनी सहजता से उस सौन्दर्यवती को एक रहस्यमयता प्रदान करते हैं। उसके कमलोद्दीपक होंठों का हल्का सा घुमाव जैसे अभी-अभी वहीं से मुस्कान फूटने जा रही हो। उनके काले भौंराले केशो का रेखांकन जो उनके गालों के उभार पर कोपलों के जैसी नर्मी का स्पर्श देते हुये एक सुगढ़ पार्श्व चित्र बनाते हैं। केशों के रेखांकन का ऐसा निर्वाह निश्चित रुप से उत्तर औरंगजेब काल की मुगल कला से प्रभावित है। राधा का यह चित्र मुखाकृति के रेखांकन के लिये किशनगढ़ कला का सर्वोच्च प्रतिमान है।[3]

कलाकारों ने संयोग-वियोग के अनेक भावपूर्ण चित्रों मे रेखांकन अत्यन्त सबल ढंग से किया है। नायक-नायिकाओ के रुप में तथा उनकी चेष्टाओ एवं कार्यकलापो में रेखांकन अत्यन्त उच्चकोटि का है। कृष्ण के माधुर्य और सौन्दर्यपूर्ण स्वरुप को देखकर राधा व अन्य गोपियां भावविभोर हो उठती है। कृष्ण के अंग-प्रत्यंग वेशभूषा का रेखाकन अत्यन्त कुशलतापूर्वक चित्रकारों ने किया है[4]-

---

1 Krishan Chaitanya - *A History of Indian Painting, Rajasthan Tradition*, P 126

2 डा. फैयाज अली खान - *अक्बर नागरीदास (अप्रकाशित शोधग्रन्थ)*, पृ0 40

3 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 11

4 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ0 132

''देखो भाई सुन्दरता को सागर।
बुधि-विवेक बल पार न पावत, मगनहोत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अतु निधि, कटि पट, पीत तरंग।
चितवन चलत अधिक रुचि उपजति, भंवर परति सब अंग।
नैनमीन, मकराकृत कुंडल भुज, सरि सुभग भुंजग।
मुक्ता माल मिली मानौ, द्वै सुरसरि एकै संग।।
कनक खचित मनिमय आभूषण, मुख स्त्रम कन सुख देत,
देखि सरूप सकल गोपीजन, रही विचारि-विचारि
तदपि सूर तरि सकी न सोभा, रही प्रेम पचि हारि।।

उपरोक्त पद में कृष्ण के रूप व अंग-प्रत्यंग का रेखांकन किया गया है जो कृष्ण के माधुर्य रूप को साकार करता है। कृष्ण की छवि के ही अनुरूप उनके वस्त्रों व अलंकारो का भी रेखांकन है जो उनके सौन्दर्य की शोभा को द्विगुणित कर देते हैं। कलाकारों ने चित्रों में कृष्ण की वेशभूषा में कमर में करधनी व पीताम्बर तथा सिर पर मोर मुकुट का रेखांकन किया है। चित्र फलक 7, 26, 27, 32, 45 ।

अनेक चित्रों में राजाओं की पोशाकों के समान कृष्ण को जामा पाग कमरबन्द आदि वस्त्रों तथा अनेक राजसी अलंकारों से अलंकृत किया है। वस्त्रों का फहरान तथा उसकी सलवटों की रेखाओं का अंकन अत्यन्त लयात्मक व कोमलतापूर्ण है।[1] दरबारी जीवन से प्रभावित कृष्ण चित्रो में पाग बांधना, अंगरखा पहनना, कमर बाँधना, सुगन्ध लगाना भली-भाँति के हार पहनना, पान खाना तथा राधा से तिलक लगवाना आदि रेखांकन मध्यकालीन परिवेश का परिचायक है।[2] कृष्ण के वस्त्रों में 'पाग फेंटा' (पगड़ी)।

---

1 Krishan Chaitanya - *A History of Indian Painting, Rajasthan Tradition*, P. 127
2 Dr. Sumhendra - *Splendid Style of Kishangarh*, P. 25

'अलबेले पेचों का लपेटा' नागरी दास के काव्य और निहालचन्द के चित्रों की विशेष देन है। नागरीदास ने इस प्रकार की पगड़ी का रेखांकन कर किशनगढ़ की चित्रकला पर से मुगलकला के प्रभाव को कम करने का प्रयास किया है।[1]
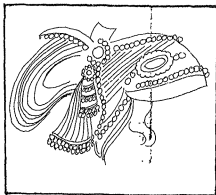
अनेक रेखायें राधा व कृष्ण के मोहक रूप को साकार कर देती हैं। राधा अपने रूप सौन्दर्य में वृद्धि करने के लिये स्वयं को सोलह श्रृंगार से सजाती हैं। जिसमें वर्णनात्मकता तथा वस्तुपरकता का उत्तम रेखांकन है। स्नान करना, वस्त्राभूषण धारण करना, केशपाश गूँथना, अंगराग लगाना, सुन्दर काजल लगाकर चंचल नेत्रों से देखना आदि राधा के सौन्दर्य में वृद्धि करते है। राधा के अंग-प्रत्यंग की शोभा के समक्ष ब्रज की अन्य गोपियों का सौन्दर्य फीका पड़ जाता है।

1 Dr. Sumhendra - *Splendid Style of Kishangarh*, P. 26

राधा के प्रत्येक अंग की शोभा का शब्दांकन देखने योग्य है[1] -

'चन्द को सो भाग भाल भृकुटि कमान ऐसी,
भैन के से पैन सर नैनहि विलासु है।
नासिका सरोज गंधवाह से सुंगध वाह
दारयौ से दसन कैसो बीजरी सो हासु है।
भाई ऐसी ग्रीव-भुज पान सो उदर अरु
पंकज से पाई गति हंस की सी जासु है।
देखी है गुपाल एक गोपिका में देवता सी।
सोने सो शरीर सब सोधे को सी वासु है।।

चित्रकारो ने मंद्रगत्यात्मक रोमाचकारी रेखाओं के द्वारा सामन्ती परिवेश में पली सम्भ्रान्त नायिका के जिस रूप का अकन किया वह कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। लम्बे, कटि तक लहराते केश, कनक कलश सदृश कुच तथा लज्जा का भार वहन करने वाली राधा की पतली कमर का सुन्दर रेखाकन हुआ है। जिसमें अजन्ता की नायिकाओं का रूपचित्र साकार हो उठता है[2] -

''कंचन के भार कुच -भारनि सकुच भार,
लचकि-लचकि जात कटि तट बाल के
हेरे-हेरे बोलत विलोकत हंसत हेरे,
हेरे-हेरे चलत हरत मन लाल के।''

चित्र फलक 45, 46, 47, 48, आदि। किशनगढ़ के चित्रो की नायिका ब्रज की अल्हड़ ग्रामीण बाला न होकर राजसी ठाठबाट में पली सामन्ती परिवेश की राजकुमारी है। अतः उनके चित्रण में चित्रकार ने वैभव विलास के रेखांकन का भी ध्यान रखा है।

1 जी राघदानी - अजन्ता पेन्टिग, पृ0 46

2 विश्वनाथ प्रसाद - केशवग्रन्थावली, खण्ड - 2, पृ0 33

3 मोहन लाल गुप्ता यात्रा नर-नारियो के नाना रंगी आभूषणों की, राजस्थान पत्रिका, पृ0 4, 1994

4 सुन्दर मोहन स्वरूप भटनागर - राजस्थानी लघुचित्र शैलियां, प्रथम खण्ड, जयपुर 1972, पृ0 52

उनका शारीरिक रूप यौवन, वस्त्र व आभूषणों तथा अन्य श्रृंगार सम्बन्धी उपकरण राजसी ठाठबाट के अनुसार है।[3] रेखाओं द्वारा नायिका की अल्हड़ मदमस्ती का पूर्ण चित्रण उभरकर सामने आया है। वस्त्रों के फहरान को लयात्मकता के साथ चित्रित किया गया है। लयात्मकता को चित्रों मे आत्मसात करने के कारण ही सम्पूर्ण आकृति मे आनन्द व अलौकिक शक्ति के भाव रेखा के द्वारा ही अभिव्यक्त किये गये हैं।

चित्रों में पशु-पक्षियों का अंकन अपनी अलग ही मौलिकता लिये हुये है। मानव के साथ पशु-पक्षियों के सम्बन्ध को चित्रकार ने रंगो तथा रेखाओं दोनो ही माध्यम से व्यक्त किया है। रेखाये उनकी गति व लय को दर्शाती है।[4] चित्रों में अधिकतर घोड़े हिरन, गाय, चीते, बन्दर व यदाकदा हाथी का रेखांकन मिलता है। चित्र फलक 74 लम्बी घुमावदार लयात्मक रेखा के द्वारा कलाकारो के चित्रों में पशु-पक्षियों के अंकन में हस्तकुशलता के साथ-साथ संगीतमय लयात्मकता का अभ्यास देखने को मिलता है।[1] कहीं गहरी, कहीं पतली रेखाओं से चित्रित कर कलाकारों ने गतिमय मुद्रा के तीव्रता के प्रभाव को परिलक्षित किया है। चित्र फलक 3, 7, 19, 43, 47।
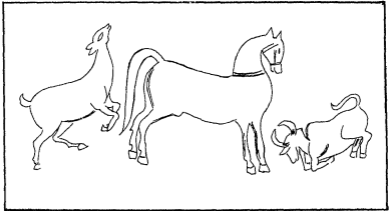
चित्र फलक 25 में राजा साहसमल का भैंसे के ऊपर तलवार से प्रहार करना तथा बैल के सिर पर घोड़े की टांग का अंकन तथा भैंसे पर पीछे की तरफ से प्रहार करते हुये पुरुषाकृति के रेखाकंन में कोमल तूलिका तथा प्रवाहमय प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।[2]

1 *Realism of Heroism*, P. 181

2 B.N. Goswamy- *Essence of Indian Art*, P. 80

तोता, मोर, सारस, बगुला, आदि पक्षियों का सटीक रेखांकन भी चित्रों में हुआ। अधिकतर पक्षियों की चित्रों में उपस्थिति प्रतीकात्मक ढंग से अंकित की गयी है। चित्र फलक 27, 40, 60।
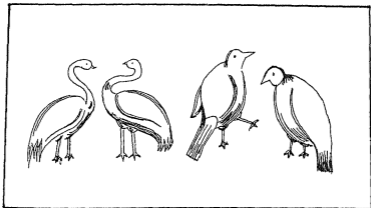
किशनगढ़ के चित्रों में झीलों में तैरती लाल रंग की नौका का अंकन अपनी मौलिक विशेषता है।[1] जिसका आकार प्रकार सशक्त रेखाओं से चित्रकारों ने अत्यन्त दक्षता से रूपायित किया है। नाव के अग्रभाग में घोड़े की या किसी पक्षी की मुखाकृति का अंकन किया जाता था तथा इसे विभिन्न अलंकरणों से भी अलंकृत चित्रित किया जाता था। चित्र फलक 10, 38, 48, 49।

1 M.S. Randhawa - *Indian Miniature Painting*, P. 40
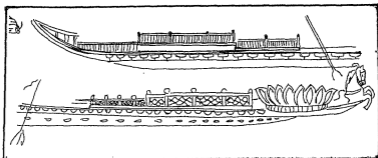
राधा कृष्ण की अधिकतर लीलायें प्रकृति के स्वच्छन्द व सुरम्य वातावरण में ही अधिक हुयी। इसीलिये प्रकृति चित्रण मे कटी-छंटी फुलवारियों या राजसी ठाटबाट से युक्त उपवनो और बगीचों का चित्रण न होकर स्वच्छन्द प्राकृतिक परिवेश का रेखांकन विशेषरूप से हुआ। केले, आम, कदली, वट, पीपल तथा अन्य वृक्षो को सरलता के साथ वास्तविक रूप की अनुभूति के साथ चित्रित किया गया है। वास्तव मे प्रकृति मे रेखाये नहीं रंग होते हैं और विभिन्न रंगो के प्रयोग से प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण किया जाता है। परन्तु प्रकृति के विभिन्न उपादानो से जिस वस्तुपरकता का भान होता है, वह देखने वाले के मन मे कुछ स्पष्ट रेखाये उत्पन्न करने मे समर्थ होता है। चित्रकार उपादानो का बारीकी से अलंकृत चित्रण कर प्राकृतिक सौन्दर्य के रूप को मोहक ढंग से प्रस्तुत करता है जो चित्रण के भावो के अनुकूल होने के कारण पृष्ठभूमि की महती भूमिका निभाता है।

आकार योजना

कलाकार संवेदनशील होने के कारण वहा के वातावरण में होने वाले परिवर्तनों से वह प्रभावित होता रहता है जो उसके द्वारा चित्रों में स्वतः ही सहज रूप में अभिव्यक्त होता रहता है और इसी परिवर्तन के आधार पर अलग-अलग चित्रशैली की अवस्थाये स्पष्ट होती रहती हैं। कभी-कभी एक शैली दूसरी शैली से प्रभावित होती रहती है। उन शैलियों में प्राप्त होने वाले चित्रतत्व सहजरूप से एक दूसरे मे आत्मसात हो जाते हैं।[1] यही कारण है कि विभिन्न चित्रशैलियों में कलातत्व के आत्मसात होने से एक सृजनात्मक भिन्नता परिलक्षित होती है जो अलग-अलग नामो से जानी जाती है। इसी मौलिक कलातत्वों तथा नवीन सृजित रूपाकारों के कारण विशिष्टता लिये हुये किशनगढ़ चित्रशैली राजस्थानी चित्रकला परम्परा में अपना अलग से संविधान रखते हैं।[1] रूपाकार या आकार योजना किसी भी चित्र शैली की विशिष्टताओं के निर्धारण मे मुख्य तत्व होता है। इसका सृजन चित्रकार अपने कौशल से अभिव्यक्ति को मुखर रूप देने के लिये सतत प्रयास करता है। कलाकार अपनी संवेदनात्मक अनुभूति और बौद्धिक चेतना के अनुरूप ही बाहरी रूपों को आन्तरिक रूप में परिवर्तित करता है।[3] जो कुछ भी कलाकार भौतिक चक्षु से देखता है उसकी इन्द्रियजनित अनुभूति की प्रतिक्रिया हमारे मानसपटल पर कल्पना की सक्रियता के साथ विभिन्न प्रकार के बिम्ब उत्पन्न करती है।[4] ये बिम्ब चित्रभूमि पर जितना अधिक भौतिक रूपो से साम्य रखते हैं चित्र उतना ही यथार्थवादी हो जाता है। जब हमारी संवेदनात्मक अनुभूतियों के कारण ये बिम्ब नये रूप में प्रस्तुत होते हैं तो एक रचनात्मक शैली का जन्म होता है।

सौन्दर्य के प्रति कलाकार के स्वाभाविक रुझान के कारण रूपाकृतियों में गति, सन्तुलन, प्रमाण, गठन तथा डिजाइन के द्वारा निर्मित चित्रों से आनन्द की अनुभूति होती है और चाक्षुक यथार्थ से लेकर शुद्ध अमूर्तन तक की मात्रा मे उपर्युक्त तत्वों के साथ विभिन्न शैलियो का निर्माण होता है।[5] इसी क्रम मे किशनगढ़ के कलाकारों ने अपने आस-पास के रूपाकारो का गहन चाक्षुक अनुभव प्राप्त किया एवं अपने कौशल के आधार पर जिन रूपाकारों का निर्माण किया, वह बहुत समय तक स्थायी रहे।

1 P. Brown - *Indian Painting*, P. 50
2 Krishan Chaitanya - *Indian Miniature Painting, Rajasthan Tradition*, P 125
3 N.C Mehta - *Studies of Indian Painting*, P. 26
4 रामनाथ-मध्यकालीन *भारतीय कलायें एवं उनका विकास*, पृ0 15
5 वही, पृ0 20

किशनगढ़ के चित्रो में नारी आकृति को कोमल व आकर्षक रूप में लयात्मक रेखाओं के माध्यम से चित्रित किया है और रेखा ही उसे अपनी पहचान दिलाती है चित्र फलक 17, 47, 61। नारी के प्रत्येक अंग में रेखा विशेष रूप लेकर उसका सौन्दर्यवर्धन करती है। चित्र फलक 60 में नायिका को केश संवारते हुये चित्रित किया गया है जो अर्द्धनग्न अवस्था में चित्रित की गयी है। इस चित्र में नायिका के वक्षस्थल के उभार को लयात्मकता के साथ चित्रित कर उसके यौवन को प्रदर्शित किया गया है।[1] वहां पतली घुमावदार रेखा को हल्के रंग से चित्रित किया है जो शरीर के रंग से मिली हुयी सी लगती है। जिसमें उत्पन्न भावों एवं छाया प्रकाश को चित्रकार ने कुशलता के साथ इस चित्र में आत्मसात किया है।[2]

उस समय प्रचलित कृष्णगाथा के परम्परागत चित्रांकन के निर्वाह से कलाकार व संरक्षक सावंतसिह दोनों ही संतुष्ट न थे। वे परम्परागत रेखांकन से हटकर कुछ कार्य करना चाहते थे। इसी प्रयास में उच्च संवेदनशील सौन्दर्य से पूर्ण बणीठणी जो उनके लिये महान प्रेरक बनी। उसके रूप सौन्दर्य के आधार पर राधा व समस्त स्त्री जाति के सौन्दर्य को चित्रित किया।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि श्रृंगारिक कवियों के पदों पर जो कुछ निचोड़ था, वह इन सभी सुन्दर कृतियों में समाहित हो गया। इस प्रकार न केवल एक विशिष्ट नारी आकृति का प्रादुर्भाव हुआ वरन् विशिष्ट नेत्र का भी अंकन हुआ, जो उन्नीसवीं शती तक किशनगढ़ शैली के चित्रों की विशेषता बनी रही है।[4] चित्र फलक 11, 18, 30, 61। नारी आकृति को पुरूषों के ही समय लम्बा व छरहरा बनाया गया है। चित्रकारों ने मानस पटल पर परम् सुन्दरी राधा का वह चित्र अधिकतर लिया है जिसमें जब देखा जाय जिस अवस्था मे देखा जाये एक ही प्रकार की सौन्दर्य सुधा बरसती है।[5] नागरीदास की प्रिया बणीठणी को राधा के रूप का प्रतीक मानकर चित्रों में नारी आकृति का अंकन हुआ है।[6]

किशनगढ़ के चित्रों में पुरूषाकृतियों को अन्य शैलियों की अपेक्षा लम्बा, छरहरा तथा सुडौल चित्रित किया गया है। उन्नत फैले हुये स्कंध, पौरूष को प्रकट करता हुआ आगे निकला हुआ वक्ष, क्षीण तथा दुपट्टे से बंधी कटि अंकित की गयी है। राजसी आकृतियों की एक पारम्परिक भाव-भंगिमा के अनुसार कलाकारों ने पुरूषाकृतियों में वक्ष निकला सा रेखांकित किया है। यही रेखा नीचे सुडौल कमर से होती हुयी पुष्ट जंघाओं में जाकर समाप्त हो जाती है। पावों तक पतला पारदर्शी जामे का अंकन मिलता है, लम्बी भुजायें, पतली सुकुमार उगलियां जिन की मुद्रा श्रृंगार के किसी भाव को प्रकट करती सी प्रतीत होती हैं। चित्र फलक 19, 22, 24, 72।

---

1 M.S. Randhawa-*Indian Miniature Painting*, P. 105

2 वही, पृ0 106

3 M.S. Randhawa - *Kishangarh Painting*, P.

4 राजस्थान वैभव श्री रामनिवास मिर्धा *अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2, प्रेमचन्द गोस्वामी-किशनगढ़ शैली*, पृ0 97

5 रामगोपाल विजयवर्गीय - *राजस्थानी चित्रकला*, पृ0 2

6 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 26

अलंकरण

प्रसाधन या रूप श्रृंगार के प्रति मानव की स्वयंभू प्रवृत्ति है। अनादि काल से वह सहज भाव से अपने प्रकृति प्रदत्त स्वरूप को प्रसाधन द्वारा और अधिक सुन्दर बनाने का प्रयास करता आया है। इस नैसर्गिक प्रवृत्ति की प्रेरणा सम्भवतः उसे प्रकृति के पल-पल बदलते ऋतु क्रम से मिली है। शुष्क पतझड़ के बाद सरस, वासन्तिक सुषमा, प्रतृप्त ग्रीष्म के बाद सजल पावस की हरीतिमा, रंग बिरंगे फूलों से सजी पृथ्वी का हरित आँचल, नक्षत्र, खचित नीले आकाश के फलक पर सन्ध्या या उषा के बदलते रंगविधान इन्हीं से मानव ने अपने रूप का श्रृंगार करना सीखा होगा और अलंकरण की मनोरम कला को अपनाया होगा धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति उसके जीवन का अंग बनती गयी।[1] जैसे-जैसे मानव स्वयं को विकसित करता गया उसने विभिन्न साधनों द्वारा अपने रूप को अलंकृत करने की प्रवृत्ति को और अधिक परिष्कृत व विकसित करता गया। फलतः स्थान भेद, काल भेद, अवस्था भेद, तथा पात्र भेद के आवश्यकतानुसार श्रृंगार के उपादान तथा प्रकार बदलते रहे हैं।[2] गुहावासी मानव ने गेरू से अपना चेहरा सजाया होगा और अपनी प्रेमिका के लिये पत्तों व हड्डियों के आभूषण बनाये होंगे [3] वनवासी राम ने चित्रकूट में सीता का श्रृंगार मनः शिला तथा वन्य पत्र पुष्पों से किया तो पतिगृह के लिये विदा होने वाली शकुन्तला को अंकरण पुष्प तथा वृक्षों ने ही प्रदान किये।[4] इस प्रकार प्राचीन काल से ही विभिन्न सज्जा प्रसाधनों की सृष्टि हुयी जिनका उल्लेख अनेक महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों में शास्त्रीय ढंग से किया है। जिसमें आभूषण

---

1 भावना आचार्य - *प्राचीन भारत में रूपश्रृंगार*, पृ0 2
2 वही, पृ0 2
3 हर्षनन्दिनी भाटिया-*नारी श्रृंगार*, पृ0 10
4 वही, पृ0 11

का अति महत्वपूर्ण स्थान है।[1] आभूषण के प्रति मनुष्य विशेषतः नारी का आकर्षण आदि काल से ही रहा है। बिना आभूषण के वनिता का सुन्दर मुख भी सुशोभित नहीं होता है -
''न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्''
भामह कृत काव्यलंकार 1/13

कविता व वनिता दोनों के शोभावर्धन में अलंकरणों का महत्व बताते हुये ब्रजभाषा के रीतिकालीन कवि केशवदास कहते है [2] -

''भूषण बिन बिराजई कविता वनितामित्त ।''

अजन्ता, ऐलोरा की गुफाओं की मूर्तियों तथा चित्रों पर वस्त्रों की अपेक्षा विविध आभूषणों की बहुलता है। ऋग्वेद में भी सोने, चांदी के गहनों का उल्लेख है। जिसमें कान के कुण्डल, गले की कण्ठी, हार आदि का वर्णन हुआ है।[3] सिन्धु घाटी सभ्यता से प्राप्त कुछ मूर्तियों को विभिन्न आभूषणों से युक्त पाया गया है। ये आभूषण पत्थर, धातु, हड्डी आदि विभिन्न प्रकार की आधार भूत आदि सामग्री से बने हैं।[4]

रीतिकालीन साहित्य में नायक-नायिका के सौन्दर्य के अन्तर्गत आभूषणों का वर्णन हुआ है।[5] कवियों के अनुसार नायिकायें अपने सौन्दर्य और यौवन को प्रभावशाली बनाने के लिये सदैव ही प्रयास करती चली आयी हैं। इसके लिये विभिन्न सोलह श्रृंगारों की व्यवस्था की जाती है।[6] केशव ने अपने पद्यों में आभूषणो से सज्जित राधा का वर्णन किया है। जिसमें नख से शिख तक के पूरे श्रृंगार का वर्णन मिलता है।पग से प्रारम्भ की वेणी वर्णन के बाद सर्वांग वर्णन से समाप्त किया गया है-

''जदपि सुजाति सुलच्छनी,सुबरन सुरसर सुवृत्त
भूषण बिनु न बिराजई कविता बनित मित्त''

आधुनिक काल मे हरिऔधजी ने रसकलश में नखशिख वर्णन में शीश से पग तक के सोलह अलंकरण का वर्णन किया है। इन आभूषणों का अंकन कलाकारों ने स्त्री आकृति का सज्जा के लिये किया है । नायिका के श्रृंगार निम्न हैं[7]-

1 स्नान	6 होंठ लाल करना	11 पुष्पाहार
2 उबटन	7 जावक	12 कुंकुम
3 स्वच्छ वस्त्र	8 हाथ में कमल लेना	13 भालतिलक
4 बाल संवारना	9 ताम्बूल	14 चिबुकबिन्दु
5 काजल लगाना	10 सुगन्धि	15 मेंहदी
		16 कर्णावंतस

1 अत्रिदेव विद्यालंकार - प्राचीन भारत के प्रसाधन, पृ0 20
2 भावना आचार्य - प्राचीन भारत में रूपश्रृंगार, पृ0 61
3 राधा कुमुद मुखर्जी - सिन्धु सभ्यता, पृ0 33
4 वाचस्पति गैरोला - भारतीय कला व संस्कृति, पृ0 113
5 डा. पुरुषोत्तम अग्रवाल - मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण काव्य, पृ0 20
6 केशवदास - रसिकप्रिया, खण्ड 5, पृ0 7
7. श्री रामशंकर त्रिपाठी - श्रृंगार और साहित्य, पृ0 144

कवियो ने अपने पद्यों में इस प्रकार अभिव्यंजित किया है[1]-

''आद्यौ मज्जनचीर हार तिलक नेत्रांजन कुण्डले
नासा मौक्तिककेशपाश सत्कंचुक नुपुरौ
सौमध्य करकक्णं चरणयो रागोरणन्मेखला
ताम्बूल करदर्पण चतुरता श्रृंगारक षोडशः।''

अलंकरण को चार श्रेणियों में विभजित किया जा सकता है - अवेध्य, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य तथा आरोप्य।[2] कुण्डल, कान के बाले तथा नथ आदि अलंकार अंग में छेद करके पहने जाते हैं इसलिये अवेध्य कहलाते है। अंगद, श्रोणीसूत्र चूड़ामणि, शिखा टीका, दृष्टिका आदि अलंकार बांध कर पहने जातें है इसलिए इसे निबन्धीय कहते हैं। उर्मिका, कटक, मंजीर आदि अंग प्रक्षेपपूर्वक पहने जाते हैं इसलिए प्रक्षेप्य कहलाते हैं। झूलती हुयी माला, हार, नक्षत्र, मालिका आदि अलंकार आरोपित किये जाने के कारण आरोप्य कहे जाते हैं।[3]

जब हम किशनगढ़ शैली के चित्रों का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि निश्चित तौर पर इन आभूषणों का अंकन कलाकारों ने नारी की ओर अधिक सौन्दर्यपूर्ण बनाने के लिए किया था। इन चित्रों में अलंकारों को बड़ी सुन्दरता के साथ अभिव्यजित किया है। नारी को मोती एवं स्वर्ण आभूषणों से सुसज्जित चित्रित किया गया है। ये आभूषण निम्न हैं जिनका प्रयोग लगभग सभी शैलियों में हुआ है[4]-

चौकः यह घुमावदार धातु का शंकुल अथवा गोल सा आभूषण है जिसे पंजाब के कुछ भागों में सिर के ऊपर लगाया जाता है ।

सिरमॉग : मांग में पहना जाने वाला यह मोती का आभूषण है ।

घेरी और टीकाः सिर मांग का ही एक भाग है ।

शीश फूल और शीशमणि सूरजः केश में लगाये जाने वाले आभूषण।

सिन्धीः यह एक त्रिपक्षीय लचीला आभूषण है जो मांग व माथे और दोनों कानों को सजाता है ।

नथ, बेसर, बेसरी लौंगः नथ नाक को छेद कर पहनी जाती है। बेसर या बेसरि नाक का महत्वपूर्ण आभूषण है जो नाक की उपस्थिति में छिद्र करके पहना जाता है ।

बेना तथा चाँद बेनाः माथे का आभूषण। चाँद बेना अर्द्धचन्द्राकार होता है। यह माथे पर लटकाने वाला आभूषण है ।

कर्णफूलः ये गोल बड़े कर्णाभूषण होते हैं इनके अतिरिक्त घण्टी के आकार के झुमके, बाली, बालियाँ जो कान के ऊपरी भाग में पहनी जातीं आदि का चित्रण मिलता है ।

मालाहारः इसके कई प्रकार होते हैं। हर एक का अलग नाम होता है । जैसे चन्द्रहार पँचलड़ी इत्यादि। वक्ष पर लटकने वाला लम्बा हार।

---

1 डा. लल्लनराय - रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में उल्लिखित वस्त्राभरणों का, अध्ययन, पृ0 7

2 मोहनलाल गुप्ता - यात्रा नर-नारियों के नानारंगी आभूषणों की राजस्थान पत्रिका, जयपुर, October 1994, पृ0 9

3 वही, पृ0 2

4 W. G. Archer - *Indian Collection*, P. 28

भुजबन्दः कंकण, दस्तबंद, कड़ी, काँच की चूड़ी, कड़ा, नागरी इत्यादि।
किकिंणीः कमरबंद जिसमें घुँघरू लगे होते हैं ।
मुद्रा मुंदरी : अँगूठी।

हथफूलः हाथ के पिछले ओर पहना जाने वाला आभूषण जो अंगूठियों से जुड़ा होता है।

छल्लाः इसमे कभी-कभी शीशा भी लगा रहता है ।

बिछुआः पैर की उगलियों में पहना जाने वाला आभूषण। इसमें घुँघरू लगे होते हैं ।

नूपुरः राजपूतो में सोने की पायजेब पहनने का चलन है परन्तु भारत के अन्य स्थानों में कमर के नीचे सोने के जेवरात नहीं पहने जाते हैं।

किशनगढ़ शैली के चित्रों में प्रायः इन सभी आभूषणों का प्रयोग किया गया। चित्र फलक 30 में वणीठणी के चित्र में सम्पूर्ण अलंकारों की शोभा अलग से प्रतिबिम्बत हो रही है। गले में मोतियों की माला, माथे पर बिंदिया तथा टीका अलंकरण, हाथो में कंगन, कान में झुमके तथा कमर के आभूषण बनाये गये । परन्तु सबसे महत्वपूर्ण आभूषण बेसरी है[1] जो अनोखे ढंग की बनी हुयी है अर्थात नाक के आभूषण को महत्व प्रदान की गयी है।[2]

बेसरी का वर्णन बिहारी सतसई मे इस प्रकार मिलता है।[3]

''बेसरी-मोती-दुति-झलक
परी ओठ पर आइ
चूनो होय न चतुर त्रिय
क्यो पट पौ छयौं जाइ।''

वणीठणी की पतली सुकोमल उंगलियों में अँगूठी, हथेलियों में महावर, हाथ में पकड़ी अर्द्ध-विकसित कमल पंखुड़ी को अंकित किया गया है।[4]

लगभग सभी चित्रों में नायिका को बहुमूल्य रत्न एवं मणिजड़ित आभूषण, बाहों में मुजबन्द, गले में मोतियों की माला एवं रत्नजड़ित सीतारामी हार और कमर में करधनी, हाथों में चूड़ियां तथा पैरों में पैंजनी से सज्जित चित्रण कलाकारों ने बड़ी ही कुशलता से किया है। चित्र फलक 11, 13, 15, 17, 18, 26, 30, 44, 45, 46, 47, 55।

चित्र फलक 92 में जिसमें राधा कृष्ण के साथ वृक्षों के मध्य खड़ी हैं में राधा के माथे पर शीशफूल, नाक में बेसरी, कान में कुण्डल पहने अभिव्यंजित किया गया है, गले में पंचलड़ी का हार, कमर में करधनी तथा बाँह में बाजूबन्द, हाथ में

1 अतिदेव विद्यालंकार - *प्राचीन भारत के प्रसाधन*, पृ0 25
2 रामगोपाल विजयवर्गीय- *राजस्थानीय चित्रकला*, पृ0 3
3 बिहारी सतसई, दोहा 17, पृ0 3
4 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 12

चूड़ियां, पटरी व कंगन पहने चित्रित है और पैरों में घुँघरू, पैजनी भी पहनायी गयी है। इस चित्र में वे सम्पूर्ण रूप से आभूषणों से सुसज्जित प्रतीत हो रही हैं।[1] उनका यह लावण्य उनके आन्तरिक सौन्दर्य को और अधिक उजागर करता प्रतीत हो रहा है :-

> ''मांग सवारि सिहारी सुधारनि बेनी गुही जू लौं छावै,
> त्यौं पद्माकर या विधि और हूँ, साजै सिंगार जू स्याम के भावै।
> रीझै सखि लखि राधिका को रंग जा अंग जो गहनो पहिरावै।
> होत यों भूषण गात ज्यों डाक पै जोति जवाहर पावै।''
>
> पदमाकर ग्रन्थ 115/3531

कवि युवराज तथा वणीठणी का चित्र फलक 28 जिसमें विदुषी वणीठणी को पीत वर्ण की साड़ी पहने चित्रित किया गया है। कवि राजकुमार जोगिया वस्त्र धारण किये हुये पूजा में व्यस्त हैं। ये सांसारिक मोह माया से मुक्त होने के बाद भी थोड़े बहुत आभूषण पहने हुये है।

राधा के समान कृष्ण को भी विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित किया गया है। चित्र फलक 92 नीलवर्ण कृष्ण के गले में लम्बा पैरों तक सीतारामी तथा मोती का पंचलड़ी वाला हार तथा बाहो में मोती के बाजूबंद का अंकन है। उनकी पगडी को विभिन्न रत्नों से सुशोभित किया है। किशनगढ़ के चित्रों में पगड़ी को विशेष रूप से अलंकृत किया गया है। कृष्ण के अलावा अन्य राजकुमार व राजाओं की पगड़ी को रत्नजड़ित आभूषणों से सुसज्जित किया है। चित्र फलक 18, 24, 27, 34, 55।

चित्र फलक 7 में कृष्ण बाँह में चूड़ा पहने हैं। हीरे पन्नो से जड़ा मुकुट धारण कर रखा है जैसा कि उस समय शासक वर्ग धारण करता था[2] तथा कमर में करधनी का अंकन है।

> ''नवनील सरोरुह आगनि, केसरि रंग दुकूल प्रभा सरसैं।
> उरमाहर के बरा संयुत, चारु सिखानि के हार लसैं।[3]

आभूषणों के समान शरीर के विभिन्न अंगों को रंगना तथा केश विन्यास करना भी प्रसाधन रूप में श्रृंगार का एक अंग माना गया है। आदिकाल से ही शरीर के अंगों को रंगने की प्रथा मानव मन में रही है।[4] प्राचीन काल में आभूषणों के अभाव में इनका प्रयोग करके अलंकरणपूर्ण किया जाता था। देह रंगने के सन्दर्भ में कवि कालिदास के काव्य में विभिन्न स्थानों पर इसका वर्णन मिलता है। भारतीय साहित्य में अनेक श्रृंगारिक कवियों ने देहरंजन के अनेक उदाहरण अपनी श्रृंगारिक रचनाओं में प्रस्तुत किया है। हाथ, पैरों में मेंहदी रचाने, महावर लगाने की प्रथा तथा माथे पर सुहाग बिन्दी, होंठों पर लाली, मस्तक पर चन्दन लेप आदि लगाने की प्रथा प्राचीन काल से ही मिलती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के केशविन्यास कलाकार के लिये नये रूपों का सृजन करने में सहायक रहे हैं। विशिष्ट प्रकार की मुखमुद्रा प्रदर्शित करने के लिये विभिन्न प्रकार की अलकावलियां चित्रित की गयी हैं जो उसी विशिष्ट शैली की पहचान

---

1 M.S. Randhawa - *Indian Miniature Painting*, P 6

2 Francis Brunel - *Spleondour of Indian Miniature*, P. 43

3 डा. लल्लन राय - *रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में उल्लिखित वस्त्राभरणों का अध्ययन*, पृ0 177

4 Dr. B.N. Sharma - *(बैषधचरित) Social & Cultural History of Northern India*, P. 7

बन गयी है। आभूषणो के समान शरीर के विभिन्न अंगों के आलेपन का चित्रण भी कलाकारों ने अपने चित्रों में वर्णित किया है[1] :-

1 मांगः केशों के मध्य इसमें सिन्दूर भरा जाता है। यह सुहाग का सूचक है।
2 टीका तिलकः दोनों भौंहों के बीच सिन्दूर अथवा चन्दन का चिन्ह।
3 छापः यह पंथीय चिन्ह है जो चन्दन के लेप से लगाया जाता है।
4 महावर : इसे हथेलियों व तलुओं में लगाया जाता है।
5 अंजनः नेत्रों में लगाया जाता है।
6 मेंहदीः इससे हाथ पैरों के नख रंगे जाते हैं। यह मध्य सत्रहवीं शताब्दी से आगे राजपूत चित्रांकन में प्रयुक्त हुआ है।
7 गुदनाः यद्यपि प्रचलन में था परन्तु चित्रण में नहीं दिखता है।

चित्र फलक 30 में राधा के चित्र मे उनके माथे पर बिन्दी, आँखों में काजल, होंठों पर लाली, हाथ मे मेंहदी स्पष्ट रूप से अभिव्यंजित हो रही है। जो उनकी सौन्दर्य वृद्धि में चार चाँद लगा रहे हैं। मेहदी के लिये मतिराम कहते हैं[2] -

> ''बिरी अधर अंजन नयन मेंहदी पग अरूपानि
> तन कंचन के आभरण नीठिपरत पहिचानि''
> अलक शतक पृ 6 2/13/1

परिधान

परिधान या वेशभूषा भी अलंकरण की भांति सौन्दर्य सज्जा बढ़ाने में सहायक होते हैं। वस्त्र धारण करना मनुष्य का स्वभाव बन गया है। बाल्यकाल से ही वह उनके उपयोग का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि अपने से अलग उन पर सोचने विचारने की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता। वास्तव में मनुष्य सुन्दर वस्त्र धारण करके अपनी आत्माभिव्यक्ति करता है। वह इनके द्वारा स्वयं को दूसरे के समक्ष सुन्दर से सुन्दर रूप मे प्रस्तुत करना चाहता है। इसके अलावा हम किसी भी युग की रूचियां, प्रवृत्तियां, परिधान, प्रचलन के द्वारा स्पष्ट रूप से अनुमानित कर सकते हैं।[3] यों तो वेशभूषा का इतिहास अति प्राचीन है। सभ्यता के साथ शनैः-शनै वस्त्रालंकार का भी विकास होता गया। सिन्धु घाटी की सभ्यता के इतिहास में सर्वप्रथम वेशभूषा का उल्लेख मिलता है। खुदाई से प्राप्त दो मूर्तियों को दुशाला ओढ़े तथा सिर पर टोपी पहने दिखाया गया है।[4]

कलाकार वेशभूषा के द्वारा चित्रों में रूपाकारों को गति, सौष्ठव, सुन्दरता व

1 W. G. Archer - *Indian Collection*, P- 27
2 मतिराम रसराज, पृ0 114, छ0 2721
3 Charles fabree - *A History of Indian Dress*, P. 1
4 राधा कुमुद मुखर्जी - *हिन्दू सभ्यता*, पृ0 19

प्राण प्रदान कर सकने में सक्षम होता है। यहां स्त्रियों तथा पुरूषों की वेशभूषा में अत्यधिक विविधता पायी जाती है। इनके ये रूप भारत में अनन्त काल से भिन्न-भिन्न रहे हैं। वस्त्रों की विभिन्नता की दृष्टि से मध्यकाल विशेष महत्व रखता है। इस समय तक भारतीयों ने बहुत सारे वाह्य प्रभावों को आत्मसात कर लिया था। इस प्रकार भारत में वस्त्रों की प्राचीन परम्परा तथा विदेशी प्रभावों से आयी वेशभूषा में इस्लामी व तत्कालीन भारतीय चलन के आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन तथा संशोधन करके इन्हें कलाकारों ने अपने चित्रों में उकेरा। इस समय के बने तमाम चित्र इसके साक्षी हैं। किशनगढ़ के वस्त्राभूषण विशेष प्रभावशीलता लिये हुये हैं।

किशनगढ़ शैली के चित्रों में स्त्रियों के पहनावे में विशेष लहंगा, चोली तथा पारदर्शी आंचल तथा कहीं-कहीं साड़ी का अंकन मिलता है। चित्रकारों ने स्त्री परिधानों को लयपूर्ण फहरानों के माध्यम से रूपाकारों को विशेष गति एवं मुद्रा को लोच प्रदान किया है।[1] चित्र फलक 5, 11, 12, 30 इत्यादि चित्रों में लहंगा, ओढ़नी आदि को पारदर्शी बनाया गया है। ओढ़नी के नीचे से तंग कसी चोली, क्षीण कटि तथा लहंगे के नीचे से तंग पायजामा झलकता दिखायी दे रहा है जो नारी आकृति से शोभा प्रदान करता सा प्रतीत हो रहा है। चित्रकारों ने अधिकतर चित्रों में विशेषकर लहंगे तथा चुन्नी को विभिन्न प्रकार के मनोहारी रंगों से बेलबूटे व ज्यामितीय डिजाइनों से अलंकृत किया है।[2] चित्रों में पारदर्शी ओढ़नी तथा लहंगे की किनारी को विशेष महत्व दिया गया है जो वस्त्रों के सौन्दर्य को और अधिक बढ़ाते हैं। चित्र फलक 30, 44 में चित्रकारों ने बन्धेज के आकर्षक डिजायनों को बड़ी कुशलता पूर्वक चित्रित किया है। बन्धेज के दो परम्परागत रूप प्रचलित हैं - धार चोला और चुनरी।[3] कलाकार डिजाइनों के अनुरूप ही इन दोनों में से एक का अंकन करते थे। इस प्रकार लहंगा, चोली व ओढ़नी स्त्रियों की एक सुन्दर पोशाक मानी जाती थी। आज भी राजस्थान की कुछ जातियों में इस पोशाक का प्रचलन मिलता है।[4]

यद्यपि किशनगढ़ के चित्रों में स्त्री की वेशभूषा में लहंगा, चुन्नी व चोली का ही अधिक अंकन हुआ है परन्तु कहीं-कहीं साड़ी को भी चित्रित किया है। प्राचीन काल में साड़ी सकक्ष ढंग से पहनी जाती थी जो केवल अधोवस्त्र का काम करती थी।[5] प्रारम्भिक राजस्थानी चित्रों में हमें साड़ी ओढ़नी के रूप में दिखायी पड़ती है।[6] किशनगढ़ शैली के कुछ चित्रों में जो प्रायः अट्ठारहवीं शती के हैं। साड़ी को बहुत कुछ आधुनिक ढग से पहना चित्रित किया है। साड़ी का एक भाग स्तर के रूप में प्रयुक्त कर उसका कुछ भाग आगे खोंस लिया जाता था तथा दूसरा सिरा जिसे आंचल कह सकते हैं बाईं भुजा के ऊपर या नीचे होता हुआ सिर के ऊपर होकर दाहिने कन्धे को ढकता हुआ बायें कन्धे पर झूलता था।[7] चित्र फलक 28 में बणीठणी को इसी प्रकार पीली

1 M.S. Randhawa - *Indian Miniature Painting*, P. 51
2 राजस्थान वैभव श्री रामनिवास मिर्धा-अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग-2, *प्रेमचन्द गोस्वामी-किशनगढ़ शैली*, पृ0 96
3 डा. लल्लन राय - *रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में उल्लिखित वस्त्राभरणों का अध्ययन*, पृ0 91
4 डा. रामनाथ - *मध्यकालीन भारतीय कलायें और उनका विकास*, पृ0 46
5 राजकिशोर सिंह एवं श्रीमती उषा यादव - *प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति*, पृ0 40
6 मोतीचन्द्र - *प्राचीन भारतीय वेशभूषा का इतिहास*, पृ0 17
7 वही, पृ0 17

साड़ी पहने अंकित किया है। कभी-कभी दाहिनी ओर झूलने वाला छोर दाहिने से वक्षस्थल को ढकते हुये कटि मे बायें ओर खोंस लिया जाता था।[1] ऐसा चोली या अंगिया न पहनने पर किया जाता था। आज की भाँति उस समय भी स्नान, पूजा, पानी लेने या दूसरे श्रम साध्य कार्यों में भी आंचल के छोर को बाईं ओर खोंस लिया जाता था। इस प्रकार साड़ी अकेले ही अधोवस्त्र, वक्षोदेश को ढकने तथा शिरोवस्त्र आदि सबका कार्य करती थी। चित्र फलक 8 में नायिका को गुलाबी साड़ी पहने अंकित किया हैं। एक अन्य गोपी जो स्नान कर रही है साड़ी कमर तक बंधी है, एक अन्य पनिहारिन को लाल रंग की साड़ी पहने अंकित किया गया है। कुछ चित्रों में स्त्रियों को पूरी बांह की कंचुकी तथा लहंगे को मिलाकर बनी पोशाक का अंकन मिलता है जो स्त्रियों की पूरी पोशाक होती थी। यह टखनों से नीचे पैरों तक बनायी जाती थी। सम्भवतः यह मुगल प्रभाव था।[2] प्रारम्भ मे यह मुस्लिम स्त्रियों का सम्मानित पहनावा था परन्तु बाद में यह नर्तकियो की पोशाक के रूप तक सीमित रह गया था। चित्र फलक 4, 21 आदि चित्रों में इस तरह के अलंकृत वस्त्रों का चित्रण किया है तथा इस तरह की पारदर्शी पोशाक का भी अंकन हुआ है। चित्र फलक 4, 5 में कुछ स्त्रियों के सिर पर टोपी का अंकन हुआ है जो मुगल प्रभाव है। पुरूषों की भांति महिलाओ की पोशाकों में पटके का अंकन मिलता है। इसमें ओढ़नी या साड़ी को आगे चुन्नट देकर इस प्रकार खोंस लिया जाता था कि उससे पटके का भ्रम होने लगता था।[3] किशनगढ़ शैली के लगभग सभी चित्रों में ओढ़नी के कुछ भाग को पटके के रूप में अंकित किया गया है।

पुरूषों के पहनावे मे लम्बा जामा व पायजामा का अंकन अधिक मिलता है जो कि समसामयिक वेशभूषा पर आधरित था। परन्तु शाही वेशभूषा के रूप में पगड़ी या साफे तथा जामा का ही चित्रण हुआ है। जामे के ऊपर कमरबन्द और पैरों में पायजामा पहने चित्रित किया गया है। जामा इस समय राजपूत काल की एक सम्मानित वेशभूषा मानी जाती थी। यह पूरी बांह का स्त्रियों के पेशवाज जैसा पहनावा था।[4] उस समय जामा आदि वेशभूषा के साथ उत्तरीय नहीं लिया जाता था। परन्तु परम्परा प्रिय सामान्य जनता के बीच इसका प्रयोग अवश्य रहा होगा।[5] चित्र फलक 2, 9, 10, 34, 36 आदि चित्रों में इस शाही पोशाक का चित्रण मिलता है।

चित्र फलक 20, 37, 42, 101 आदि चित्रों में कृष्ण को भी राजकुमार के समान जामा पहने चित्रित किया गया है। चित्र फलक 35 में कृष्ण को जामे के साथ-साथ उत्तरीय पहने अंकित किया गया। इस समय आम जनता में जामे का प्रचलन अधिक नहीं था। इस तरह का कोई चित्र प्राप्त नहीं होता है।[6] उस समय जामे के नीचे तंग पायजामा पहनने का प्रचलन था जैसाकि इन चित्रों में चित्रित है। चित्र फलक 25, 34, 38 आदि। कुछ चित्रों में धोती का प्रयोग भी मिलता है परन्तु धोती का अंकन अधिकतर कृष्ण के वस्त्र के रूप में हुआ है।[7] जिसे अधिकांशतः पीला बनाया गया है। इसे पीताम्बर

---

1 राजकिशोर सिंह एंव श्रीमती उषा यादव - *प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति*, पृ0 50

2 A.K. Swamy -*Mughal Painting*, P. 34

3 डा. लल्लन राय - *रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में वस्त्राभरणों का अध्ययन*, पृ0 10

4 वही, पृ0 103

5 अत्रिदेव विद्यालंकार - *प्राचीन भारत के प्रसाधन*, पृ0 50

6 Dr. Sumhendra - *Splendid Style of Kishangarh*, P. 40

7 N.L. Mathur-*Indian Miniature Painting*, P. 50

वस्त्र भी कहा गया है। साड़ी की ही भांति धोती का प्रचलन भी अत्यन्त प्राचीनकाल से मिलता है। कृष्ण के परम्परागत वस्त्र के रूप में धोती को प्रायः पीले ही रंग से अंकित किया है। चित्र फलक 11, 12, 19, 31, 32। कुछ चित्रों में धोतियों को अलंकृत भी किया गया। चित्र फलक 7, 13, 26, 31, 39। इसके अलावा जनसामान्य लोगों को भी धोती पहने चित्रित किया गया है। चित्र फलक 3, 6, 22 आदि धोती के साथ ऊपरी वस्त्र उत्तरीय का अंकन भी मिलता है। धोती की भांति यह भी भारतीयों का प्राचीन वस्त्र है।[1] प्राचीन समय में धोती के साथ ऊपरी वस्त्र के रूप में उत्तरीय को लिया जाता था। प्राचीन काल की मूर्तियों व अजन्ता के चित्रों में इसे अत्यन्त कलात्मक ढंग से लेने का अंकन मिलता है।[2] राजस्थान की लगभग सभी शैलियों में इसका अंकन मिलता है परन्तु दरबारी वेशभूषा के रूप में इसका उल्लेख विरल ही मिलता है। अधिकतर चित्रों में कृष्ण के शरीर के ऊपरी भाग को नग्न ही चित्रित किया गया है परन्तु चित्र फलक 1 में उन्हें पारदर्शी कुर्ता या अंगरखा पहने दिखाया गया है। जिसमें उनका नीलवर्ण शरीर स्पष्ट रूप से झलक रहा है। पुरुषों की वेशभूषा में धोती व जामे के साथ-साथ पटका, पगड़ी व मुकुट का प्रचलन भी मिलता है। पटका कमरबन्द बांधने का प्रचलन भी धोती के ही समान भारत में अत्यन्त प्राचीन है। यह मुख्यरूप से जामे के ऊपर कमर से बांधा जाता था।[3] चित्र फलक 2, 9, 10, 24, 25, 34, 36, 101। वस्तुतः फेंटा या पटका मूलरूप से सैनिकों के लिये था जो जामा या अधोवस्त्र को अस्तव्यस्त होने से बचाने के साथ ही हथियार आदि लटकाने के उद्देश्य से धारण किया जाता था। बाद में यह वेशभूषा का अंग हो गया।[4] इस समय सिर पर प्रायः नुकीली पगड़ियां व मुकुट को चित्रित किया गया है। मुकुट का अंकन प्रायः कृष्ण के चित्रों में ही हुआ है। वास्तव में इस समय सम्पूर्ण ब्रजभाषा साहित्य की भांति चित्रों में भी कृष्ण को नायक माना गया है। अतः मुकुट का उल्लेख कृष्ण के लिये स्वाभाविक है।[5] चित्र फलक 7, 13, 31, 41, 42। इन चित्रों में अंकित मुकुट के उपर मोरपंखी के आकार का अलंकृत कलंगी का अंकन हुआ है। इस शैली के चित्रों में पगड़ियों को कलाकारों ने अत्यन्त अलंकृतता से अंकित किया है। जिसमें मोती की लड़ियों के साथ हीरे, जवाहरात लगाये जाते थे। उस पर जड़ाऊ सिरपेंच या कलंगी जैसा खोंसा जाता था। जामे की भांति यह भी राजपूत कालीन शाही वेशभूषा का एक अंग था। आज भी इस प्रकार की पगड़ी का प्रचलन राजस्थान के अनेक भागों में देखा जा सकता है।[6] श्री कृष्ण के अनेक चित्रों में इस प्रकार की अलंकृत मूंगिया, श्वेत आदि विभिन्न रंगों की पगड़ी का अंकन मिलता है। चित्र फलक 1, 19, 26, 27, 29, 37, 38, 101 आदि।

चित्र फलक 9, 10, 25, 34, 36 आदि चित्रों में राजकुमारों व राजाओं को विभिन्न अलंकृत पगड़ी के साथ सुसज्जित किया है। सामान्य दरबारी लोगों के साथ भी पगड़ी का अंकन किया गया है परन्तु ये पगड़ियां जड़ाऊ और कीमती न होकर सादी होती थीं[7] जैसाकि चित्र फलक 2, 3, 36 में अभिव्यंजित हो रहा है। इन चित्रों में अंकित अधिकांश पगड़ियों के पीछे झब्बा सा लटकता अंकित किया जाता था। कुछ चित्रों में पुरुषों

---

1 डा० मोती चन्द्र - *प्राचीन भारतीय वेशभूषा*, पृ० 31
2 राजकिशोर एवं श्रीमती उमा यादव - *प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति*, पृ० 40
3 W. G. Archer - *Indian Collection*, P. 40
4 R.K. Mukherjee - *The Culture and Art of India*, P. 35
5 M.S. Randhawa-*Indian Miniature Painting*, P. 35
6 सुखवीर सिंह गहलोत - *राजस्थान के रीति-रिवाज*, पृ० 35
7 राय कृष्णदास - *मध्यकालीन चित्रशैलियां*, पृ० 20

को जूते पहने भी अंकित किया गया है। यद्यपि इस समय के साहित्य में पुरूषों के लिये जूतों का उपयोग नहीं मिलता परन्तु चित्रों में इनका अंकन मिलता है। प्रायः उन चित्रों में ही जूतियों का अंकन मिलता है जिसमें जामे का चित्रण हुआ है। चित्र फलक 9, 10, 25, 34 आदि। ये सभी जूतियां आगे से नुकीली बनायी गयी हैं।

इस प्रकार किशनगढ़ शैली के चित्रों में तत्कालीन प्रचलित सभी वेश-भूषाओं का अंकन दृष्टिगोचर होता है। पुरूषों के झूलते मुहम्मद शाही जामें तथा मूंगिया श्वेत ऊँची पगड़ी के साथ धोती व उत्तरीय का अंकन है तो महिलाओं में ऊँची चोली में कसे वक्ष, उसके ऊपर ओढ़ी पारदर्शी चुन्नी, लम्बे चुन्नटदार लहंगे से आवृत्त किशनगढ़ी रूपयौवना राधा की बराबरी सी करती लगती है।

पृष्ठभूमि

काव्य एवं चित्रकला में विषय के अनुकूल चित्रण कर कलाकार अपने भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति करता है। चित्रकार शिल्प कौशल में चाहे कितना दक्ष हो परन्तु जब तक वह वस्तुओं व प्रतीकों का चयन नहीं करेगा, वह कलाकृति का निर्माण नहीं कर सकता। वस्तु चयन किसी भी देश के काल और परिस्थितिजन्य वातावरण पर निर्भर करता है।[1] चित्रकार सदैव अपने वातावरण से नये-नये भावों का चयन करता है और अपनी अभिव्यक्ति को कलात्मक सौन्दर्य से पूरित करके एक कृति के रूप का चित्रण प्रस्तुत करता है।[2] इसी क्रम में चित्रों में पृष्ठभूमि का चित्रण एक महत्वपूर्ण उपादान है। वास्तव मे मानव हृदय सौन्दर्य प्रेमी और चित्रकार सौन्दर्य का उपासक होता है। सौन्दर्य की सुन्दरतम अभिव्यक्ति ही कला है । चित्रकला के माध्यम से ही कलाकार प्राकृतिक सौन्दर्य और मनुष्य के अन्तः सौन्दर्य को व्यक्त करता है। इस प्रकार कला व प्रकृति एक दूसरे में समाविष्ट हैं। कला मानवीय मस्तिष्क की प्रतिक्रियाओ को वातावरण में अपने ढंग से व्यक्त करता है। कलाकार प्रकृति को अपनी अभिव्यक्ति का साधन अवश्य बनाता है क्योंकि प्रकृति का सौन्दर्य उसे कलासृजन की प्रेरणा देता है। रेखा, रंग, आकृतिस्वरूप सौन्दर्य के तत्व सभी प्रकृति प्रदत्त हैं।[3] यद्यपि प्रकृति के इस विराट प्रांगण में चित्रकार की अभिव्यक्ति सीमित रूपों में ही अभिव्यंजित हुयी है। इससे कलाकार की अल्पज्ञता और ईश्वर की सर्वज्ञता का अनुभव स्वयमेव हो जाता है। इसी कारण जयशंकर प्रसाद ने कहा है [4]

'वह विराट था हिम घोलता नया रंग भरने को आज
कौन हुआ यह प्रश्न अचानक और कौतूहल का राज।'

सर्वशक्तिमान की इस अलौकिक कृति को देखकर कलाकार आनन्दित हो उठता है और प्रकृति में क्षण-क्षण होने वाले परिवर्तनों को चित्रित करने का प्रयास करता है। प्रातः कालीन लालिमा, मध्यान्ह की सुन्दरता, सायंकाल का सूर्यास्त, तारों से झिलमिलाती रात्रि की शान्ति आदि प्रत्येक क्षण अपार सौन्दर्य का प्रदर्शक है।

---

1 R.K. Mukherjee - *The Culture and Art of India*, P. 5
2 बी. एन. वर्मा - *कोटा/बिंदित चित्रांकन परम्परा*, पृ0 100
3 शचीरानी गुर्टू - *कलादर्शन*, पृ0 10
4 जयशंकर प्रसाद - *कामायनी*, पृ0 20

राजस्थान के चित्रकारों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए चित्रों की पृष्ठभूमि का अंकन दो प्रकार से किया है घरेलू तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमि । किशनगढ़ की चित्रकला में दोनो प्रकार की पृष्ठभूमियों का अंकन मिलता है जो तत्कालीन स्थिति का परिचायक है[1] किशनगढ़ के कलाकारों ने प्रकृति की मनोहारिणी छटाओं को अपनी कलाकृतियों में उतारने का प्रयास किया है। चित्रों में वर्णित प्राकृतिक दृश्य देखने वालों को भावविभोर कर देते हैं। चित्रों में कलाकारों ने एक प्रकार से स्वप्निल संसार की अभिव्यंजना की है।[2]

भारतीय चित्रकारों ने प्रारम्भ से ही चित्रकला में प्रकृति को महत्व दिया है। अजन्ता की गुफा, मध्ययुगीन शैलियां, जैन, पाल, राजपूत, पहाड़ी शैलियों के चित्रकारों ने लता, पेड़, पौधे, गुल्मो तथा बारहमासा आदि ऋतुओं को अपने चित्रों में स्वच्छन्द व सजीव अभिव्यक्ति प्रदान की। मुगलशैली में भी जहाँगीर ने प्रकृति का विचरण करते हुये पशु-पक्षियों की भौतिक सूक्ष्मता की अभिव्यक्ति को परमआनन्ददायिनी कहा।

जापानी कला में प्राकृतिक क्रिया को चित्रकार के मस्तिष्क की आत्मिक प्रतिक्रिया का परिणाम बताया गया है।[2] इस आत्मिक प्रतिक्रिया का परिणाम किशनगढ़ शैली के चित्रकारों द्वारा बनाये गये चित्रों में झलकता है। यही कारण है कि किशनगढ़ का प्राकृतिक परिवेश उनकी प्रत्येक कृति में ध्वनित होता है। किशनगढ़ की भौगोलिक संरचना, पर्वत श्रृंखलायें, झीलों, सरोवरों इत्यादि का अंकन चित्रों में देखने को मिलता है। कलाकारों ने प्रकृति का अवलम्बन लेकर अपने उद्‌गारों को उसके सुन्दर परिवेश के माध्यम से व्यक्त किया है। उनके हृदय की कोमल भावनायें उनके तूलिका स्पर्श से जीवन्त हो उठीं। जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रकला में स्थान मिला।[3] चित्रकारों ने दरबारी जीवन से लेकर प्रणय गाथाओं तक, बारहमासा से लेकर रागमाला तथा नायिकाभेद तक, सामान्य जनजीवन से लेकर कथाचित्रों तक, सभी प्रकार के चित्रों में प्रकृति का अंकन मिलता है।

कलाकार विराट प्रकृति की गतिशीलता के किसी एक क्षण को ही बांधने का प्रयास कर पाता है। परन्तु उसी क्षण की अन्तरतम अनुभूति की अभिव्यक्ति चित्रकार को दृष्टा बनाती है और यही दृष्टा अपनी भावमय दृष्टि से सीमित साधनों में प्रकृति के सौन्दर्य को अभिव्यंजित करता है। किशनगढ़ शैली के चित्रों में अधिकतर प्रकृति के इन तत्वों का समावेश हुआ है-

1. वृक्ष- कदम्ब, आम्र, तमाल, खजूर, पलाश,केवड़ा, कदलीवृक्ष, इत्यादि।
2. लता व पुष्प - चम्पा, केतकी, जूही, चमेली, बेला, माधवी, हरसिंगार, मोगरा इत्यादि।
3. पशु-पक्षी - कोयल, खंजन, पपीहा, तोता, मैना, मयूर, हंस, बाज, कपोत, चकोर सारस, हिरण, वानर, गाय इत्यादि।
4. अन्य प्राकृतिक तत्व - नदी, सरोवर, झील, झरने, पहाड़, चन्द्रमा, आसमान, तारे, इत्यादि।

1 डा. जयसिंह नीरज - *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य,* पृ0 229
2 प्रेम चन्द्र गोस्वामी - *राजस्थान की लघु चित्रशैलियां,* पृ0 90
3 कृष्ण आनन्द राय - *राजस्थान में रागमाला परम्परा,* पृ0 40

वस्तु का चयन किसी भी कलाकार के लिए एक प्रमुख कलातत्व है। जिसमें कलाकार स्वच्छन्द प्रकृति एवं घरेलू पृष्ठभूमि का चित्रण कर भावभूमि तैयार करता है और उसमें नायक नायिका के भावों को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। यहां के प्राकृतिक वातावरण के सौन्दर्य के हरितमयी मनोरमा का चित्रण सभी चित्रों की पृष्ठभूमि में विशेष रूप से नियोजित किया है।[1] यहां की वनस्पति पेड़-पौधों के अंकन में यथार्थता परिलक्षित करने के लिए चित्रकार ने उनके सरल रूप को रेखाओं के माध्यम से दर्शाया है, जो हरे वर्ण की हल्की गहरी तानों द्वारा प्रयुक्त हुयी हैं। चित्र फलक 34, 34, 47।

किशनगढ़ के चित्रों में वृक्षों का अंकन प्रतीकात्मक रूप में हुआ है। वृक्षों के साथ देवताओं का सम्बन्ध लगभग सभी देशों में माना जाता है।[2] सामान्यतः वृक्ष से सृष्टि, जीवन की उत्पत्ति, विकास तथा उत्पादन व पुनरुत्पादन का सिद्धान्त व्यक्त होता है जो जीवन की निरन्तरता का सूचक है। वृक्षों से लिपटी लताएँ श्रृंगार का प्रतीक हैं। फूलों एवं फलों से युक्त वृक्ष कामना एवं यौवन को सूचित करता है। किशनगढ़ के अधिकतर चित्रों में वृक्षों को हरा-भरा, फलों से लदा एवं लताओं से युक्त दिखाया गया है।[3] चित्र फलक 3, 32, 33, 38, 41, 43, 47, 52, 53, 61। पृष्ठभूमि में फलदार वृक्षों के अलावा पुष्पों, लताओं और कुंजों को भी अंकित किया गया है। वृक्ष तथा पौधे एक क्रम से लगाये जाते थे। मण्डप के आसपास छोटे गुल्म, लताएँ, मण्डप और सबसे पीछे बड़े वृक्षों का अंकन किया गया है। एक भाग में एक ही श्रेणी के फूल या वृक्ष लगाये जाते थे। चित्र फलक 26, 35, 33, 39, 52 इत्यादि।

किशनगढ़ शैली में पुष्पों को भी प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त किया गया है। भारतीय पुष्पों में कमल का प्रमुख स्थान है।[4] जल से सम्बन्धित होने के कारण यह आदि सृष्टि का प्रतीक रहा है। इसी से सृष्टि के देवता, ब्रहमा तथा विष्णु व समुद्र से उत्पन्न होने वाली लक्ष्मी से इसका सम्बन्ध है। जल में रहकर निर्लिप्त रहने वाले कमल पुष्प ने दार्शनिकों, धर्मिकों तथा कलाकारों को यथेष्ठ रूप से प्रभावित किया है।[5] वरन् अपने रूप, रंग के कारण कमल श्रृंगार का प्रतीक भी है। इस रूप में यह मुख, हाथ, पैर, नेत्र का उपमान तथा कामदेव के पांच पुष्पबाणों में से एक है। मिस्र में कमल को जीवन की प्रथम सृष्टि से सम्बन्धित माना गया है। मध्यकालीन यूरोप में यह केन्द्र से सम्बन्धित माना गया है। अतः हृदय का प्रतीक भी है। हिन्दू, बौद्ध, जैन तीनों धर्मों में इसका अकंन हुआ है। अजन्ता के चित्रों में इसका सौन्दर्य विशेष दृष्टव्य है।[6] किशनगढ़ के लगभग सभी चित्रों में कमल दल का अंकन किया गया है। चित्र फलक 21, 27, 33, 41, 48। चित्र फलक 44 में स्वयं नायिका को झील के मध्य मे चित्रित किया गया है जिसमें नायिका अपनी पतली सुकोमल उंगलियों से कमल के पुष्प को तोड़ रही है। चित्र फलक 30 में राधा अपने हाथ में कमल की पंखुड़ियों को पकड़े हुये है। कुछ चित्रों में कलाकारों ने इन्हें राधा-कृष्ण की शय्या के रूप में चित्रित किया है। चित्र फलक 15, 55, 56।

1- Dr. Daljeet - *The Glory of Indian Painting*, P. 20

2 राम चरण शर्मा 'व्याकुल' - *राजस्थान की चित्रशैलियां*, पृ0 50

3 मोहन लाल गुप्ता - *राजस्थान की लघुचित्र शैलियाँ*, पृ0 15

4 Jameela Brij Bhusjhan - *The World of Indian Miniature*, P. 20

5 *वही*, पृ0 21

6 आर. वी. पाण्डया - *प्राचीन भारत*, पृ0 35

राजस्थानी चित्रकला में भावों को प्रदर्शित करने के लिये पशु-पक्षियों को सांकेतिक रूप में प्रयोग किया गया है। वहीं मुगल शैली में इन्हें अधिक विलक्षणता के साथ प्रदर्शित किया गया है।[1] पशुओं के चित्रण में उनके प्रति किसी भी उत्सुकता के दर्शन नहीं होते बल्कि कुछ विशेष भावों के निरुपण के लिये उनका प्रयोग किया जाता है। भले ही वैचारिक रूप से उन्हें महत्व दिया जाता हो परन्तु उनका वाह्य रूप ही केवल पशुगत माना जाता है। इससे भारतीय जनमानस में बैठी धारणा जिसके तहत पशुओं को मनुष्य की तरह ही सोचने तथा व्यवहार करने वाला माना जाता है, के स्थानान्तर उन्हें निरूपित करने की अवधारणा के तत्व पाये जाते हैं। यह चित्रकला शैली उस पीढ़ी से सम्बन्धित है जिसने सम्पूर्ण चराचर जगत में एक ही आत्मा के दर्शन किये । इस प्रकार मनुष्य तथा पशुओं की परस्पर भावनात्मक निर्भरता की पहचान ही नहीं की बल्कि अच्छी तरह बढ़ाचढ़ा कर वर्णित भी किया है। भारतीय साहित्य मे पशुओं को मनुष्य की तरह सोचते एवं आचरण करते दिखाया गया है। यही प्रवृत्ति कलाकृतियों में भी पायी जाती है।[2] किशनगढ के चित्रों में पशु-पक्षी का अंकन अपनी अलग मौलिकता लिये हुये है। चित्र फलक 40 में अलग-अलग पिंजरों में बन्द तोता तथा मैना का अंकन चित्रकारों ने प्रतीकात्मक ढंग से किया है। चित्र में सम्भवतः इनकी उपस्थिति यह दर्शाती है कि राधा कृष्ण के सम्मोहन में बंध चुकी है।[3] इसी चित्र में कृष्ण के निकट मृगयुगल तथा सारसयुगल नायक-नायिका के अगाध प्रेम के रूप में प्रेरित हुये। मयूर के नीलवर्ण को इस शैली में इतनी महत्ता प्रदान की गयी है कि कृष्ण के प्रतीक रूप में उसे प्रयुक्त किया गया है।[4] चित्र 48 में राधा अपनी दो सखियों के साथ स्नानगृह में हैं। राधा के समीप ही मोरों का अंकन किया गया है जो कृष्ण की सांकेतिक उपस्थिति को दर्शाती है।[5] चित्र फलक 60 में अर्द्धनग्न नायिका को एक चौकी के ऊपर खड़े होकर अपने गीले बालों से पानी निचोड़ते दिखाया गया है, नायिका के ठीक पीछे मोर का अंकन है। मोर अपनी चोंच इस प्रयास में आगे बढ़ा रहा है ताकि उसके बालों से निकली पानी की बूंदों को ग्रहण कर सके। मोर को नायिका के प्रेमी के प्रतिरुप में चित्रित किया गया है। अन्य भारतीय शैलियों में इस विषय को और अधिक कामुकता के साथ दिखाया गया है।[6]

चित्र फलक 34 में राजकुमार साहसमल्ल को बाज के साथ चित्रित किया गया है। चित्र में बहेलियों के हाथों में आखेट किये गये सफेद वत्तख कई प्रकार के कालहंस या सोहन चिड़िया जैसे पक्षी का अंकन है। 'सांझीलीला' नामक चित्र में (चित्र फलक 33) में राधा के सिंहासन के समीप सारस मोर तथा लाल तोते का जोड़ा अंकित किया गया है, ये सभी समान

---

1 A. K. Swamy - *Rajput Painting*, P. 69
2 भावना आचार्य - *प्राचीन भारत के रूप श्रृंगार*, पृ0 80
3 Eric Dickinson - *Kishangarh Painting*, P. 11
4 M. S. Randhawa -*Indian Miniature*, P. 52
5 वही, पृ0 53
6 R.K. Tandon-*Indian Miniature Painting*, P. 108

रूप से आराध्यदेव कृष्ण और उनकी प्रेयसी राधा के बीच प्रगाढ़ प्रेम को इंगित करते हैं। इस प्रकार किशनगढ़ शैली में मयूर, सारस आदि पक्षी प्रेम सौन्दर्य के प्रतीक रूप में अंकित हुये हैं। वर्तमान युग मे भी मोर भारत का राष्ट्रीय पक्षी है। राजस्थान की अन्य शैलियों में भी इसका अंकन अनुपस्थित विह्वल प्रेमी के प्रतीक रूप में हुआ है।[1] श्रीकृष्ण के चित्रों में मुकुट के रूप में मोरपंखी अनिवार्य रूप से चित्रित की गयी है। सम्भवतः यह घनश्याम के प्रेमी भक्त का चिन्ह है जिसे इतना आदर दिया गया है।[2]

किशनगढ़ शैली के चित्रों में पशुओं में गौ, वानर, वृषभ अश्व इत्यादि का अंकन मिलता है। प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं में राजचिन्ह व धर्म प्रतीक के रूप में किसी न किसी पशु का अंकन हुआ है। चित्र फलक 38 में कृष्ण के निकट अंकित हरिणों का युगल नायक-नायिका के प्रेमभाव को दर्शा रहा है। चित्र फलक 47 में नायिका को मृग के साथ अंकित किया गया है। चित्र फलक 28 में जो नागरीदास व बणीठणी का प्रसिद्ध चित्र है में पृष्ठभूमि में बनी दीवार तथा वृक्षों पर उछलते-कूदते वानरों का सुन्दर अंकन हुआ है। किशनगढ़ शैली में अश्व को शक्ति का प्रतीक माना गया है। शासक वर्ग सवारी के रूप में अश्व का प्रयोग करते थे। चित्र फलक 9, 10, 25, 74 इत्यादि। लगभग सभी चित्रों में घोड़ों की टांगे अधिकतर लालरंग की तथा ऊपरी हिस्सा श्वेत रंग से चित्रित किया गया है। मानसिक रूप से यह उद्दाम वासना का प्रतीक माना गया है। भारतीय चित्रकला के साथ-साथ असीरिया, रोम, यूनान, अरब, फारस, मंगोलिया, जापान आदि चित्रकला में भी इसका अंकन विशेष रूप से मिलता है।[3] किशनगढ़ के चित्रों में वृषभ का भी अंकन हुआ है। चित्र फलक 25 में राजा साहसमल घोड़े पर सवार वृषभ का शिकार करते अंकित हैं। भारत में वृषभ धर्म का भी प्रतीक माना गया है। यह शिव का वाहन और कृषकों का बन्धु हैं। इस प्रकार यह आध्यात्मिक और लौकिक दोनों प्रकार की उन्नति का प्रतीक है। भगवान कृष्ण के चित्रों में गायों का भी चित्रण मिलता है। हिन्दूधर्म में गायों को अत्यन्त पूजनीय माना गया है। इसलिये भगवान कृष्ण के साथ चित्रित मिलती हैं।[4] चित्र फलक 7 में कृष्ण सिंहासन पर बैठे अपनी बांसुरी की मधुर तान से सम्पूर्ण वातावरण को सम्मोहित कर रहे है। पृष्ठभूमि में हरे-भरे वृक्षों तथा गायों का अंकन है। गायों को बांसुरी की धुन सुनते हुए सम्मोहित अवस्था में चित्रित किया गया है।

किशनगढ़ के चित्रों में वास्तु संरचनाओं से युक्त पृष्ठभूमि का अंकन अति विशिष्ट है। जो सम्भवतः किशनगढ़ तथा रूपनगढ़ शहर से प्रेरित था। चित्रों में सामान्यतः ऊपरी हिस्से में एक बुर्जी, वाली दीवार या रेलिंग बनायी जाती थी। जिसके ऊपर फूलों की बेल, पुष्प गुच्छ तथा झाड़ी का अंकन अवश्य होता था। भवन के ऊपरी भाग में जालीयुक्त रेलिंग या दीवार का अंकन हुआ है। खुली छत में भी ऐसी ही जालीयुक्त रेलिंग से घेरकर उसके चारों ओर खिले फूलों व लतरों की झाड़ियां बना दी जाती थी। झाड़ियों के पीछे सुनहरा लालिमायुक्त आकाश दिखाया जाता था जिसमें कहीं-कहीं धूसर बादलों का अंकन हुआ है। साथ ही पक्षियों को आकाश में उड़ते या वृक्ष पर बैठे दिखाया गया है। चित्र की अग्रभूमि में फूलों की क्यारी या झील या

---

1 Hilde Bach - *Indian Love Painting*, P. 82

2 जी. के. अग्रवाल - *कला समीक्षा*, पृ० 127

3 M.S. Randhawa - *Indian Miniature* P-47

4 R. K. Mukherjee - *The Culture Art of India*, P. 30

सरोवर मे खिले पुष्पों को चित्रित किया गया है। कुछ चित्रों में पृष्ठभूमि के पिछले भाग में झील का अंकन हुआ है जिसमें तैरती लाल रंग की नौकाओं का चित्रण मुख्य है। झील के उस पार के दृश्यों को सुन्दर रूप से दिखाया गया है। चित्र फलक 27, 33, 45, 48, 52, 60, 72 आदि में इस तरह के दृश्यों का अंकन मिलता है।

आकृतियां जो प्रायः एक चश्मी होती थीं[1] कभी-कभी किसी उद्यान में, किसी समतल भूमि पर और प्रायः प्रासाद या भवन के एक भाग को प्रदर्शित करने वाले दृश्यों में चित्रित होती थीं। चित्र फलक 15, 50, 57, 58, 60। प्रायः चित्रों में राजमहल या भवनों का बाह्य भाग ही दृष्टिगत होता है। परन्तु कुछ चित्रों मे महल के भीतरी भागों का भी चित्रण किया गया है। चित्र फलक 5, 28, 37 इत्यादि। इन भवनों, अट्टालिकाओं इत्यादि के अंकन में मुगल वास्तुकला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सम्भवतः ये कलाकार मुगल वास्तुकला से प्रभावित थे।[2] मुगल वास्तुकला की भांति इन दीवारों व स्तम्भों पर भी उत्कीर्ण बेल-बूटे तथा डिजाइनों का अंकन हुआ है और रेलिंग में बनी अलंकृत कटावदार जालियों का चित्रण मिलता है। पर्दों व चिकों पर महीन आलेखन का अंकन मिलता है। चित्र फलक 58, 71, 78, 86, 81 इत्यादि। 'चाँदनी रात' (चित्र फलक 29) नामक चित्र में स्फुरदीप्त आकाश का चित्रण है जिसमे चन्द्रमा अपने पूर्ण यौवन पर है और उसके प्रकाश से यमुना नदी भी प्रकाशित हो रही है।[3] नदी अर्द्धगोलाकार रूप में चित्रित है जिसमें नावों का अंकन है। चित्र में दोनों ओर संगमरमरीय अलंकृत मण्डप है जहां कुछ गोपियां बैठी हैं तथा कुछ खड़ी हैं। उनके हाथों मे विभिन्न वाद्य यन्त्रों का अंकन है। मण्डप के नीचे घुमावदार संगमरमर का पुल है। पुल के पास ही फव्वारे का अंकन है। चित्र के मध्य भाग में आमने-सामने बने दो अलग-अलग चबूतरों मे दिव्यप्रेमी राधा व कृष्ण बैठे एक-दूसरे को मंत्रमुग्ध भाव से निहार रहे हैं। चित्र का सम्पूर्ण वातावरण प्रेमी युगल की उद्दीपन क्रिया में सहायक है ।

चित्र फलक 27 में राधा कृष्ण एक मसनद के सहारे बैठे हैं। केन्द्रीय मण्डप के दोनों ओर दो संगमरमरी मण्डप बने हैं और उन मण्डपों के पीछे हरे-भरे वृक्षों का अंकन है। क्षितिज पर दूर सुनहरे नारंगी बादलों का जमावड़ा है। इन सब की एकरसता को तोड़ते हैं मन्दिर के शिखर और संगमरमर गुम्बद जो हरित समुद्र में सिर उठाये खड़े अंकित हैं[4], मध्य मण्डप में रक्तिम लाल रंग की चिक का अंकन है। चित्र के द्वितीय स्तर पर मुगलकालीन परम्परा से प्रभावित फव्वारे चल रहे हैं। महीन झीने मलमल के परिधानों में सजे राधा कृष्ण के परिधानों के ही समान बैठे हुए संगीतज्ञ भी सुसज्जित है। मध्य फव्वारे का शीर्ष हाथी का शीर्ष के है, इसी के पास दो जल मुर्गियां तथा दो सारस का अंकन हुआ है। चित्र में सामने की तरफ बने वाल्कनी में दो छोटे फव्वारों का अंकन है। उसके दोनों ओर गोपियों का अंकन है जो सामने बनी अलंकृत संगमरमर की छोटी दीवार या रेलिंग पर बैठी हैं। दाहिनी ओर पांच गोपियों का एक झुण्ड है जो मछलियों को चारा खिला रही हैं। बीच पट्टी पर

---

1 Anjana Chakarawarti - *Indian Miniature Painting*, P. 67
2 Philip & Rowson - *Indian Painting*, P. 35
3 Rooplekha, Vol-XXV, Part I, Banerjee - *Kishangarh Painting*, P. 19
4 वही, पृ० 20

चिड़ियों का एक जोड़ा चित्रित किया गया है। इस चित्र की संरचना में एक विशिष्ट अनुपात में ज्यामितीय रूपवाद है जिसमें दृष्टि भटकने नहीं पाती बल्कि केन्द्रीय मण्डप पर टिकी रहती है।[1]

चित्र फलक 53 में राधा-कृष्ण को फूलों की पर्णशाला में विश्राम करते हुए अंकित किया है। इसका प्राकृतिक परिवेश अत्यन्त मनोहारी है।[2] उनके चारों ओर विभिन्न प्रकार के वृक्ष आम, केला, कदम्ब आदि का अंकन है जो सम्पूर्ण वातावरण को एक ताजगी सा प्रदान कर रहे हैं। अग्रभाग में झील का अंकन है जिसमें एक गोपी कमल पुष्पों को तोड़ रही है। चित्र फलक 49 में किशनगढ़ के गुण्डोलाव झील का अंकन है जिसमें राधा-कृष्ण अपनी सखियों के साथ एक बड़ी सी लालरंग की नौका में विहार कर रहे हैं। चित्र में पिछले भाग में पहाड़ो पर श्वेत रंगों के भवनों व प्रासादों का अंकन है। आकाश आसमानी व नारंगी रंग से चित्रित किया गया है। अग्रभाग का वातावरण बड़ा मनोहारी है जिसमें विभिन्न प्रकार के वृक्षों तथा पशुओं का अंकन है।

इस प्रकार इन चित्रों का अध्ययन करने के पश्चात कहा जा सकता है कि चित्रकार की दृष्टि कहीं भटकी नहीं है। उसे जरा भी अवसर मिला है तो उसे व्यर्थ नहीं जाने दिया है। प्रणयी हृदय के उद्‌गार को प्रदर्शित करने के लिए प्रकृति एक अच्छे माध्यम के रूप में प्रयुक्त हुयी है। संयोग के दृश्यों में जहाँ रंग बिरंगे खिले पुष्प हृदय की लालसा तथा उमंग की झाँकी को व्यक्त करते हैं, वहीं वियोग के दृश्यों में शान्त स्थिर जलाशय, स्तब्ध, पशु-पक्षी, सूखी लहरें विरही की भावनाओं का दर्पण बन जाते हैं। चित्रों में किशनगढ़ के कलाकारों ने वाह्य वातावरण में मुगल तकनीक को अपनाये जाने का प्रयास किया है, किन्तु चित्र की भावनात्मक अभिव्यक्ति ने किशनगढ़ की श्रृंगारिक भावनात्मक पृष्ठभूमि को पराकाष्ठा पर पहुँचाया। यही कारण है कि चित्रों में प्रेम के रहस्यवाद की झलक मिलती है[3]। इसके अतिरिक्त कलाकार ने संगमरमर के राजसी भवनों, राजप्रासादों का रूपांकन कर भौतिक वातावरण की यथार्थता को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।[4] अरण्य को स्वच्छन्दता से अंकित कर भावनात्मक स्वच्छन्दता को स्थापित किया गया है। अरण्य की पृष्ठभूमि में सान्ध्यकालीन वेला में आकाश में लाल और सुनहरे रंगों का प्रयोग कर के आध्यात्मिक प्रेम को पूर्णता से प्रतिष्ठित किया है[4] जो उसकी अपनी मौलिक विशेषता है। परन्तु प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप का अंकन अत्यन्त कुशलता से करने के बाद भी कलाकार मौसम के प्रभाव का अंकन सटीक ढंग से नहीं कर सका है। पत्थर या चट्टान तथा पहाड़ियाँ एक ही स्वरूप धारण किये रहते हैं। उगते सूर्य का कोमल रश्मियों से स्वर्ण मण्डित पर्वत कहीं नहीं दिखते हैं। यद्यपि डूबते सूरज से लाल हुए आकाश की सुनहरी लालिमा नदी के शान्त जल पर टुकड़ों के रूप में झिलमिलाती है। शरदकालीन सुबह में तृणों पर चमकती उज्ज्वल ओस और रात्रि की स्निग्ध चाँदनी और कुहासे की धूपछाँव उनकी तूलिका की परिधि से बाहर ही रही है।

---

1 Rooplekha Vol. XXV Part I, Banerjee - *Kishangarh Painting*, P.20
2 M.S. Randhawa - *Kishangarh Painting*.
3 डा० सुमहेन्द्र - *राजस्थानी रागमाला चित्र परम्परा*, पृ० 54
4 वही, पृ० 55

चित्रों में भावों की अभिव्यक्ति

किशनगढ़ शैली के चित्र अभिव्यक्ति के कलात्मक, भावात्मक, रसात्मक, संगीतमय प्रवाह है। इस शैली के सभी चित्र पूरी तरह से भाव तथा रस में डूबे हुये हैं। वास्तव मे किशनगढ़ शैली को प्रमुख रूप से पोषित करने वाले नागरीदास महान चित्रकार तो थे ही, साथ-साथ विद्वान कवि भी थे। उनमे कवि व चित्रकार दोनो एकसाथ होने के कारण ही किशनगढ़ के चित्रो मे भावाभिव्यक्ति तो सर्वोपरि है ही, साथ मे तकनीकी दृष्टि से भी इतने सक्षम है कि किशनगढ़ में उनके बाद कोई भी कलाकार उस तकनीकी उच्चता तक नहीं पहुँच सका।

भाव का अर्थ होता है उद्वेग, आवेग, संवेग, आवेश, इच्छा व व्यंग्य इत्यादि का अनुभाव। यह अनुभव ही हमारी इन्द्रियो के द्वारा मन और मस्तिष्क को प्राप्त होकर आत्मा को प्रभावित करता है। भाव से रहित चित्र निष्प्राण सा प्रतीत होता है और भावों की अभिव्यक्ति में किशनगढ़ के चितेरे कुशल सिद्ध हुये हैं।[1]

किशनगढ़ के चित्रों में नेत्रों द्वारा मनोभावों की अभिव्यक्ति विशेष रूप से मिलती है। चित्र फलक 9 में राधा के नेत्र लज्जा से झुके हुये है और कृष्ण भावविह्वल होकर राधा की छवि को निहार रहे हैं। इसी प्रकार चित्र फलक 26 में वणीठणी एक विदुषी महिला की तरह पीला वस्त्र धारण किये नागरीदास की ओर बढ़ रही है और नागरीदास जोगिया वस्त्र धारण किये पुकारत है। इन चित्रों में बणीठणी के नेत्रों द्वारा भावो को स्पष्ट किया गया है। चित्र फलक 32 में राधाकृष्ण के प्रेम के भावों की अभिव्यक्ति की झलक मिलती है। वे प्रेमालाप में इतने व्यस्त हैं कि उन्हे आस-पास की सुध नहीं है। उनके इस प्रेमालाप को देखकर सखियां आपस में कानाफूसी कर रहीं हैं तथा उन्हें बड़े ही कौतूहलपूर्ण ढंग से देख रहीं हैं। चित्र फलक 35 में राधाकृष्ण की संयोगावस्था का चित्रांकन है जो वनकुजो के मध्य अपने प्रेम मे लीन है। चित्र फलक 29 में राधाकृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है। चित्र में राधाकृष्ण दोनों अलग-अलग छतों पर आमने-सामने बैठे हुये चित्रित किये गये है तथा दोनो के नेत्रो से प्रेम के भावो की अभिव्यक्ति हो रही है।

किशनगढ़ के चित्रकारो ने नायक-नायिकाओं की श्रृंगारिक लीलाओं की अभिव्यक्ति में ही विशेष रूचि ली है। प्रायः नायक-नायिका के रूप में राधाकृष्ण को सुन्दर नौकाओ मे जलविहार करते हुये चित्रित किया गया है तथा मिलनस्थली के रूप में कुंजो, लतिकाओं के झुरमुटों या सघन वृक्षों से आच्छादित पीठिकाओं व भवनों का चयन किया है।[2]

चित्रों मे भावों की अभिव्यक्ति में किशनगढ़ के कलाकार कुशल चितेरे सिद्ध हुये। कलाकारों ने नागरीदास व बणीठणी के प्रेम को राधाकृष्ण के माध्यम से व्यक्त किया है। यद्यपि इन चित्रों में प्रेम व भक्ति भावना का ही चित्रण विशेष रूप से हुआ है परन्तु किसी-किसी चित्र में क्रोध, हास्य, उद्विग्नता आदि भावों की अभिव्यक्ति भी देखने को

---

1 रामगोपाल विजयवर्गीय - राजस्थानी चित्रकला पृ0 2

2 डा. जयसिंह नीरज - राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य पृ0

मिलती है। चित्र फलक 12 में जितनी आकृतियों का अंकन है वे सब अलग-अलग भावों की अभिव्यक्ति करती हैं। होली के इस चित्र में कृष्ण राधा के ऊपर लाल रंग का गुलाल फेंक रहे हैं और राधा स्वयं को कृष्ण से बचाने की चेष्टा में जानबूझ कर पृथ्वी पर फिसलकर गिर पड़ी हैं[1]। एक तरफ खड़ी सखियां जो पानी भरने जा रही थीं वे भी इस क्रीड़ा का आनन्द उठाते हुये इस हास-परिहास में सम्मिलित हो गयीं। नेत्रों व भ्रू की भंगिमा ने राधा के मुख पर शोखी व चपलता का भाव अभिव्यंजित कर दिया। प्रस्तुत आकृतियों का शरीर सौष्ठव, सुकुमार मुखाकृति की सुघड़ता, त्वचा की गुलाबी रंगत इस चित्र में दर्शनीय हैं।

इस प्रकार किशनगढ़ शैली के चित्र भावों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यन्त उच्चकोटि के हैं, जो भावों की प्रस्तुति में पहाड़ी शैलियों के समकक्ष पहुँच जाते हैं। आकृतियो की मुखाकृतियां, भाव भंगिमायें, मुद्रायें आदि उनके मनोभावों को इतने स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं कि चित्र की घटना का विवरण बिना बताये ही समझ में आ जाता है। निः सन्देह भावों की अभिव्यक्ति में किशनगढ़ के चित्र विशेष स्थान रखते हैं।

---

1 P Pal - *The Classical Tradition of Rajput Painting*, P. 40

पंचम अध्याय

(a) किशनगढ़ चित्रशैली की विशेषताओं का मूल्यांकन

(b) आधुनिक चित्रकला पर किशनगढ़ चित्रशैली का प्रभाव

(c) उपसंहार

पंचम अध्याय

किशनगढ़ चित्रशैली की विशेषताओं का मूल्यांकन

राजस्थान की लघुचित्र शैलियों में किशनगढ़ शैली का विशिष्ट स्थान है। यह कलात्मक दृष्टि से इतनी समर्थ, सशक्त और आकर्षक है कि इस शैली में बने चित्र दर्शकों की दृष्टि को बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। अपने आकर्षक एवं गतिमान रेखा सौन्दर्य, रसमग्न मनोहारी रंग योजना तथा लावण्यमय संयोजन वैशिष्ट्य के कारण किशनगढ़ शैली के चित्र न केवल भारत में वरन् विश्व भर में प्रसिद्ध हैं। काव्य

तथा कला का जो अद्वितीय संगम इस शैली के चित्रों में देखने को मिलता है, वह अद्वितीय है।

कृष्ण भक्ति की अजस्र भक्तिधारा से सजी किशनगढ़ शैली में, नागरीदास ने कृष्ण और राधा का मानवीयकरण मनुष्य की आदिम भावना का पुरुष का नारी के प्रति तथा नारी का पुरुष के प्रति आकर्षण का चित्रण बड़े ही स्वाभाविक रूप में किया है। वास्तव मे इस श्रृंगार के कथानकों का आदि द्रविड़ आभिर आदिम जाति का असीम सत्ता में विश्वास स्वर्ग के संरक्षक कृष्ण को पुरुष रूप मे तथा उनकी संगिनी राधा का निरुपण प्रकृति के रूप मे किया था, जिसका निरुपण नागरीदास एवं अन्य कलाकारों द्वारा विभिन्न रुपाकारों एवं कथानको के दो हजार वर्ष पश्चात् रसमय कवित्तों में हुआ।

इस समय वैष्णवधारा भारतीय जनमानस के लिये आध्यात्मिक अनुभूति सिद्ध हुयी क्योंकि मानवीय भौतिक आयामों पर आधारित होते हुये भी आध्यात्मिकता से पूर्ण यह वैष्णवधारा ईश्वरीय अनुभूति की धारणा के पूर्ण निकट था। निर्गुण धर्म की अनुभूतियां जो साधारणजन की समझ से परे थी वहाँ यह सगुण भक्तिधारा उनका दिशा-निर्देश बनीं। बौद्ध सहजयानियों की साधना में जो स्थान शक्ति व शिव का है, वही स्थान वैष्णव की सहज साधना में राधा व कृष्ण को प्राप्त है। सम्पूर्ण संसार में नारी मात्र राधा तत्व तथा पुरुष मात्र कृष्ण तत्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। कृष्ण रस है तथा राधा रति है। कृष्ण मदन है तथा राधा मादन है। इसी प्रकार राधा चिरभोग्या तथा कृष्ण चिरभोक्ता हैं। कृष्ण राधा को नायक-नायिका के रूप में चित्रित करने की परम्परा इस समय नवीन न थी। लगभग सभी राजस्थानी रजवाड़ों में इन दोनों की युगल रूपलीलाओ पर चित्रण हुआ परन्तु किशनगढ़ शैली में इन्हें विहंगम एवं विशिष्ट पारिमार्जित स्थान मिला। राजस्थान की अन्य शैलियों में कृष्ण-राधा की एक आध्यात्मिक प्रकृति का भौतिक रूप में चित्रण न होकर माध्यमिक परिप्रेक्ष्य में ही हुआ है किन्तु किशनगढ़ शैली में ही सर्वप्रथम एक मौलिक प्रक्रिया का अनुभव हुआ, जिसमें सामाजिक राजवैभव के विशिष्ट विद्वान नागरीदास एवं विदुषी महिला बणीठणी की अभिव्यंजना नायक-नायिका एवं राधा-कृष्ण के प्रतीकात्मक बिम्बों के रूप में हुयीं। राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक और भौतिक जीवन के समागम के कारण ये शैली इतनी भावपूर्ण व रससिक्त हो सकी। यही इस शैली की पावनता और विशिष्टता है।

किशनगढ़ शैली के लघुचित्रों में राधा-कृष्ण के संयोगावस्था से सम्बन्धित प्रसंगों का चित्रण जितनी बहुलता से हुआ है उतना विप्रलम्भ श्रृंगार रस का नहीं। किशनगढ़ शैली के लघुचित्र तत्कालीन कलाकारों की साधना व भावना के साक्षी है। यहां के चित्रो का विषय प्रधानतः राधा और माधव की प्रेमलीला, प्रिय-प्रीतम मिलन तथा मानचित्रण ही रहा है। यहाँ राधा के चेहरे को आधार मानकर एवं उससे प्रेरित होकर नारी चित्रण किया गया है। निहालचन्द द्वारा चित्रित राधा के चित्रों में नारी सौन्दर्य को राजपूत स्त्रियों के समान सर्वोत्तम ढंग से व्यक्त किया गया है। वास्तव में किशनगढ़ शैली के संस्थापक नागरीदास ने ही सर्वप्रथम विधिवत अपनी चित्रशाला स्थापित की और स्वयं उसने किशनगढ़ की चित्रकला में स्त्रियों की आकृतियों को सुमधुर, कोमलांगी तथा मौलिक रूप प्रदान किया है। इस प्रकार किशनगढ़ के चित्रकार

राजा सावन्तसिंह के समय परम्परागत लोककला में प्रचलित मीन नेत्र, गोल भारी चेहरे न बनाकर, मेहराबदार भृकुटी खंजन पक्षी जैसे विशाल आकर्षक नेत्र, सुकोमल पतले संवेदनशील होंठ, लम्बी नासिका व नुकीली चिबुक बनाकर नारी मुखाकृति के भाव को प्रधानता प्रदान की है। यह निश्चित है कि इस शैली में सुन्दरी बणीठणी को मॅाडल के रूप में चित्रकारों ने अत्यधिक प्रेरणा लेकर परम्परागत लीक से हटकर नवीन विधान के साथ कोमल, छरहरी, पतली मुखाकृति वाली स्त्री आकृति की रचना की। किशनगढ़ शैली के चित्रों में विशाल तथा आकर्षक नेत्रों की अभिव्यंजना इसकी मौलिकता है। नेत्र चित्रों में व्याप्त रस एवं भाव कारक तत्व हैं। न केवल स्त्री आकृति में ही इस प्रकार के नेत्रों का अंकन हुआ वरन् पुरुषाकृति में भी इस प्रकार की अभिव्यंजना हुयी। किशनगढ़ शैली के चित्रों में नेत्रों की अलग ही पहचान है जो अन्य राजस्थानी शैलियों से विलग है। रसरंजित मृदुल नवीनता से छलकती हुयी प्रेम विह्वलता, मिलन की आशा और एक दूसरे के अनुराग में डूबी यह अपने में चिरस्थायी रूप को समाये रखने की क्षमता की धनी किशनगढ़ की आँखें धन्य हैं जो अलग से ही पहचान में आ जाती हैं।

किशनगढ़ शैली के चित्रों में नारी की मुख-मुद्रा, शारीरिक गठन और नेत्रों का रेखांकन मस्तक से नाक तक रेखा में प्रवाहमान चित्रण के पूर्ण समकक्ष हैं। किशनगढ़ के अधिकांश चित्रों में स्त्रियों का पहनावा लहंगा, चोली तथा पारदर्शी आंचल है। पुरुष के पहनावे में लम्बा जामा और पायजामा सम-सामयिक पहनावे पर आधारित है। बणीठणी को कहीं-कहीं साड़ी पहने भी चित्रित किया गया है। पुरुषों को जामें के साथ-साथ कमर में पटका व पगड़ी भी बनायी गयी है। कृष्ण को विशेष रूप से पीताम्बर वस्त्र पहने चित्रित किया गया है। सम्पूर्ण शरीर पर अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्न तथा मणिजड़ित आभूषण, बांहों में काले फूँदने, गले में मोतियों की माला तथा रत्न जड़ित सीतारामी हार, कमर में करधनी, हाथों में चूड़ियां तथा पाँवों में पैजनी का अंकन चित्रकारों ने विशेष रूप से किया है।

किशनगढ़ शैली की वर्ण योजना अत्यन्त आकर्षक, सरस व मनोहारी है। हल्के गुलाबी, स्लेटी व सफेद रंगों का सम्मिश्रण किशनगढ़ के चित्रों में ही देखने को मिलता है। विशेष रूप से सावन्त सिंह के समय निहालचन्द द्वारा बनाये गये चित्रों में जो किशनगढ़ के सर्वोत्तम कृतियों में गिने जाते हैं।

किशनगढ़ शैली के चित्रों में प्रकृति के अंकन में सदैव स्वप्निल संसार की अभिव्यंजना की गयी है। प्रकृति में गतिशीलता की प्रवृत्ति अपनी स्वाभाविक प्रक्रिया है और कलाकार उस गतिशीलता का एक-एक क्षण तूलिकाबद्ध कर पाता है। परन्तु उसी क्षण की अनुभूति की अभिव्यक्ति चित्रकार को द्रष्टा बना देती है और यही द्रष्टा अपनी आत्मिक दृष्टि से अपने सीमित साधनों में प्रकृति के सौन्दर्यतम रूप को अभिव्यंजित करता है। इस प्रकार चित्रों में प्रयुक्त प्रकृति के जीव व निर्जीव दोनों पक्षों का सजीव चित्रण किया गया है। किशनगढ़ शैली के चित्रों में पुष्टिमार्गीय आचार्यों व अष्टछाप कवियों की पूर्ण छाप देखने को मिलती है। इन चित्रों में भौतिक जीवन के राग तथा धार्मिक जीवन की सात्विकता के दर्शन होते हैं। किशनगढ़ शैली की सबसे बड़ी विशेषता सौन्दर्यपूर्ण श्रृंगारिक व्यंजना है जो भक्ति रस के परिप्रेक्ष्य में ही हुयी है। इस समय श्रृंगार रस की भावधारा लोकसमाज तथा धार्मिक पीठों के

नाम पर राधा-कृष्ण के माध्यम से नायक-नायिका के भेद के रूप में किशनगढ़ की कला में दृष्टिगोचर होती है जिसमें भावों-विभावों का भी विस्तृत रूपांकन मिलता है।

विभिन्न राजस्थानी शैलियों में किशनगढ़ शैली एक ऐसी शैली है जो सम्पूर्ण रूप से भाव तथा रस परिपूर्ण है। यह हमारे नेत्रों को बरबस मोह लेती हैं और दृष्टा एक अतीन्द्रिय आनन्द की स्थिति में दूसरे ही लोक में पहुंच जाता है। लघुचित्रों के अध्ययन के प्रति मेरा विशेष आकर्षण रहा है। किशनगढ़ शैली के चित्रों की सरसता, मोहकता तथा उनके सौन्दर्य व रस से पूर्ण नेत्रों ने मेरे मन को विषय की अधिक जानकारी तथा उनके मर्म में प्रवेश कर भाव एवं रस के रहस्यबोध की उत्कण्ठा जागृत की। प्रस्तुत अध्यायों में मैंने किशनगढ़ के भौगोलिक सांस्कृतिक व प्राकृतिक पर्यावरण के साथ रस तथा भाव तत्वों की विस्तृत व्याख्या करने का पूर्ण प्रयास किया है।

आधुनिक चित्रकला पर किशनगढ़ चित्रशैली का प्रभाव

हमारे देश में अभिनव कला-प्रवृत्तियों में आज दो प्रकार की असमानतायें एक साथ देखने को मिल रही है। एक ओर तो यहां का वर्तमान कलाकार परम्परा के मोह में बँधकर आज अजन्ता व राजस्थानी शैलियों के अनुकरण करने तथा उनसे प्रेरणा प्राप्त करने के लिये उद्धत है, वहीं दूसरी ओर वह कलानिर्माण के प्राविधिक सिद्धान्तों के लिये पश्चिम की भी प्रेरणा ग्रहण कर रहा है। कलाकार का व्यक्तित्व उसकी कला में प्रकट होता है और व्यक्तित्व का परम्परा, परिस्थितियों, अनुभवों और आदर्शो से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि किसी भी व्यक्ति के लिये इन चीजों से अपने-आपको पूर्ण रूप से अलग कर सकना कठिन है। प्राचीन पूर्वीय दृष्टि से व्यक्तिवाद पश्चिमीय व्यक्तिवाद से भिन्न है। भारतीय मान्यता के अनुसार व्यक्तिवाद तटस्थता या अलगाव नहीं? बल्कि यह जीवन और समाज के अनुभव की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति है अर्थात् उच्चतम सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों की मूर्त अभिव्यक्ति है अजन्ता, राजस्थान पहाड़ी शैली के कलाकार अपनी वैयक्तिक स्थिति या कीर्ति की परवाह नहीं करते थे, किन्तु वे अपनी रचनात्मक भावनाओं और आकांक्षाओं को स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्त करते थे जैसा कि राजस्थान की किशनगढ़ शैली के चित्रों को देखकर प्रतीत होता है। इन कलाकारों का उद्देश्य केवल स्वान्तः सुखाय कला की आराधना करना था। इन कलाकारों के समान आज आधुनिक भारतीय कलाकार भी ऐसा करने का प्रयत्न कर रहे हैं किन्तु उन्हें अनेक सीमाओं के अधीन कार्य करना पड़ता है। इसलिये वास्तविक अर्थ में कलाकार वही है जो प्राचीन उपलब्धियों को नयी वाणी दे सके अथवा उनसे प्रेरणा प्राप्त करके सृजन की नयी दिशाओं को आलोकित करें। ये प्राचीन उपलब्धियाँ नये कलाकार को प्रेरणा तथा भाव ही नहीं देती बल्कि नवीन अभिव्यक्ति के लिये उसे उपकरण, मार्ग और साधन भी सुझाती हैं। किसी बीते युग की सभ्यता एक कलाकार के लिये अपना सम्पूर्ण वैभव, अपने सारे कौशल, अपनी तत्कालीन राजनीतिक समस्यायें, तत्कालीन समाज की रुचि और तत्कालीन शिल्पों का विकास आदि अनेक बातें उपलब्ध कराती हैं।

किशनगढ़ शैली के चित्रों के विषय दरबारी या प्रकृति चित्रों तक ही सीमित थे। वह राजा-महाराजाओं और दरबारियों के मनोरंजन के लिये होती थी। परन्तु आज की चित्रकला पर धार्मिक और प्रेमपूर्ण कल्पनाओं के प्रतीक कृष्ण और अनेक देवताओं, राजाओं, दरबारियों, नर्तकियों, भीतरी महलों के दृश्यों, जंगल की परियों और गाना गाते हुये ग्वालों को चित्रित करने के हिमायती नहीं हैं क्योंकि अब स्थिति बदल चुकी है, अब यथार्थ को चित्रित करने की आवश्यकता है। इसलिये आज के चित्रों में सामाजिक नारी, डाकिया, मशीनों आदि की भरमार है। जब हमारा सारा संसार आधुनिकता की ओर तेजी से बढ़ रहा है तब भारतीय चित्रकार से पुरातनता का दामन पकड़े रहने की आशा नहीं की जा सकती है।

आज का भारतीय चित्रकार नये कथ्यों, नये परिवेशों, नयी कल्पनाओं और नये प्रतिमानो के अनुसन्धान में व्यस्त है। कला के क्षेत्र में इधर के दशकों में जो विश्वव्यापी परिवर्तन हुये हैं उनके प्रभाव से भारतीय कलाकार भी प्रभावित है। आज कला का उद्देश्य शास्त्रीय विधानों का करतब दिखाना नहीं रह गया है, उसका उद्देश्य आदर्श, अध्यात्म या नैतिकता की अभिव्यंजना करना भी नहीं है। जिस प्रकार आज का साहित्यकार साहित्य के लिये जीवनदायी और समाज के लिये उपयोगी वस्तु देने की दिशा में व्यस्त है, ठीक उसी प्रकार आज का भारतीय कलाकार पश्चिम के उन्नत कला धरातल की परिक्रमा करके यह चाहता है कि वह जो कुछ दे वह नवीन तो हो ही साथ ही उसमें कुछ स्थायित्व भी हो जिससे भावी कलाकारों के लिये एक मंच का निर्माण हो सके।

अतः कुछ विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालयों के शिक्षक कलाकारों ने विदेश जाकर शिक्षा ग्रहण करके यहाँ लौटने के पश्चात् उनकी परम्परागत कला शैली बदल गयी। परन्तु आत्मा से वे विशुद्ध राजस्थानी हैं। ऐसे बहुत से चित्रकार हैं जो प्राचीन पद्धति के अनुरूप कार्य कर रहे हैं। नवयुवक चित्रकारों को प्रशिक्षण देकर प्राचीन प्रतिलिपियों की प्रतियां तैयार कराकर इसको एक उद्योग का रूप दिया जा रहा है। राजस्थान ललित कला अकादमी, केन्द्रीय ललित कला अकादमी के सहयोग से कुछ ऐसी छात्रवृत्तियाँ व केन्द्र खोले गये हैं जिनमें यहां की कला शैलियों का अध्ययन कराया जाता है।

कुंवर संग्राम सिंह, पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय, मोती चन्द खजांची आदि ऐसे संग्रहकर्ता हैं जिनके घरों में सैकड़ों चित्रकार कार्य करते हैं और मूलचित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार करके बेचते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो अन्य प्रभावों के कारण यहाँ की स्थिति में भी परिवर्तन हो जाता इसका श्रेय सरकार व बहुत कुछ कला मर्मज्ञों को जाता है जिनमें यह प्रेरणा जगी और वे कलाचित्रों के संरक्षण के प्रति जागरूक हैं। विश्वविद्यालयों के प्रत्येक कला विभागों में किशनगढ़ और अन्य शैलियों के चित्रों का संग्रह होना चाहिये ताकि विद्यार्थी उन्हें पहचान सकें कि किस चित्र को किस शैली में चित्रित किया गया है और आपस में दूसरी उपशैलियों से तुलना कर सकें। प्रत्येक शहर में कला संग्रहालय तथा विथीकाएं होनी चाहिये जिनमें भारतीय प्राचीन कलाओं का प्रदर्शन किया जा सके जिससे हमारे देश की जनता तथा अत्यन्त आधुनिकता में रंगी भावी पीढ़ी अपनी भारतीय संस्कृति की मान-मर्यादाओं को बनाये रखने का प्रयास करे।

किशनगढ़ शैली के चित्रों के विषय दरबारी या प्रकृति चित्रों तक ही सीमित थे। वह राजा-महाराजाओं और दरबारियों के मनोरंजन के लिये होती थी। परन्तु आज की चित्रकला पर धार्मिक और प्रेमपूर्ण कल्पनाओं के प्रतीक कृष्ण और अनेक देवताओं, राजाओं, दरबारियों, नर्तकियों, भीतरी महलों के दृश्यों, जंगल की परियों और गाना गाते हुये ग्वालों को चित्रित करने के हिमायती नहीं हैं क्योंकि अब स्थिति बदल चुकी है, अब यथार्थ को चित्रित करने की आवश्यकता है। इसलिये आज के चित्रों में सामाजिक नारी, डाकिया, मशीनों आदि की भरमार है। जब हमारा सारा संसार आधुनिकता की ओर तेजी से बढ़ रहा है तब भारतीय चित्रकार से पुरातनता का दामन पकड़े रहने की आशा नहीं की जा सकती है।

आज का भारतीय चित्रकार नये कथ्यों, नये परिवेशों, नयी कल्पनाओं और नये प्रतिमानो के अनुसन्धान में व्यस्त है। कला के क्षेत्र में इधर के दशको में जो विश्वव्यापी परिवर्तन हुये हैं उनके प्रभाव से भारतीय कलाकार भी प्रभावित है। आज कला का उद्देश्य शास्त्रीय विधानों का करतब दिखाना नहीं रह गया है, उसका उद्देश्य आदर्श, अध्यात्म या नैतिकता की अभिव्यंजना करना भी नहीं है। जिस प्रकार आज का साहित्यकार साहित्य के लिये जीवनदायी और समाज के लिये उपयोगी वस्तु देने की दिशा में व्यस्त है, ठीक उसी प्रकार आज का भारतीय कलाकार पश्चिम के उन्नत कला धरातल की परिक्रमा करके यह चाहता है कि वह जो कुछ दे वह नवीन तो हो ही साथ ही उसमें कुछ स्थायित्व भी हो जिससे भावी कलाकारों के लिये एक मंच का निर्माण हो सके।

अतः कुछ विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालयों के शिक्षक कलाकारों ने विदेश जाकर शिक्षा ग्रहण करके यहाँ लौटने के पश्चात् उनकी परम्परागत कला शैली बदल गयी। परन्तु आत्मा से वे विशुद्ध राजस्थानी हैं। ऐसे बहुत से चित्रकार हैं जो प्राचीन पद्धति के अनुरूप कार्य कर रहे हैं। नवयुवक चित्रकारों को प्रशिक्षण देकर प्राचीन प्रतिलिपियों की प्रतियां तैयार कराकर इसको एक उद्योग का रूप दिया जा रहा है। राजस्थान ललित कला अकादमी, केन्द्रीय ललित कला अकादमी के सहयोग से कुछ ऐसी छात्रवृत्तियाँ व केन्द्र खोले गये हैं जिनमें यहां की कला शैलियों का अध्ययन कराया जाता है।

कुंवर संग्राम सिंह, पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय, मोती चन्द खजांची आदि ऐसे संग्रहकर्ता हैं जिनके घरों में सैकड़ों चित्रकार कार्य करते हैं और मूलचित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार करके बेचते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो अन्य प्रभावों के कारण यहाँ की स्थिति में भी परिवर्तन हो जाता इसका श्रेय सरकार व बहुत कुछ कला मर्मज्ञों को जाता है जिनमें यह प्रेरणा जगी और वे कलाचित्रों के संरक्षण के प्रति जागरूक हैं। विश्वविद्यालयों के प्रत्येक कला विभागों में किशनगढ़ और अन्य शैलियों के चित्रों का संग्रह होना चाहिये ताकि विद्यार्थी उन्हे पहचान सकें कि किस चित्र को किस शैली में चित्रित किया गया है और आपस में दूसरी उपशैलियों से तुलना कर सकें। प्रत्येक शहर में कला संग्रहालय तथा विथीकाएं होनी चाहिये जिनमें भारतीय प्राचीन कलाओं का प्रदर्शन किया जा सके जिससे हमारे देश की जनता तथा अत्यन्त आधुनिकता में रंगी भावी पीढ़ी अपनी भारतीय संस्कृति की मान-मर्यादाओं को बनाये रखने का प्रयास करे।

हम सब का यही प्रयास होना चाहिये कि यहाँ की स्थिति चित्रों का संरक्षण व सरकारी सहयोग बना रहे तभी यह सम्भव हो सकेगा कि भविष्य में इसकी अलग पहचान बनी रहे वरना यह भी अन्य शैलियों की भाँति आधुनिक शैली में अपना अस्तित्व खो बैठेगी। यह हमारा परम् कर्त्तव्य होना चाहिये कि हम इसके प्रति सच्ची भावना तथा उदारता व बहुमुखी प्रयास के साथ इसकी सृजन प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते रहें। जिससे देश का मस्तक ऊँचा रह सके और अपनी प्राचीन गौरवगाथा, विशेषता तथा उपयोगिता को कायम रख सकें।

उपसंहार

सौन्दर्यदृष्टा के लिये सृष्टि के कण-कण मे सौन्दर्य की सत्ता व्याप्त है। मानव की सौन्दर्यपरक प्रवृत्ति के कारण ही कला का उद्‌भव हुआ और मानव की यह प्रवृत्ति नैसर्गिक है। प्रत्येक युग में कला का अस्तित्व मिलता है, उस समय भी जब मूक प्राणी भाषा की उत्पत्ति नहीं कर पाया था। कला मे सौन्दर्य समाहित है तथा सौन्दर्य प्रकृति और मानव दोनों मे समान रूप से विद्यमान है। प्रकृति से मनुष्य का वैशिष्ट्य इस बात में विशेष रूप से माना जाता है कि उसी की रचना कलाकृति कहलाती है। प्रकृतिजन्य वस्तुयें सुन्दर होते हुये भी कलाकृतियाँ नहीं मानी जाती हैं। कला में मानवीय संवेदना और रचनाशीलता का होना अनिवार्य है। वस्तुगत प्रभाव जब तक भावात्मक न हों उसे कलानुभव की श्रेणी मे नही रखा जा सकता है। कलाकार की कल्पना और भावना के द्वारा ही कलाकृति का जन्म होता है। कलाकार कला के माध्यम से ही अपने गूढ़ एवं गम्भीर अर्न्तमन की अभिव्यक्ति करता है। ध्वनि, शब्द, लय, गति, क्रिया, रंग, रेखा आदि अभिव्यक्ति के शक्तिशाली माध्यम हैं जिनको कलाकार तदानुकूल अपने सुन्दर भावों व गुणों की अभिव्यक्ति के लिये अपनी अभिरूचि के अनुसार प्रयुक्त करता है। इस प्रकार कला मनोभावों की सुन्दर अभिव्यक्ति के साथ मानवीय और लोककल्याणकारी भी होती है, कला ही प्रत्येक युग में संस्कृति को जन्म देती है। डा. श्यामसुन्दर दास के अनुसार अनुभूति का मूर्तरूप कला की अभिव्यक्ति है। अनुभूति की व्यंजना से कला वस्तु का संगठन होता है। इनके अनुसार ललित कलायें मानसिक दृष्टि में सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण है। नीत्से ने सौन्दर्य को ही कला माना है। क्रोचे के लिये कला एक स्वप्न या सहानुभूति है। कलाकार एक स्वप्न या बिम्ब को अभिव्यक्ति देता है। कला व्यक्ति को चिरस्थायी कीर्ति व संस्कृति की शाश्वत धरोहर ही नहीं अपितु उसकी प्रधान प्रेरणा भी है, कला स्फूर्ति देती है, प्रोत्साहित करती है, सुशिक्षित करती है। कला सबको एक सूत्र में बाँधने वाली महान शक्ति है। जन-जीवन पर उसका प्रभाव सर्वव्याप्त है।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार कला कला के लिये नहीं है उसका उद्देश्य मनुष्य को अपने आप मे सीमित न रखकर उसे परमतत्व की ओर ले जाना है। भोग में परिवर्तित हो जाने वाली कला वस्तुतः कला नहीं है। जिसमें परमानन्द की प्राप्ति हो वही श्रेष्ठ कला है।

प्रमुख रूप से साहित्य तथा काव्य पर आधारित किशनगढ़ शैली सोलहवीं शती से उन्नीसवीं शती तक परिपोषित होती रही। सामन्ती जीवन के सानिध्य और लोक-जीवन, भाव-प्रवणता, विषय एवं वर्ण-वैविध्य तथा मनोहारी पृष्ठभूमि के अंकन के कारण किशनगढ़ शैली राधा-कृष्ण की लीलाओं की

श्रृंगारिक अभिव्यक्ति करने में पूर्ण समर्थ रही है। इसका मूल कारण है कि नवयुगलों की प्रेम कथायें साहित्य का अंग बन चुकी थीं। इसमें श्रृंगार रस की ही प्रधानता रही। संस्कृत, साहित्य आदि ग्रन्थों में जीवन के मधुर-अमधुर आयामों के आधार पर नायक-नायिकाओं के भेद-विभेद प्रतिपादित हो चुके हैं। राधा-कृष्ण के प्रेम की अभिव्यंजना पर कवियों ने भौतिक पृष्ठभूमि पर प्रेम की शाश्वतता को सिद्ध किया है। मानवीय भावों के प्रेम की शाश्वतता की पूर्णता में पूर्व और पश्चिम में कहीं विलग नहीं है। यद्यपि आज बीसवीं शती के इस वैज्ञानिक युग में इस प्रकार की धारणा तथ्यहीन लगती है परन्तु मानवीय श्रृंगारिक मनोवृत्तियों के आधार पर भेद-विभेद प्रतिपादित मध्यकालीन साहित्य एवं चित्रों का चरमोत्कर्ष रूप सामने आया। विशेषतया किशनगढ़ का चित्रकार इस श्रृंगारिक भेद-विभेद से पूर्णतया प्रेरित हुआ जिसका प्रतिपादन रंगों एवं रेखाओं में अमूर्त रूप में हुआ। उनकी प्रेरणा का मूल स्रोत आदि संस्कृत साहित्य से नहीं वरन् हिन्दी साहित्य तथा काव्य उनकी अभिव्यंजना का आधार रहे। स्वयं नागरीदास के ग्रन्थों के आधार पर चित्रों का निर्माण हुआ जिसमें नायक-नायिका के रूप में कृष्ण व राधा का प्रतिपादन हुआ, जिसका कारण यही था। उस समय सम्पूर्ण काव्य तथा साहित्य कृष्णीय कथाओं से आप्लावित था जिसका धार्मिक आधार वैष्णव सम्प्रदाय था। चित्र फलक 28 से स्पष्ट होता है कि यह कवियों की काव्याभक्ति का मूलाधार बना। यह वैष्णव धारा उस समय भारतीय जनमानस में आत्मिक अनुभूति सिद्ध हुयी क्योंकि मानवीय भौतिक आयामों पर आधारित आध्यात्मिक पूर्णता की यह वैष्णव धारा ईश्वरीय अनुभूति के पराकाष्ठा के पूर्ण निकट थी। निर्गुण भक्ति की जो अनुभूतियां साधारणजन के लिये भक्तिपूर्ण थी, सगुण भक्ति की यह धारा उनका दिशा-निर्देश बनी। ईश्वरीय भक्ति का जो मानवीयकरण पूर्ण कोमलता व सौन्दर्य के साथ इस वैष्णवधारा ने किया, उससे साहित्य ही नहीं समृद्ध हुआ वरन् चित्रों में भावों की अभिव्यक्ति को एक आधार मिला। चित्रों में जिन मानवीय आदर्शों का उल्लेख है उनका आधार प्रेम पर आधारित अवधारणायें हैं। प्रेम का जो अमरत्व माधुर्यता व दार्शनिकता के साथ चित्रकारों ने चित्रों में अभिव्यंजित किया है उसे प्राप्त करने में मुगल चित्रकारों की धनाढ्य समृद्धता व अभिव्यंजित सूक्ष्मता भी सफल न हो सकी।

किशनगढ़ की आध्यात्मिक विषय वस्तु में मानवीय प्रेम के राग-विराग की अभिव्यक्ति का आधार राधा-कृष्ण की प्रेम कथायें ही रहीं हैं जो प्रत्येक मानव मन की आन्तरिक अवधारणा है। किशनगढ़ शैली के चित्रकारों ने इस भावना को नायक-नायिका के माध्यम से जनमन तक अनुभूतगम्य बनाया। इस शैली में माधुर्य भक्ति को ही प्रचार मिला है। फलतः इस काल की भक्ति एवं श्रृंगार सम्बन्धी रचनायें एक जैसी प्रतीत होती हैं। यद्यपि चित्रकारों ने कृष्ण के जीवन के विविध पक्षों का अंकन किया परन्तु उनके रसिक रूप के अंकन पर ही उनकी दृष्टि अधिक रही है।

राधा-कृष्ण की पवित्र प्रेम की कथायें जनमानस में अपना एक पवित्र स्थान रखती हैं जिनकी कल्पना मात्र से दृश्य में अनेकानेक रसमय और माधुर्यपूर्ण छवियां उभरतीं हैं। इसी प्रकार अलौकिक छवियां किशनगढ़ के चित्रों में नागरीदास कृष्ण के रूप में और उनकी प्रेयसी बणीठणी राधा के रूप में चित्रित की गयी है। यही नागरीदास किशनगढ़ की कला में प्राण फूंक देने

वाले भावुक कला मर्मज्ञ संत थे। उनकी पदावलियों ने सम्पूर्ण राजस्थान में एक ऐसा आदर्श संस्कार सम्मुख रखा कि उनकी प्रवृत्तियां शान्तप्राय हो गयी। वे बणीठणी को राधा के रूप में तथा स्वयं को कृष्ण के रूप में मानकर प्रेमाभिनय करते थे। राधा माधव के गुणगान में तथा उनकी रूप सुधा का पान करते हुये उन्होंने अपने जीवन काल में 75 काव्य रचनाओं का सृजन किया था जो 'नागरसमुच्चय' के नाम से प्रसिद्ध हुयी तथा कलाकारों के लिये प्रेरणास्रोत बनीं।

इस प्रकार कृष्ण भक्ति आन्दोलन तथा मुगलकालीन दरबारी संस्कृति से अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने वाली न केवल किशनगढ़ कला वरन् राजस्थान की सभी शैलियां लोक-कलात्मक तथा वैभवपूर्ण श्रृंगारिकता से ओतप्रोत रहीं है। ब्रज मण्डल की कृष्ण भक्ति परम्परा एवं मुगल दरबार के विलासपूर्ण कलात्मकता को राजस्थान के जनजीवन एवं सामन्ती जीवन में तत्परता से ग्रहण किया जिसके फलस्वरूप काव्य एवं चित्रकला भी उसी रंग में प्रभावित होती गयी।

सूरसागर, रसिकप्रिया, भगवत पुराण, रामायण, नागरसमुच्चय व स्फुट रचनाओं के आधार पर राजस्थान की समस्त शैलियों में असंख्य चित्र बने जो स्वदेशी और विदेशी संग्रहालय एवं व्यक्ति संग्रहकर्ताओं के पास बहुलता से उपलब्ध हैं। मध्यकालीन भावों-अनुभावों, प्राकृतिक एवं घरेलू परिवेश, सामाजिक रीति-रिवाज, वेशभूषा, लोक-कलात्मक एवं सामन्ती जीवन, पारम्परिक व तात्कालिक मान्यताओं आदि का चित्रांकन काव्य एवं चित्रकला में सामान्य रूप से मिलता है। किशनगढ़ के चित्र तथा काव्य के माध्यम से भक्ति काल व रीतिकालीन वाह्य परिवेश का तथा आत्मा का पर्यवेक्षण किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम
1.	नानालाल, चमन लाल मेहता	भारतीय चित्रकला, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1933
2.	डा0 जय सिंह नीरज	राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1981
3.	जगदीश सिंह गहलौत	राजस्थान का सामाजिक जीवन जोधपुर, 1964 मारवाड़ का इतिहास, जोधपुर, 1991
4.	डा0 जगदीश गुप्त	भारतीय कला के पदचिन्ह, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, 1961
5.	दास, चोपड़ा और पुरी	भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक इतिहास, दिल्ली, 1976
6.	डा0 रामनाथ	मध्यकालीन भारतीय कलायें एवं उनका विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ एकेडमी, जयपुर, 1973
7.	वीणा अग्रवाल	विष्णु धर्मोत्तर पुराण में चित्रकला विधान, दिल्ली, 1989
8.	डा0 भानु अग्रवाल	भारतीय चित्रकला के मूल स्रोत, संस्कृत साहित्य के उल्लेखों पर आधारित, अलगॉरिदम पब्लिकेशन्स वाराणसी, 1996
9.	भावना आचार्य	प्राचीन भारत में रूप श्रृगार, जयपुर, 1995
10.	प्रेमशंकर द्विवेदी, आर0के0 भारद्वाज	भारतीय चित्रकला में व्यक्ति चित्रण, मनीष प्रिन्टिंग प्रेस, वाराणसी, 1996
11.	आर0 के0 वशिष्ठ	मेवाड़ की चित्राकन परम्परा, यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 1984
12.	एम0 के0 शर्मा सुमहेन्द्र	राजस्थानी रागमाला चित्रपरम्परा, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1990
13.	सुरेन्द्र मोहन स्वरूप भटनागर	राजस्थान की लघुचित्र शैलियां, प्रथम खण्ड, जयपुर, 1972
14.	चित्रलेखा	ड्राइंग आफ राजस्थान, दिल्ली, 1993
15.	लल्लन राय	रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में उल्लिखित वस्त्राभरणों का अध्ययन, चण्डीगढ़, 1974
16.	डा0 पुष्पलता	रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन, नयी दिल्ली, 1977
17.	डा0 निर्मला जैन	रस सिद्धान्त व सौन्दर्य शास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, 1967
18.	गोपीनाथ शर्मा	राजस्थान का इतिहास, आगरा, 1978
19.	असित कुमार हाल्दार	भारतीय चित्रकला, चित्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, 1959
20.	बी0 एल0 पानगड़िया	राजस्थान का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1982
21.	डा0 जयसिंह नीरज	राजस्थानी चित्रकला, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ

अकादमी, जयपुर, 1994
राजस्थान की चित्रकला व हिन्दी कृष्णकाव्य, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1966

22. कन्हैया लाल — राजस्थान की चित्रकला, 1960
23. असित कुमार हाल्दार — भारतीय चित्रकला, चन्द्रलोक प्रकाशन इलाहाबाद, 1959
24. बी० एल० पानगड़िया — राजस्थान का इतिहास, नयी दिल्ली, 1982
25. बी० एम० दिवाकर — राजस्थान का इतिहास, साहित्यागार, जयपुर, 1987
26. आर० जी० कलिंगवुड — कला के सिद्धान्त, अनुवादक - ब्रजभूषण पालीवाल — राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1972
27. भाउरागर्श — चित्रकला और समाज, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988
28. मधुप्रसाद अग्रवाल — मारवाड़ की चित्रकला, राधा पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली, 1993
29. बद्रीनारायण वर्मा — कोटाभित्ति चित्रांकन परम्परा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1988
30. डा० नगेन्द्र — भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, 1978
31. किशोरी लाल वैघ — रीतिकालीन कवियों की मौलिक देन
32. कुमार संग्राम सिंह — राजस्थान की लघुचित्र शैलियां, जयपुर, 1972
33. डा० जयसिंह नीरज — राजस्थान की लघुचित्र शैलियां, जयपुर, 1972
34. डा० गणपति चन्द्र गुप्त — हिन्दी काव्य में श्रृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी, 1959
35. हजारी प्रसाद द्विवेदी — प्राचीन भारत के कलाविनोद, बम्बई, 1950
हिन्दी साहित्य की भूमिका
36. रामचन्द्र शुक्ल — चित्रकला का रसास्वादन, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी
सूरदास
37. डा० उमामिश्र — काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध, नयी दिल्ली, 1962
37. प्रो० विश्वनाथ प्रसाद — कला, साहित्य और परम्परा, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973
38. डा० सावित्री सिन्हा — ब्रजभाषा की कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प
39. डा० रामनाथ — मध्यकालीन भारतीय कलायें एवं उनका विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1973
40. चिन्तामणि व्यास — रसिकप्रिया, गीता पब्लिशर्स, झांसी, 1988
41. एम० एस० मावड़ी — भारत की प्रमुख चित्र शैलियां, दिल्ली, 1990
42. डा० जयसिंह नीरज — राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1981

43. जी0 सी0 पाण्डे — साहित्य, सौन्दर्य और संस्कृति, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1994
44. डा0 जगदीश गुप्त — प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
45. श्रोत्रिय, शुकदेव — कलाबोध एवं सौन्दर्य, छवि प्रकाशन, मुजफ्फरनगर, 1988
46. सुरेन्द्र सिंह चौहान — राजस्थानी चित्रकला
47. प्रेमशंकर द्विवेदी — राजस्थानी लघुचित्रों में गीतगोविन्द
48. प्रभुदयाल मित्तल — ब्रज की कलाओं का इतिहास, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1977
49. राय कृष्ण दास — भारत की चित्रकला, भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1974
50. शचीरानी गुर्टु — कला दर्शन, साहनी प्रकाशन, दिल्ली, 1953
    भारतीय कला की रूपरेखा, इलाइट पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
51. प्रदीप कुमार दीक्षित — नायक नायिका भेद एवं राग रागिनी, बनारस, 1977
52. रामकीर्ति शुक्ल — सौन्दर्य का तात्पर्य, उ0 प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1982
53. रामगोपाल विजयवर्गीय — राजस्थानी चित्रकला, विजयवर्गीय कलामण्डप, जयपुर, 1953
54. फैयाज अलीखान — भम्बर नागरी दास, जयपुर
55. जी0 एस0 ओझा — जोधपुर राज्य का इतिहास भाग-2, अजमेर, 1941
56. सुखबीर सिंह गहलौत — राजस्थान का संक्षिप्त इतिहास, जोधपुर, 1969
57. के0 पी0 जायसवाल — भारत का इतिहास, इलाहाबाद, 1948
58. कर्नल जेम्स टाड अनुवादक -केशवकुमार ठाकुर — राजपूताना का इतिहास, इलाहाबाद, 1963
59. लल्लनराय — रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में उल्लिखित वस्त्राभरणों का अध्ययन, चण्डीगढ़, 1974
60. रमेश कुन्तल मेघ — अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा, दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, नयी दिल्ली, 1977
61. राधाकमल मुकर्जी — भारत की संस्कृति और कला, नयी दिल्ली, 1964
    भारतीय कला का विकास, इलाहाबाद, 1964
62. डा0 जनेश्वर प्रसाद मिश्र — रीतिकालीन कलायें और युगजीवन, 1990
    रीतिकालीन श्रृंगारिकता एवं युगजीवन, 1985
64. दया कृष्ण विजयवर्गीय — राजस्थानी काव्य में श्रृंगार भावना, 1971

65. राजस्थान वैभव श्री रामनिवास मिर्धा अभिनन्दन ग्रन्थ खण्ड-2

66. पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय अभिनन्दन ग्रन्थ भाग-2

67.	रामदहिन मिश्र	काव्य दर्पण, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, 1955
68.	जयदेव	गीतगोविन्द, वी0 रामस्वामी एण्ड सन्स, नेताजी सुभाष रोड, मद्रास
69.	हरवंश लालशर्मा	बिहारी और उनका साहित्य भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1965
70.	डा0 महेन्द्र कुमार	मतिराम कवि और आचार्य भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, 1960
71.	डा0 नगेन्द्र	रीतिकाव्य की भूमिका, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, 1953
72.	डा0 बच्चन सिंह	रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना 2015 वि नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
73.	भगीरथ मिश्र	हिन्दी रीति साहित्य, राजकमल प्रकाशन, बम्बई, 1926
74.	डा0 रामकुमार विश्वकर्मा	भारतीय चित्रकला मे संगीत तत्व, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, नई दिल्ली, 1996
75.	प्रेमचन्द गोस्वामी	राजस्थान की लघुचित्र शैलियाँ, जयपुर, 1972

पत्र-पत्रिकायें

1- राजस्थान पत्रिका जयपुर, मार्च-अक्टूबर, 1993, 94

2- छवि, बनारस

3- हिन्दुस्तानी त्रैमासिक-शोधपत्रिका, भाग 33, अंक-3, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद

4- कलानिधि त्रैमासिक-भारत कला भवन, वाराणसी

5- वार्षिक कलापत्रिका, 1981

6- कादम्बिनी पत्रिका

7- साप्ताहिक हिन्दुस्तान

8- प्रतियोगिता दर्पण, जनवरी, 1990

9- समकालीन कला, ललित कला अकादमी, नयी दिल्ली

10- दैनिक जागरण, कानपुर, 17 जून, 1988

11- नवनीत, जनवरी, 1988

12- आज, साप्ताहिक विशेषांक, इलाहाबाद, 15 फरवरी 1998

13- कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

BIBLIOGRAPHY

	Name of Authors	*Books*
1.	(Edited by) R. Skelton & A. Topsfield	Facts of Indian Art, A Symposium held at the Victoria & Albert Museum, Haritage Publishing, New Delhi, 1987
2.	A. Topsfield & M.C. Beach	Indian Painting & Drawing from the Collection Howard Hodgking, Thames & Hudson, New York., 1991
3.	A.G. Poster	Realms of Heroism, Indian Painting at the Brooklyn Museum Hudson Hill Press, New York, 1994
4.	A.K. Coomar Swamy	Rajaput Painting, Hackers Arts Books. New York, 1916
		Catalogue of India Collections in the Museum of Fine Arts, Bostan.
		Rajput Painting Vol.-2, London, 1916
5.	Andrew Topsfield	Painting from Rajasthan in National Gallery, Melbourne, 1980
6.	Anjana Chakrawarti	Indian Miniature Painting, Lusture Press Pvt. Ltd., New Delhi, 1986
7.	B.N. Goswamy	Essence of Indian Art, Asian Art Museum, Sanfransisco, 1985
8.	B.N. Sharma, Dr.	Social & Cultural, History of Northern India
9.	Basil Gray	Treasures of Indian Miniature on Bikaner, Palace Collection, England, 1951
		The Art of India, Phaido Press Ltd. Oxford, 1981
10.	C.C. Dutta	The Culture of India, Bombay,1960
11.	Charles Fabri	A History of Indian Dress, London
12.	D. Barrett & Basil Gray	Painting of India, The World Publishing Company, Cleveland, Ohio, 1963
13.	Daljeet, Dr.	The Glory of Indian Painting, Mahindra Publications, Ghaziabad, 1988
14.	E.V. Havell	The Art Heritage of India 1964
15.	Eric Dickinson	Krishangarh Painting Lalit Kala Akedemi, New Delhi
16.	Fisher & Kiran	The Design Continuum 1966

17.	Francis Brunel	Splendour of Indian Miniature Publication Clarion, New Delhi.
18.	Hilde Bach	Indian Love Painting, Lusture Press Pvt. Ltd., New Delhi, 1961

19. In the Image of Man,
Vikas Publishing House, New Delhi, 1982
20. Indian Minaiture Painting,
Roli Book International, New Delhi, 1981
21. Indian Miniature Painting 1590-1830.
Gallery Saudarya Lahari, Amsterdom, 1984
22. Indian Miniature Painting, Brussels, 1974
23. Indian Miniature Painting, Enren field collection,
Hudson Hill Press, New York, 1985
24. Indian Miniature Painting, U.S.A., 1971
25. Indian Painting Moughal, Rajput and Sultanati Manuscript,
P & D. Colnaghi & Co. Ltd. London, 1978

26.	J. Guy & D. Swallow	Art of India 1500-1900, Ahmedabad, 1990
27	Jaising Neeraj	Splendour of Rajasthani Painting, Abhinav Publication, New Delhi, 1991
28.	Jameela Brij Bhushan	The world of Indian Miniature, Kodonsha International Ltd. New York,1979
29.	K. Khandelwala	Painting of Bygone years, Bombay, 1991
30.	K. Khandelwala M. Chandra & P. Chandra	Miniature Painting, Lalit Kala Acedemy, New Delhi, 1960

31. Kishangarh Painting,
Lalit Kala Academiy, 1998

32.	Krishan Chaitanya	A History of Indian Painting Rajasthani Tradition, Abhinav Publication, New Delhi, 1982

33. Krishna Devine Love
Myth & Legend through 1982.

34.	Linda York	Indian Miniature Painting & Drawing, The Cleveland Museum of Art, U.S.A., 1986
35.	M. Granej	The Art Colour & Design, New York, 1951

36. M K. Brijraj Singh — The Kingdom that was Kota,
Lalit Kala Academi, New Delhi, 1982

37. M.M. Deneck — Indian Art, The colour library of Art, Paul Hamlyn, London, 1967

38. M.S. Randhawa — Indian Miniature Painting, Roli Book International, New Delhi, 1981

39 M.S. Randhawa & G.K. Gilbarth — Indian Painting,
Houghton Miffin Company, Bostan, 1968

40. M.S. Randhawa — Pahari Miniature Painting, Bombay, 1958
Kishangarh Painting
Vokils Fiffer and Simons Ltd. Bombay, 1980
Indian Miniature Painting,
Roli Book International, New Delhi, 1981

41. Mario Bussagla — Indian Miniature, The Hamalyn Publishing Group Ltd., New York, 1969

42. Mario Bussagle — Indian Miniature,
The Hamalyn Publishing Group Ltd., New York, 1969

43. Motichandra — Technique of Mughal Painting, Lucknow, 1946

44. Mulkraj Anand — Album of Indian Painting,
National Book Trust of India, New Delhi, 1973

45. N. Harry & A.B. Rams — Festival India in the United States,
New York, 1986

46. N. L. Mathur — Indian Miniature,
National Museum, New Delhi, 1983

47. N.C. Mehta & Motichandra — Studies in Indian Painting ,
Tarapurawala, Bombay, 1926
The Golden Flute
Indian Painting & Lalitkala Akedemi, Poetry, Lalit Kala Academi, New Delhi.

48. P. Banerjee — The Life of Krishna in Indian Art,
National Museum, New Delhi, 1978

49. P. Chandra — Bundi Painting, Lalit Kala Acedemi, New Delhi, 1959

50. P. Pal — Court Painting of India, 16th Cent.-19th Cent.
Kumar gallery, New Delhi, 1983
The Classical Tradition of Rajput Painting,
New York, 1978

51.	P. Pal	Indian Painting in the Los Angeles Museum, Lalit Kala Academy, New Delhi, 1982
52.	P. Pal S. Market & J. Leoshko	Pleasure Garden of Mind, Mapin Publishing, Ahmedabad, 1993
53.	Percy Brown	Indian Painting, Calcutta, 1947
54.	Philip S. Rawson	Indian Painting, Pierre Tisene Edsew, New York, 1961
55.	R.A. Agarwal	Marwar Murals, Agam Kala Prakashan, New Delhi, 1977
56.	R.K. Tandon	Indian Miniature Painting, 16th through 19th Century, Netesan Publishers, Bangalore, 1982
57.	Rajasthani Painting	Exhibition, Rajasthan Lalit Kala Academy, Jaipur.
58.	Sita Sharma	Krishan Leela Theme in Rajasthani Miniature
59.	Stella Kramrich	Painted Delight Indian Painting from Philadelphia Collection, Philadelphia Museum Art, 1986
60	Stuart Carwelch	Indian Art & Culture 1300 to 1900 Mapin Publishing, New York, 1985
61.	Stuart Cary Walech	Indian Drawing and Painting Sketches 16 to 19th Cen. Asia Book House, Gallery, New York, 1976 A Flower from Every Meadow, Asia Bŏok House Gallery, New York, 1973
62.	Sumhendra, Dr.	Splendid Style of Kishangarh Painting, Japarapalar Pvt. Ltd., Jaipur, 1995
63.	Toby Folk	Indian Miniature
64.	W. G. Archer	Indian Miniature Graphic Society New York
65.	W.G. Archer	Indian Painting, (Introduction & Notes) B.I. Batsford Ltd. London, 1956 Central Indian Painting with an Introduction & Notes, Faber & Faber London, 1958

66.	W.G. Archer & M. Archer	Romance and Poetry in Indian Painting, New Delhi, 1970
67	Walter Spink	The quest of Krishna, Michigan, U.S.A., 1972

Journals

1. Rooplekha
   All India Fine Arts & Crafts Society, Raj Marg, New Delhi.

   Vol. XI Part I 1980
   Vol. XXV Part I 1954
   Vol. XXV Part II 1954

2. Marge
   Publication Army Building Fort, Bombay

   Vol. III Part IV

3. Kala Vritti

4. Contemporary Art
   Lalit Kala Academy, New Delhi

5. District Gazetteer of Rajasthan

6. The Journal of Indian Society of Oriental Art, Calcutta.

चित्र सूची

30-	राधा	किशनगढ़	1735-1757
31-	राधा के घर मे कृष्ण	,,	1760-1770
32-	ताम्बूल सेवा	,,	1760
33-	सांझीलीला	,,	1735-1757
34-	राजा साहसमल का व्यक्ति चित्र	,,	1725
35-	नौकाविहार	,,	1735-1757
36-	दीपावली	,,	1735
37-	चाँदनी रात में संगीत सभा	,,	1760-1766
38-	वनकुंज में राधाकृष्ण	,,	1735-1757
39-	The Pavilion in the Grove	,,	1742-1757
40-	कृष्ण राधा की चुनरी पकड़ते हुये	,,	1760-1770
41-	कृष्ण गोपियो के साथ नृत्य करते हुये	,,	1820
42-	रूक्मणी हरण	,,	1760
43-	हिरन के साथ स्त्री	,,	1760
44-	झील में पुष्प एकत्रित करती नायिका	,,	
45-	नायक का चित्र बनाती नायिका	,,	
46-	श्रृंगार करती नायिका	,,	
47-	हिरण के साथ स्त्री	,,	
48-	श्रृंगार	,,	
49-	Radha Krishna Eruising on Lake Gundolove in Royal Barge	,,	1750-1775
50-	बाल्कनी में राधा, कृष्ण व दासी	,,	1775
51-	राधा कृष्ण संगीत सुनते हुये तथा आतिशबाजी देखते हुये	,,	18वीं शती
52-	राधा कृष्ण बगीचेयुक्त बाल्कनी मे	,,	1760
53-	वर्णशाला में विश्राम करते हुये राधा कृष्ण	,,	1760
54-	राधा कृष्ण दीपावली के त्योहार और आतिशबाजी का आनन्द लेते हुये	,,	प्रारम्भिक 19वीं शती
55-	राधाकृष्ण	,,	1750
56-	गोवर्धनधारण	,,	18वीं शती के मध्य में
57-	हार प्रस्तुत करते हुये राधा	,,	1765
58-	संगीत सुनते हुये रानी	,,	1730
59-	To the Tryst	,,	1740
60-	केशों को सुखाती हुयी स्त्री	,,	18वीं शती
61-	राधा	,,	18वीं शती के मध्य
62-	स्त्री के शीश का आदर्श अध्ययन	,,	18वीं शती के मध्य
63-	गीत गाती हुई स्त्री	,,	1740
64-	रणभूमि में कृष्ण का सामना करते हुये भीष्म	,,	1770

65-	हिरण और वीणा के साथ स्त्री रागमाला श्रृंखला में टोडी रागिनी	किशनगढ़	1750
66-	बणीठणी	,,	1790
67-	आनन्दसिंह व जोसी स्यामा का व्यक्तिचित्र	,,	18वीं शती के मध्य
68-	राम, लक्ष्मण और सीता बनवास के समय	,,	1820
69-	राम, लक्ष्मण और सीता घायल पक्षी के साथ (रामायण)	,,	1750-1775
70-	राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या छोड़ते हुये	,,	1770-1780
71-	सन्त शिव मन्दिर में अर्चना करते हुये	,,	1780
72-	सावन्तसिंह का व्यक्तिचित्र	,,	1745
73-	महाराज हरिसिंह का व्यक्तिचित्र	,,	1760
74-	घोड़े का चित्र	,,	
75-	साधु और विक्रेता	,,	
76-	भक्ति साधना में लीन चैतन्य	,,	1750
77-	वृन्दावन मे राधाकृष्ण व गोपियाँ	,,	1750-1775
78-	बाजार में बुरे अनुभव	,,	1745
79-	महाराजा प्रतापसिह का व्यक्तिचित्र	,,	
80-	महाराजा रूपसिंह कल्याण राय के दर्शन के लिये जाते हुये	,,	1760
81-	लीलाविलास	,,	18वीं शती के मध्य
82-	Worship at a Shrine of the Vallabhacharya Sect	,,	1780
83-	श्रीनाथजी की मूर्ति	,,	
84-	सरदारसिंह और बिड़दसिंह के रेखाचित्र	,,	
85-	राजसिंह और सावन्तसिंह के रेखाचित्र	,,	
86-	रूपसिंह और मानसिंह के रेखाचित्र	,,	
87-	प्रतापसिंह, बहादुरसिंह, कल्याणसिंह और मोखमसिंह का व्यक्तिचित्र	,,	
88-	किशनसिंह व साहसमल के रेखाचित्र	,,	
89-	जगतमलसिंह व हरिसिंह के रेखाचित्र	,,	
90-	नागरीदास का व्यक्तिचित्र	,,	1760
91-	राजा वीरसिंह का व्यक्तिचित्र	,,	1750
92-	वनकुंज में राधाकृष्ण	,,	1780
93-	राजा सावन्तसिह पागल हाथी को नियंत्रित करते हुये	,,	1740
94-	एक आदिवासी महिला	,,	1770
95-	सावन्तसिंह चीते का शिकार करते हुये	,,	1740

129-	कार्तिकमास	जोधपुर	1775
130-	बसन्तरागिनी	,,	17वीं शती
131-	हिण्डोला राग (रागमाला)	,,	1623
132-	शुक्लाभिसारिका (नायक-नायिका भेद)	कोटा	1750
133-	मधुमालती का एक दृश्य	,,	1772
134-	ढोलामारू	,,	1762
135-	रूक्मणी परिणय	,,	1700
136-	तेंदुये के शिकार का रंगीन खाका	,,	1725
137-	कोटा के महाराजाओं रामसिंह द्वितीय और उनके सहयोगी शहर में होली खेलते हुये	,,	1744
138-	आखेट दृश्य	,,	1784
139-	खेल देखते हुये	,,	18वीं शती के अन्त में
140-	दीपावली	,,	1690
141-	Watching herd of deer from hunting lodge	,,	1790
142-	कृष्णाभिसारिका (नायक-नायिका भेद पर आधारित)	,,	1750
143-	जेठमास (बारहमासा)	,,	1770
144-	मस्त हाथियों का दंगल	,,	1580
145-	धनश्री रागिनी	बूंदी	1680
146-	बारहमासा	,,	
147-	म्यूज़िकल मोड	,,	18वीं शती
148-	मेघमल्हार रागिनी	,,	1675
149-	रसिकप्रिया	,,	18वीं शती
150-	आकर्षक स्त्री (रागिनी मधुमाधवी पर आधारित)	,,	1780
151-	टोड़ी रागिनी	,,	18वीं शती
152-	ग्रीष्म ऋतु	,,	1750
153-	राधाकृष्ण की सभा	,,	आरम्भिक 18वीं शती
154-	प्रेमीयुगल चाँद की ओर संकेत करते हुये	,,	1640
155-	नहाती हुई आश्चर्यचकित स्त्री	,,	1775
156-	रसिकप्रिया पर आधारित	,,	1670
157-	रसिकप्रिया	उदयपुर	1640
158-	गीतगोविन्द	,,	1710
159-	बारहमासा	,,	1840
160-	वैशाखमास विहार	अलवर	
161-	श्रावणमास विहार	,,	

चि. फ. 1

चि. फ. 2

चि.क्र. 3

चि. फ. 5

चि. फ. 6

चि. फ. 7
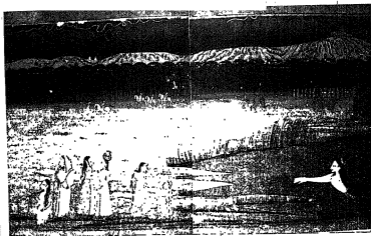
चि.फ. 9
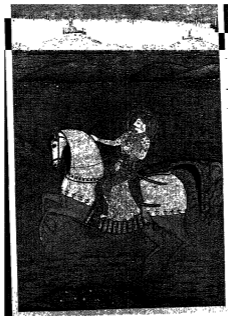
चि.फ. 10

चि. फ. 11

चि. फ. 12

चि.फ. 13

चि.फ. 14।

चित्र. 15

चित्र. 16

चि. फ. 17

चि. फ. 18

चि. फ. 19

चि. फ. 2

चि. क. 21

चि. क. 22

चि.फ. 23
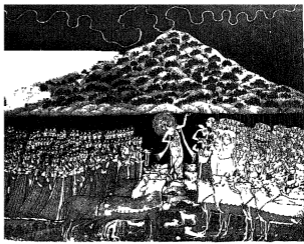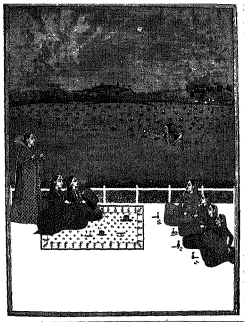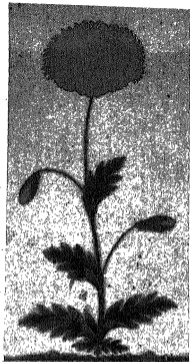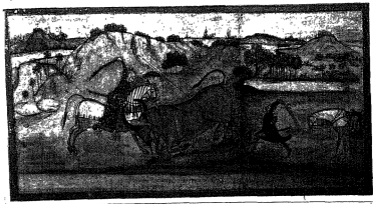
चि. फ. 25

चि. फ. 26

चि.फ. 27

चि-फ. 28

चि.फ. 29

चि.फ. 30

चि. फ. 31